http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

श्री सहजानन्द-डायरी

सन्-1957

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

http://sahjanandvarnishastra.org/

। सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री सहजानन्द डायरी

सन् १९५७

प्रवक्ता :—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

सम्पादक :—
महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

प्रकाशक :—
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उत्तर प्रदेश)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

THE PSALM OF SOUL

http://www.jainkosh.org

Constant ! Wishless ! Absolute ! Free.
Knower ! Seer ! Soul is Me.

I am what Supreme Being is;
What myself is that God is;
With this sole apparent difference,
Here–"Passions", there–"Indifference"

My real Self like Siddhas is:
Infinite Power ! Knowledge ! and Bliss !
Losing knowledge, being aspirant,
I am left a beggar—ignorant.

None else bestows pain amd pleasure,
'Love' and 'Anger' are grief's treasure,
"Self" from "Non-Self" distinguish,
And then, there is on anguish.

Whose name Buddha, Rama, Ishwer, Jina,
Brahma, Vishnn, Hari, or Shiva,—
Leaving passions, reach "the Goal"
No distress then in the Soul.

World does function by itself,
What work of it does my self ?
Alien influence ! Do get away !
In Bliss for-e'er may I stay ! !

Version 1

श्री सहजानन्द डायरी सन् १९५७

http://sahjanandvarnishastra.org/

१ जनवरी सन् १९५७

आज व्यावहारिक वर्षका प्रथम दिन है। वैसे तो प्रति समय नया नया समय होता है ये ही नये नये समय कुछ मर्यादामें वर्ष कहलाते हैं। नया समय आया यह हर्षकी बात नहीं किन्तु अच्छी बात यही होगी कि नया नया विशुद्ध परिणाम होता रहे। अपना परिणमन अपना समय है। अपना समय अच्छा बिताओ, इसका अर्थ है कि अपना परिणमन अच्छा बनाओ।

मेरा वर्तमान परिणमन मेरे सन्तोषके योग्य नहीं है। वस्तु स्वरूपका तो ज्ञान है फिर क्यों नहीं निज वस्तुके अनुरूप परिणमन हो पाता इस बातके लिये हैरानसा रहता हूं।

अन्य सब परिचित बन्धु प्रायः सफलसे दीख रहे हैं। श्री सि० मुन्नीलाल जी गोटे गांव वाले विशुद्ध पथ पर बढ़ते चले जा रहे हैं। गृहस्थ होकर परिवार सम्पन्न होकर भी इतनी अधिक धीरता इनमें है कि जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है, करीब करीब दो माहसे साथमें हैं। मात्र हफ्तेमें दो दिनको घर जाना पड़ता है शेष समय साथ ही रहते हैं। ध्यानमें इनकी एकाग्रता उत्तम है। यह प्रसन्नताकी बात है। ये स्वरूपाचरणमें सफल हों।

ॐ शुद्धं चिदस्मि। मैं मात्र चैतन्य स्वरूप हूं। यद्यपि मैं प्रति समय परिणमता रहता हूं। तथापि परिणमनको देखकर मैं क्या लाभ उठाऊंगा। परिणमन तो एक समय होकर विदा हो जाता है। यदि किसी परिणमनको पकड़ूं उपयोग द्वारा तो परिणमन तो खिसकता चला जायगा। हां परिणमन बुद्धि घिसटती रहेगी। इस अध्रुव दृष्टि का फल संसार है, क्लेश है। ॐ, शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, नित्योऽहं, निरञ्जनोऽहं, ज्ञानानन्दस्वरूपोऽहं, सर्वविभावशून्योऽहं, निःशल्योऽहं, सरलोऽहं, शुद्ध चिद्रूपोऽहं, ॐ शुद्ध चिदस्मि।

२ जनवरी ५७ मढ़िया जी जबलपुर

यह स्थान धर्म साधनको उत्तम बाह्य साधन है। धर्मकी साधना बनानेके लिये दो बातें उपयोगमें बनना चाहियें, १—अपने एकत्वका (अकेले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पनका) ध्यान, २—मृत्युकी शिर पर सवारीका ध्यान। यह भाव जो हो रहा है वह मैं नहीं हूं। यह भाव तो क्षणिक है, होकर अभी नष्ट हो जाने वाला है। नष्ट होने वालेके स्नेहमें लाभ तो कुछ भी नहीं है हानिमें क्लेशकी संतति है।

यह विचार मैं नहीं हूं। विचार भी आकुलता उत्पन्न करके नष्ट हो जाने वाली चीज है। अय विचार! निकल जावो, तुममें मेरी रुचि नहीं है। मैं किन्हीं भी विचारोंकी रुचि नहीं करता, आदर नहीं करता, फिर भी ये विचार आ धमकते हैं यह हमारी असावधानीका परिणाम है।

जानना और विचारमें अन्तर है। जानना ज्ञानका अनिवार्य काम है। उसे मैं मना नहीं करता, मना कर भी नहीं सकता, क्योंकि वह अरोक चीज है। किन्तु विचार विचारका सम्बन्ध ज्ञानसे नहीं, ज्ञान तो उदार है सो उसका भी सहयोग विचारको मिल जाता है, वस्तुतः विचार मोह का परिणाम है।

हे शरीर! तेरा चतुष्टय मेरेसे अत्यन्त भिन्न है फिर भी मैंने ऐसी मूढ़ता धारण करली है कि तुझमें एक काटा भी छिदे तो मुझमें कल्पना व आकुलता की वेदना होने लगती है। यह क्या खेल है, इन्द्र जाल है।

मैं आत्मा अमूर्त, यह शरीर मूर्त भौतिक, इसमें कुछ बीते, पर अमूर्त, आत्मामें प्रभाव क्यों होता है? यह शरीरका दोष नहीं, शरीर के सम्बन्धका दोष नहीं। मात्र खुदके मोह परिणामका दोष है। तभी तो यह देहमें क्या, धनमें भी कल्पना कर दुःखी होने लगता है।

३ जनवरी १९५७ ३

द्रव्य प्रदेश गुण पर्यायोंके पर्यायवाची शब्द निम्न प्रकार हैं :—

द्रव्य	प्रदेश	गुण	पर्याय
देश	देशांश	शक्ति	गुणांश
अखण्ड सत्	क्षेत्र	भाव	काल
वस्तु	स्वक्षेत्र	धर्म	परिणमन
धर्मी	आकार	स्वभाव	शक्त्यंश
पदार्थ	द्रव्य पर्याय	लक्षण	अविभाग प्रतिच्छेद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत्	व्यञ्जन पर्याय	विशेष	गुण पर्याय
तत्त्व	प्रचय	प्रकृति	अर्थ पर्याय
सामान्य	तिर्यगंश	शील	स्वकाल
अन्वय	विष्कंभ	स्वरूप	ऊर्द्ध्वांश
अर्थ	विस्तार	आकृति	आयत
विधि	तिर्यग्विशेष	स्रोत	प्रवाह
सामान्य	विशेष	सामान्य विशेष	विशेष विशेष
			हार
			विधा
			प्रकार
			भेद
			छेद
			भङ्ग
			भाग

४ जनवरी सन् १९५७

श्रीशाय नमः। श्रीका अर्थ है लक्ष्मी। लक्ष्मी शब्द लक्ष्म से बना है। लक्ष्मका अर्थ है लक्षण, चिन्ह याने स्वरूप या स्वभाव है। आत्माका स्वाभाव चैतन्य है। चैतन्यके ईश यद्यपि सभी चेतन है तथापि चैतन्य स्वरूप के ज्ञातामें चैतन्येश, श्रीश शब्दका व्यवहार है।

हे श्री! हे लक्ष्मी हे चैतन्य! हे परम परिणामिक भाव, हे कारण परमात्मन्! हे समय सार! ज्ञप्तिपथगामी रहो।

निज स्वभाव के सिवाय शेष सर्वभाव व द्रव्योका आश्रय आतमाका अहित है।

किसी भी आत्मासे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं, सर्व अपने २ परिणाम और भाग्यके अनुसार निर्वाह करते हैं। किसी भी आत्माको अपना विरोधी मान उदारता समाप्त करना मूढ़ता है और किसी भी आत्माको अपना स्नेही समझ उदारता समाप्त करना भी मूढ़ता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उदारतामें अद्भुत शान्ति है। उदारता उन्नतिका मङ्गलाचरण है। उदारता उत्कृष्ट व्यवहार है। उदारता स्वयं उत्थान है। उदारता विरागताकी सखी है। उदारता मैत्रीकी जननी है। उदारता आकर्षणकी स्वामिनी है। उदारता ही आदिसें अन्त तक हित है।

जब पर्याय क्षणिक ही है तब पर्याय से मोह क्या करना। पर्याय गुजरने को ही उत्पन्न होती है। उसे गुजर जाने दो अपने दिमागमें गुजरनेसे रोको मत। यह रोकथाम केवल इन्द्रजाल है।

निरोध करो दुर्भावोंका। विरोध करो अज्ञानका। उपरोध करो परिणाम का। अनुरोध करो विज्ञान का। अधिरोध करो निज भावका।

५ जनवरी सन् १९५७

मेरा नाथ मैं हूं। मेरा दुख मैं मैट सकता हूं, फिर मैं किसी अन्यसे बोलकर क्या लाभ पाऊंगा। मेरा जगतमें अन्य कोई सहाय नहीं फिर मैं किस पदार्थको चित्तमें बसाऊं।

अय मेरे नाथ! बड़े पापका उदय है कि जेसें जान पाया है तैसे नहीं रह पाता। यह उदय कब तक चलेगा। यह ही बड़े अफसोस की बात है। समझा कि स्वभाव निराकुल है किन्तु तरङ्गोंसे अवकाश नहीं।

सत्य स्वरूप! तू ही परम कल्याण है। साम्यभाव तू ही परम शिव है। तेरी भक्ति परम भक्ति है। तेरी शक्ति परम शक्ति है। तेरा भजन ही परम भजन है।

आत्मन् विकल्पकी योग्यतामें ज्ञान सागरके तट पर ही बैठे रहने पर खण्डका दण्ड मिल रहा है। यदि एक बार ही आत्मीय हिम्मतका विकास करके ज्ञान सागरमें मग्न हो लिया जाय तो यह दण्ड समाप्त हो जायगा। जैसें ठण्डके दिनोंमें तालाबके निकट बैठे रहने पर ठण्ड सताती है, यदि एक बार तालाबमें डूब लिया जाय तो ठण्ड समाप्त हो जायगी।

क्या किसीने अन्तमें भी समागमसे कुछ हाथ ले पाया? फिर समागम यानी बाह्य वस्तुका मोह क्यों! यही तो पागलपन है। क्यों शब्द का प्रयोग पागलपन जैसी ही बातोंमें ही तो हुआ करता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या किसीको कुछ कमी भी हो पाया ? नहीं, फिर वास्तविकताके विरुद्ध चलनेपर क्या तुम कुछ लाभ उठा लोगे या व्यर्थके धक्के खाओगे। निर्णय तो कर।

इस इद्रजाल वत् जगतमें नामके रहनेकी जिनकी धुनि है उसे सनकी न कहा जाय तो क्या योगियोंको सनकी कहा जायगा।

६ जनवरी सन् १९५७

किसी भी आलसीका संग मुझे नहीं सुहाता। इसे क्या मैं अपनी एक बड़ी कमजोरी मानूं या मामूली। मैं अभी इसका उत्तर नहीं दे पाया हूं अपने आपको।

आलसी, खुदगर्जकी शक्ल देखते ही चित्तमें संक्लेश हो जाता है। इसका उपाय मुझसे अन्य न बननेके कारण मैं तो इस निर्णयपर अपनेको ले गया हूं कि उन आलसीको कह दिया जाय कि आपका आलस्य देखकर धीरे धीरे मैं भी कभी आलसी न हो जाऊं इस कमजोरीके कारण आपसे मैं एक कृपा चाहता हूं कि आप मुझे अपने संगसे मुक्त कर दीजिये।

आप ही अपने आपका विधाता है। शरीरमें ममत्व करके इसे आलस्य में रखना, काम न देना महान व्यामोह है। शरीर तो जलेगा या सड़ेगा यह निश्चित ही है फिर नाक थूकके घरको सजाना या मोहका विषय बनाना इसे मूर्खता नहीं कहेंगे तो क्या किसी विवेकीको मूर्ख कहेंगे।

लौकिक सुखियोंके बीच रहनेकी अपेक्षा दुःखियोंके बीच रहना श्रेयस्कर होगा। क्योंकि सुखियोंके बीच रहनेमें वैराग्य व कर्मफलभय न आ सकेगा। दुःखियोंके बीच रहनेमें दोनोंका शुभावसर हो सकता है।

दुखित पशुओंको देखकर तो विरागता और आत्माभिमुखताका और भी अधिक अवसर प्राप्त किया जा सकता है।

७ जनवरी १९५७

मोह नष्ट करनेका उपाय यथार्थ ज्ञान है। भक्तिसे पुण्य तो बांधा जा सकता है किन्तु मोह नष्ट नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार यथार्थ ज्ञानसे मोह तो नष्ट किया जा सकता है किन्तु पुण्य या पाप नहीं बांधा जा सकता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यथार्थ ज्ञानको संक्षेपमें बांधा जाये तो निम्न प्रकारसे बांधा जा सकता है :—

(१) प्रत्येक पदार्थकी स्वतन्त्रताकी प्रतीत हो जाना।

(२) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणति त्रिकाल कर सकता नहीं है।

(३) कर्ता करण, कर्म व फल चारों स्वयं प्रत्येक एक ही हैं।

विद्याका उपयोग निरन्तर बना रहे यह ही महान पुरुषार्थ है। आत्मा क्या कर सकता है। जो कर सकता है उसका प्रभाव कितनेमें होता है इसका निर्णय महान ज्ञान है। इस बोधसे उपलब्ध वह मर्म हो जाता है जिसके कि अवलम्बनसे आत्मा केवल ज्ञान पाता है।

दान चार प्रकार है— १ आहारदान २ ज्ञानदान ३ औषधिदान ४ अभयदान। इनके मुख्यत: फल निम्न प्रकार हैं आहार दानका फल मनोवांछित आहार विहार है। ज्ञान दानका फल केवल ज्ञान है औषधि दानका फल हो जाना पहलवान है। अभयदानका फल ऊंचे नेता, ऊंचे आफिसर, ऊंचे राज्य विधाता बन जाना है। सर्वोच्च वैभव केवल ज्ञान है अत: केवल ज्ञानके बीजभूत ज्ञानदानकी सर्वाधिक महिमा है।

८ जनवरी १९५७

सत्संगतिकी प्राप्ति उच्च पुण्योदयका परिणाम है। मनुष्य कला-कौशल सम्पन्न होकर भी पतित हो जाता है तब समझना कि उसे सत्संगति प्राप्त नहीं थी। सत्‌का अर्थ सज्जन पुरुष है। सज्जन पुरुषोंकी संगति मिलना सत्‌संगति है।

सज्जन वह है जो विषय कषायसे निवृत्त होकर स्वभावकी दृष्टि बनाये रखनेका पुरुषार्थ करें। ऐसे महंतोंका समागम निर्मल परिणामके प्रवाहको उत्साहित करता है।

पहिले सहारेकी कीमत अनुपम होती है। मनुष्यका पहिला सहारा है सत्संग। सत्संगका जितना आभार माना जाय वह सब थोड़ा है।

हे सत्संग! तुम सत् हो क्योंकि सतके संग हो। विषय कषाय भाव वाले पुरुषको संतका उपदेश कडु लगता है तथापि यही विश्वास रखना कि हितकर है तो यही है। विषय कषाय वालोंका उपदेश, उनकी सलाह बड़ी प्रिय लगती

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषय कषाय वालोंको। ऐसी समझावन पर यह विश्वास करना कि यह अहित ही है।

पहिले अनेक ज्ञानी संयमियोंका संग रहता था। उसमें अनेकोंका सत् निर्वाह होता था। सहस्र साधुओंके संगसे सहस्रके लाभके अतिरिक्त लक्षों ग्रहस्थोंका लाभ होता था। अहो उस समयकी स्थितिकी कल्पना ही यहां विचारकोंका अनुपम हित कर देती है। धन्य है सत्संगको।

जब तक भव शेष है, जब तक भव शेष है, सत्संगका लाभ मिलता ही रहे। अन्य सर्व मिलो चाहे न मिलो, अन्य सब बखेड़ा ही है।

६ जनवरी १९५७

पार्टीके नामसे व्यवहार मत करो। योग्य व्यक्तियोंके व्यक्तित्वके नाते से व्यवहार करो। चाहे किसी पार्टीमें सभी योग्य पुरुष हों तो भी पार्टीका नाम लेकर ही किसी को सपोर्ट करना उदारता व विवेकके प्रतिकूल है। यह असंभव है किसी भी पार्टीमें सभी व्यक्ति योग्य हों। अतः जब कोई प्रसंग आवे निर्वाचन करनेका तब यही मार्ग भला है कि व्यक्तिके व्यक्तित्वको जानकर कि यदि वह उदार व बुद्धिमान है निर्वाचन सम्मति दी जावे।

किसी का भी उपकार करके स्वयं को क्या लाभ मिला व मिलेगा? किसीका चिन्तवन कर उत्पन्न किये विभावोंसे क्या लाभ मिला व मिलेगा? कुछ भी नहीं। अतः किसीके उपकारके लिये परोपयोगी ही मत बने रहो। तुम स्वयं सुधर जावोगे तो अन्य जीवोंका उपकार स्वयं होगा। किसीका चिन्तवन बनाकर अपना आत्मबल मत खोओ।

प्रत्येक प्राणी प्रत्येकसे भिन्न है। किसीकी परिणतिसे कोई नहीं परिणमता। किसी अन्यको विषय मात्र बनाकर अपने परिणामोंको विभावित करनेका फल संसार परिभ्रमण ही है। यदि अलौकिक परम आनन्द चाहते हो तो सर्व इतर अर्थोंको भुलाकर मात्र निज आत्मरामका ध्यान बनाये रहो। स्वके आश्रयसे निर्विकल्प स्वका अनुभव प्राप्त होता है।

स्वयं ही स्व है, स्वयं ही स्वामी है। स्वयं ही वैभव है, स्वयं ही भोक्ता है। स्वयं ही सृष्टि है, स्वयं ही स्रष्टा है। स्वयं परमात्मा है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वही भक्त है। स्वकी आराधना करो।

१० जनवरी १९५७

जब आत्मस्वभाव ही उपयोगमें रह जाता है उस कालके अनुभवमें जो आनन्द होता है वह त्रिलोककी सम्पदासे भी प्राप्त नहीं हो सकता है। वस्तुतः सम्पदासे एक अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि सम्पदामें स्वयं सुख शक्ति नहीं है फिर सुख ही उससे कैसे प्रगट होगा। अन्य जीवोंसे भी अपना सुख प्रगट नहीं हो सकता क्योंकि अन्य जीवोंका सुख उन्हीं अन्यके प्रत्येकमें व्याप्त है, उनके प्रदेशोंसे बाहर सुख गुणका ही क्या किसी भी गुणका परिणमन नहीं जा सकता।

सुख आनन्द गुणका परिणमन है। आनन्द गुणका विभाव परिणमन लौकिक सुख और दुःख है, स्वभाव परिणमन आत्मीय अलौकिक आनन्द है। प्रत्येक ये परिणमन आनन्द गुणका आश्रय कर ही प्रकट होते हैं वे चाहे लौकिक सुख हों या दुःख हों या आत्मीय आनन्द हों।

सर्व पूर्ण हैं, स्वतः सिद्ध है अतः किसी को परिणमने के लिये किसी की बाट नहीं जोहना पड़ती। प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है, क्योंकि वह पदार्थ है। पदार्थ परिणमता रहता है। यदि पदार्थ मलिन योग्यता वाला है तो मलिन पर्याय रूप परिणमता है, यदि निर्मल योग्यता वाला है तो निर्मल पर्याय रूप परिणमता है। हां परिणमनोंकी यह विशेषता है कि मलिन पर्याय किसी परके अनुकूल अपनी सृष्टि करता हुआ परिणमता जाता है, इस पर भी पदार्थ परिणमने के लिये बाट नहीं जोहता, जो हुआ सो हुआ। निर्मल पर्याय तो स्वभावके ही अनुकूल प्रकट होता चला जाता है।

११ जनवरी १९५७

जब निज स्वभावकी ओर उपयोग रहे वह तो भला समय है। बाकी अर्थात् उपयोगमें परको वसाये वह विपत्तिका समय है।

आत्मा केवल अपने भाव बनाता है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कार्य इसका है ही नहीं। अजीव द्रव्योंमें भी प्रत्येक द्रव्य केवल अपना परिणमन सम्पदामें स्वयं सुख शक्ति नहीं है फिर सुख ही उससे कैसे प्रगट होगा। अन्य करता है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ बात बन ही नहीं सकती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, प्रदेश, गुण, पर्याय रूप है। किसी द्रव्य का द्रव्य अन्य द्रव्य नहीं हो सकता। किसी द्रव्यका प्रदेश अन्य द्रव्यका प्रदेश नहीं हो सकता। किसी द्रव्यका गुण किसी अन्य द्रव्यका नहीं होता और न किसी द्रव्यकी पर्याय अन्य द्रव्यकी हो सकती। प्रत्येक वस्तुका यह चतुष्टय केवल उस अपनेमें है, अन्य द्रव्यके चतुष्टयसे अत्यन्त भिन्न है।

जैसे थोड़ी देरको कल्पना करो कि पुस्तक द्रव्य है और यह चौकी द्रव्य है तो पुस्तकका द्रव्य प्रदेश, गुण व पर्य्याय पुस्तकमें ही है चौकीमें नहीं। फिर यह कहना कि चौकीकी पुस्तक है या पुस्तककी चौकी है यह निरा बेहूदापन है।

चौकी और पुस्तक दोनो स्कंध हैं इनमेंसे अब एक ही स्कंध को पकड़ कर खोज कीजिये। जैसे इस चौकीमें अनत परमाणु हैं एक २ परमाणु एक एक द्रव्य है। प्रत्येक परमाणुका द्रव्य, प्रदेश गुण व पर्याय उसी एक परमाणु में है। एकका दूसरेमें नहीं। तब एक परमाणुका दूसरा परमाणु है ऐसा कहना बेहूदापन नहीं है क्या ?

शरीरका द्रव्य प्रदेश गुण पर्याय शरीरमें है आत्मामें नहीं। आत्माका द्रव्य प्रदेश गुण पर्याय आत्मामें है शरीरमें नहीं। फिर आत्माका शरीर या शरीरका आत्मा कहना बेहूदापन नहीं है क्या ?

१२ जनवरी १९५७

कोई समय न सगुन है, न कोई समय असगुन है। खुदके भावोंमें कमजोरी आना असगुन है और खुदकी भावनाओंका निर्मल बनना सगुन है, क्योंकि बाह्य पदार्थ सुख और दुःख उत्पन्न नहीं करते किन्तु बाह्य साधन हों अथवा न हों सर्वत्र कल्पनासे सुख और दुःख होता है। अतएव शान्तिके लिये अन्तरंगमें ही कुछ प्रयत्न करना है। बाहरमें कुछ नहीं करना व कुछ कर भी नहीं सकते।

आत्मन्! देखो न खुदको। यह मैं अमूर्त हूं, प्रतिभास मात्र हूं, सबसे जुदा हूं केवल निज हूं। यह मैं अपने आपको ही कर पाता और इस कृतिका फल भी यह मैं खुद ही हूं तथा करता भी इस ही खुदके द्वारा। देखो न! परिणामके लिये किसीकी बाट नहीं जोहनी पड़ती। परिणमन इसका स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। परिणमता तो निरन्तर यह, मैं हूं किन्तु परिणाम जाता वैसा जैसा यह उपयोग आश्रय बनाता है। स्वभावका आश्रय करनेसे निर्मल परिणमन होताहै, विभावका आश्रय करनेसे मलिन परिणमन होता है।

यहां प्रश्न यहं हो सकता है कि फिर तुमने स्वभावका आश्रय ही क्यों न पहलेसे कर लिया ? इसका उत्तर तो पहले यह है कि नहीं किया तभी तो तुम पूछ रहे हो। फिर और सुनो निमित्त और नैमेत्तिक भाव और उपादान-उपादेय भाव दोनों ही बातें ठीक हैं। आत्मा और कर्मका अनादि सम्बन्ध है। कर्मके उदयको निमित्तमात्र पाकर आत्मा विभाव रूप परिणमता है और आत्माके विभावको निमितमात्र पाकर कार्माण वर्गणायें कर्म रुप अवस्थाको प्राप्त होती हैं। यह निमित्त नैमित्तिक परम्परा चलती चली आरही है, सो इस विभावमें उपादान तो वह मलिन आत्मा है व निमित्त कर्मोदय है।

१३ जनवरी १९५७

जीवोंकी दृष्टि पर्यायों पर प्राकृतिक है। प्राकृतिकका अर्थ यह है कि कर्म प्रकृतिके उदय अवस्थामें ऑटोमेटिक (Automatic) है। अब पर्यायों से शुरूकर द्रव्यमें पहुंचनेकी शैली ही पर्याय बुद्धि वालोंको कार्य-कर है।

पर्यायें दो प्रकारकी हैं—१ अशुद्ध पर्याय, २ शुद्ध पर्याय। अशुद्ध पर्याय भी गुणका परिणमन है और शुद्ध पर्याय भी गुणका परिणमन है। पर्यायें गुणकी अवस्थायें हैं सो पर्यायें गुणसे प्रगट होती हैं। किसी भी पर्याय के सम्बन्धमें यदि यह जानना चाहा जाय कि यह पर्याय किस गुणकी है तो इसका जो उत्तर मिलेगा वह गुण तो मुख्य हो जावेगा तथा पर्याय गौण हो जावेगी। जैसे पूछा कि क्रोध कषाय किस गुणकी पर्याय है तो इसमें उत्तर मिलेगा कि क्रोध कषाय चरित्र गुणकी पर्याय है। अब यहां स्पष्ट है कि इस प्रकारकी चिन्तनामें कषाय तो गौण हो गया व चरित्र गुण मुख्य हो जायेगा।

इसके अनन्तर यह भी जानना चाहा जावे कि यह गुण किस द्रव्यका है तो इसका जो उत्तर आवेगा उसमें द्रव्य तो मुख्य हो जावेगा व गुण गौण हो जावेगा। जैसे पूछा कि चरित्र गुण किस द्रव्य का है तो उत्तर मिलेगा चरित्र गुण आत्माका है। इसमें अब आत्मा मुख्य हो गया और चरित्र गुण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गौण हो गया। इस तरह पर्यायसे उतर कर गुणमें आये और पश्चात् गुणसे भी उतर कर मात्र द्रव्यमें आये। द्रव्यकी दृष्टि सर्वोच्च दृष्टि है। इस दृष्टिका सहारा ही वास्तविक सहारा है।

१४ जनवरी १९५७

प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टयसे सत है। उस चतुष्टयको इन शब्दोंमें कह सकते हैं।

देश	देशांश	गुण	गुणांश
द्रव्य	प्रदेश	गुण	पर्याय
सामान्य	विशेष	सामान्य विशेष	विशेष विशेष
अखंड	स्वक्षेत्र	शक्ति	परिणमन
वस्तु	आकार	शक्ति	शक्त्यंश
अभेद	प्रस्तार	शासन	भंग
सत्	प्रचय	लक्ष्म	स्वकाल
अर्थ	निवास	आकृति	पर
द्रव्य	क्षेत्र	भाव	काल
निष्क्रम	अनुक्रम	शाखा	छेद
सत्ता	विष्कम्भ	प्रकृति	आयत
सामान्य	विस्तार	शील	भेद
तत्त्व	व्यपदेश	एक रूप	विधा
धर्मी	स्वक्षेत्र	धर्म	अविभाग प्रतिच्छेद
प्रधान	प्रसार	प्रकरण	प्रकार
द्रव्य	द्रव्य पर्याय	गुण	गुण पर्याय
विधि	तिर्यगंश	विशेष	ऊर्ध्वांश
अन्वय	सहक्रम	स्वरूप	भाग
पदार्थ	व्यंजन पर्याय	अर्थ	अर्थ पर्याय
मूल	व्याप्ति	स्रोत	प्रवाह

१५ जनवरी १९५७

एक माह पहले आगामी दिन चर्या ऐसी हो:—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

४ बजे प्रात. से	५ बजे तक	नियमसारका स्वाधाय
५ बजे से	५॥ बजे तक	डायरी लेखन
५॥ बजे से	६॥ तक	सामायिक
६॥ से	७॥ तक	देवदर्शन पर्यटन, शुद्धि
७॥ से	८। तक	प्रवचन
८। से	८॥। तक	मोक्ष शास्त्र या जैन सिद्धान्त प्रवेशिका अध्यापन
८॥ से	९॥ तक	इंग्लिश शब्द वाचना
९। से	९॥। तक	सभाव्य चर्यार्थ शुद्धि
९॥। से	१०॥। तक	चर्या विश्राम
१०॥। से	११॥ तक	संस्थासेवा पत्रलेख पूछ ताछ
११॥ से	१२॥ तक	सामायिक
१२॥ से	१॥ तक	संस्कृत रचना
१॥ से	३ तक	इंग्लिश रचना
३ से	३॥। तक	धवला ६ वीं पुस्तक स्वाध्याय
३॥। से	४। तक	शंका समाधान
४॥ से	५॥ तक	दुखितसेवा, पर्यटन
५॥ से	६॥ तक	सामायिक
६॥ से	७॥	इंग्लिश सहयोग
७॥ से	८। तक	प्रवचन
८। से	८॥	वार्ता
८॥ से	९॥ तक	अध्यात्मिक पाठ
९॥ से	४ तक	ध्यान विश्राम शयन

नोट:—विशेष कार्यवश किञ्चित परिवर्तन हो सकता व जब भ्रमणमें होऊंगा तो सुबह का चलना ६॥ से ८ व सायं ३॥ से ५ बजे तक होगा।

१६ जनवरी १९५७

संसार परिभ्रमणको कहते हैं। अपना २ परिभ्रमण [illegible] २ संसार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। परिभ्रमणका अर्थ मात्र अपनी शक्तियोंका विभाव परिणमन है। यही संसार है। यह दु:ख स्वरूप है। इस दुखसे बचना हो तो ध्रुव स्वभावका आश्रय लो।

आत्मन्! तू सत् है। है ना। है। जो है है वह ऐसा नहीं होता कि पहले तो कभी है न हो व किसी दिनसे है हो, ऐसा न्याय ही नहीं। समझे? क्या समझे? यह कि तू है इसलिये अनादि से है। जो है वह किसी न किसी वर्तमानमें (परिणमनमें) रहता ही है। इससे यह निर्णीत हुआ कि इस भवसे पहिले भी तू किसी हालतमें था। उस पूर्व हालत गुजर गई उसका कुछ लाभ यहां हो रहा है क्या? लाभ तो जाने दो, जो विभाव कर डाल थे व उसके निमित्तसे जो कर्म बन्ध हो गया था उसके परिणाम स्वरूप आज यह दशा है कि तुम स्वभावमें स्थिर नहीं हो पाते। अब अन्दाज करलो—यह भव याने यह हालत क्या तुम्हारे कुछ काम कर सकेगी? नहीं, यह तो मिटी सो मिट ही गई, यह और हो जायगा कि जो तुम विभाव कर रहे हो और उसके निमित्तसे जो कर्म बन्ध हो रहा है, उसके परिणाम स्वरूप तुम व्याकुलता और पावोगे।

अब चेतो, जो समय गया सो गया। जो समय बचा उसका सदुपयोग करो। किसी भी समय मलिन परिणाम न आवे। किसीके निमित्तसे कोई क्लेश याने सक्लेश परिणाम होता हो और व्यवहारमें आपके अधिकारमें हो तो स्पष्ट कहकर सक्लेशके पापसे बचना। अन्ततो गत्वा उपेक्षासे काम सरेगा।

१७ जनवरी १९५७

आज मढियासे चलकर ८ मील पर सूखा गांव आये। जनपद स्कूलमें ठहरे। अध्यापक और छात्रों का व्यवहार उत्तम मिला। प्रायः ग्राममें ऊपरी सभ्यता तो नहीं किन्तु अक्सर अन्तरङ्ग निष्कपट स्नेह प्रतीत हो जाता है।

मनुष्य जन्म एक दुर्लभ जन्म है। इसका सदुपयोग विषय कषायोंसे बचकर स्व आत्म स्वभावके उपयोगमें है। इसे न किया तो जन्म व्यर्थ है, व्यर्थ ही नहीं किन्तु उल्टा अनर्थकारी होगा।

जब विषय कषायका परिणाम होता तब इस प्राणीको यही ठीक जचता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और वह यही मानता कि मैं हित और सुखकी बात कर रहा हूं। किन्तु यही तो एक धोका है। वह मलिन परिणाम मलिन ही है ऐसा ध्यान रखना ही पहिली विजय है उस मलिन परिणामसे उपयोग हटकर स्वभावनामें उपयोग का रम जाना दूसरी विजय है।

आत्मन्! अपने पंथसे चले चलो इन्द्रियां तुम नहीं हो, इन्द्रियोंके विषय तुम नहीं हो। मन तुम नहीं हो, मनके विषय तुम नहीं हो इनमें किसी भी जगहमें रमना ही महा मूर्खता है।

हे प्रभो! हे निज नाथ। रहो सावधान और समाधान निजकी ओर। अधिक बोलना आत्मबल बरबाद करना है, अत: बोलो अधिक मत।

हे प्रभो! रहो सावधान और समाधान निजकी ओर। अधिक सोचना आत्मबल बरबाद करना है, अतः सोचो अधिक मत।

अनिश्चित वृत्ति और कुछ यह करना और कुछ यह करना किसी एक ओर दृढ़ता न रखना भी एक कमजोरी और हानि है। इसके फल स्वरूप आत्मकल्याणकी वृत्तिमें भी कुछ रका रोग रहनेसे सफलता नहीं मिलती। आत्मकल्याण करो तो करो दृढ़ होकर, फिर उपयोगमें आत्म कल्याणके विरुद्ध अन्य कुतत्त्व पर दृष्टि न दो।

१८ जनवरी १९५७

आज प्रातः ६॥ बजेके अनन्तर सूखासे चले ५॥ मील पर नूनसर आये पञ्चाध्यायीका विषय समझने पर इतनी योग्यता हो जाती है कि अध्यात्मिक विषय स्पष्ट समझमें आ जाता है। अध्यात्मिकता समझमें आ जाय, प्रतीतिमें आ जाय यही सर्वोपरि व्यवसाय है।

एक द्रव्यके द्वारा किसी अन्य द्रव्यकी रचना नहीं होती, एक द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका परिणमन नहीं कर सकता क्योंकि समस्त द्रव्य स्वयं स्वभावसे सिद्ध हैं।

द्रव्य यदि कुछ कर सकता तो वह अपनी ही पर्याय कर सकता है, क्योंकि द्रव्यका जो कुछ होता है उसके निज क्षेत्रमें (प्रदेशमें) होता है। किसी भी द्रव्यका परिणमन किसी भी अन्य द्रव्य में नहीं होता।

एक द्रव्यका अन्य कोई द्रव्य कुछ भी नहीं है। एक आत्माका अन्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मायें व समस्त अजीव कुछ भी नहीं हैं। उन्हें अपना मानना अज्ञान है यह अज्ञान महान् दुःख है।

एक चीज अखंड होती है याने सभी वस्तुयें अखंड होती हैं। द्रव्य सत्य है। द्रव्य सत् है उसे ही शक्तिकी दृष्टिसे देखो तो गुण सत् है उसे ही परिणमनकी दृष्टिसें देखो तो पर्याय सत् है। कहीं ऐसा नहीं है "कि द्रव्य सत् न्यारा है, गुण सत् न्यारा है"।

द्रव्य अखंड है उसे अभेद वाले दिमागसें देखो। जब भेद वाले दिमागसे देखो तब उसमें गुण प्रगट होते हैं यह भी दिमागमें, वस्तुमें तो जो है वह अखंड है। जब अभेद वाले दिमागसे देखो तब गुण डूब जाते हैं, द्रव्य मुख्य ही रह जाता है। भेद वाले दिमागसें देखने पर पर्याय प्रगट होती है। अभेद वाले दिमागसे देखने पर पर्याय डूब जाती है।

१६ जनवरी १६५७

आज प्रातः पाटनसें चलकर ८। बजे कौनी आये। यह क्षेत्र पहाड़ी और नदीके बीच स्थित है। स्थान सुरम्य है।

लिखना बोलना ये सब आत्म-स्वभावके विरुद्ध क्रियायें हैं। इन क्रियावोंका उपयोग खेद कारक विभाव है। लिखना बोलना परकी ओर उपयोग भ्रमाता है। तभी तो देखो ना—जब उपयोग आत्माकी ओर जाता है और आत्मामें रमनेको होता है तब लिखना बोलना अस्फुटित होकर पश्चात् बन्द हो जाता है।

जिनका उपयोग सर्वथा पवित्र होकर स्वभावमें एकमेक हो गया है उन परमात्मावोंका वचन तो ध्वनि रूप ही रह जाता है। किन्तु उनके होती है ध्वनि जो अघातिया कर्मोंके विशेष उदय रहने तक रहती है तथा वह ध्वनि विशेष अतिशय सम्पन्न होती है।

संसार भाव अति दुःख रूप है इसके रहते हुये गौरव रखना महती मूर्खता है। संसार भावके बर्तनेपर पछतावा रहना चाहिये। यदि पुण्योदयसे ऐसा वातावरण पाया हो कि तुम्हारी गलतियोंके होते जाते हुए भी लोग विरुद्ध बात न कह सकें तथापि यह न समझना चाहिये कि ये गलतियां निष्फल जावेंगी। गलत परिणामोंके कालमें भी संक्लेश रहता है और उस कालके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणामोंके निमित्तसे कर्मत्व अवस्थाको प्राप्त कार्माण वर्गणावोंके बन्धन हो जाते हैं। उनके उदय कालमें भविष्यमें भी संक्लेश होगा। अतः प्रत्येक समय अपने परिणामोंको निर्मल रखना चाहिये। सदा विनय शील रहना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है कि धर्मके नाम पर यथा तथा भावोंको रखकर कोई अपनेको पूज्य घोषित कराये और चाहे उसे भी अपना समर्पण कर देना।

धर्मके ढोंगियोंके अतिरिक्त प्रत्येक पुरुषसे अपना विनम्र व्यवहार रखना विनय है और यथार्थ धर्मात्मावोंके गुणोंमें अनुराग होना उत्तम विनय है।

२० जनवरी १९५७

सम्यक्त्व नाम गुणका भी है और पर्यायका भी है। प्राचीन ऋषियों की पद्धति भी यही थी कि वे जब उस गुणको जिसकी पर्याय सम्यक्त्व मार्गणाके भेदों रूप वर्ता करती है बताना चाहते थे तब सम्यक्त्व कहकर बताते थे। इसमें असमञ्जसता भी नहीं है। जैसे संयम, असंयम, कषाय, अकषाय चारित्र मिथ्या चारित्र आदि पर्यायोंके स्रोत रूप गुणको चरित्र नाम से कहा गया है व ज्ञान, मिथ्या ज्ञान रूप ज्ञान पर्यायोंके स्रोतको ज्ञान शब्द से बताया है।

सम्यक्त्व नाम गुणका भी और सम्यक्त्व नाम सम्यक्त्व पर्यायका भी है। इनमें कभी किसीको धोखा न हो जाय इस सुधारकी दृष्टिसे सम्यक्त्व व मिथ्यात्व पर्यायके स्रोतको श्रद्धा शब्दसे कह देना भी अनुचित नहीं है।

मानवका जीवन ब्रह्मचर्य है। शरीरकी शक्ति वीर्यमें संचित है जैसे आत्माकी शक्ति चिरसमवेत वीर्यमें संरचित है।

योगीका सर्वस्व वैभव ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य सर्व शीलोंको कहते हैं। ब्रह्मचर्य गया तब शील भी गया।

ब्रह्मचर्य खोनेवालेके सत्य और अहिंसा भी रह नहीं पाते। अतः धर्म का पिता भी ब्रह्मचर्य है।

लौकान्तिक देव देवर्षि कहलाते हैं इसका कारण ब्रह्मचर्य है। श्री ही आदि ५६ कुमारिकाओंके प्रति देव देवेन्द्रोंका भी आदर है यह ब्रह्मचर्यकी महत्ताका द्योतक है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ब्रह्मचारीको सदा शुचि कहा गया है । ब्रह्मचर्यकी महिमाके गानसे ब्रह्मचर्यके परिणामसे पूरित धार्मिक ग्रन्थोंके समुदाय हैं ।

२१ जनवरी १९५७

आज शामको ४ बजे कौनीसे चले और ५। बजे पाटन पहुंचे ।

मनुष्य जीवनको सुगम और ससुख बिताना हो तो सर्व प्रथम कला शिष्ट बचन बोलनेकी है । जिसे बचन बोलनेकी कला भी याद नहीं है उसका जीवन बेकार है । इस आदतको बनानेमें सहायक ज्ञान है । बाह्य पदार्थमें ममता न हो तो बचन व्यवहार उत्तम हो सकता है । बचनकी उत्तमता कहो व विनय पूर्ण बचन कहो, प्रायः एक ही बात है ।

बचन कला उत्तम पानेके लिये कम बोलनेका अभ्यास करना चाहिये । मौनमें कुछ समय बीते तो बचन व्यवहार पर विजय प्राप्त हो सकती है ।

बचन बाणका घाव लोह बाणके घावसे अधिक होता है । दुर्वचनसे वक्ता भी दुखी होता है श्रोता भी दुखी होता है और फल उसका बुरा होता है सद् बचन व्यवहार सर्वत्र रक्षक है । जिसे बचन बोलना नहीं आता है वह कौन है ? पता है ? देख बचन बोलना पशुको नहीं आता है । पशु तुल्य जीवन क्या मानव जीवन है ।

कुछ चाहना ही न कुछ रह जानेका मंत्र है । कुछ न चाहना ही सब कुछ बननेका मंत्र है । कुछ चाहनेका फल संक्लेश, माया चार और बचन भंग है । कुछ न चाहनेका फल चित्तदाढर्य, संतोष, सरलता और सद्वचन व्यवहार है ।

हे आत्मन । आयुके क्षण निरन्तर बहे जा रहे हैं । जो हित करनेका पथ अनुसरना हो तो जल्दी अनुसर ।

हे आत्मन ! दुश्परीणाममें एक क्षण भी व्यतीत न हो ऐसा विवेक रख ।

२२ जनवरी १९५७

आज प्रातः ६॥ बजे पाटनसे चले ८ मील पर नूनसरमें चर्या की । दुपहरको १ बजे चल कर १२ मील पर मढ़िया आये शामको ५। बजे तक । साथमें श्री सिं० गुलाबचन्द जी तथा गोकुल चन्द जी जबल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुर वाले रहे। लोग थक गये किन्तु उत्साहमें आभास नहीं किया।

सर्व संग परिग्रह क्लेश का कारण है। अभ्यन्तर परिग्रह मूर्च्छा है। इस मूर्च्छाके रहने पर वाह्य परिग्रह परिग्रह हो जाता है। मूर्च्छा त्याग बिना संसार नहीं तिरा जा सकता।

शरीरको कायक्लेश वाली स्थितिमें रखना इस लिये तप है कि इस स्थितिमें विषय कषायके भावको अवसर नहीं मिलता। काय क्लेश तप व्यर्थ नहीं है। कायसे स्नेह करते हुए, कायको आराममें रखते हुए अथवा आराममें रखनेकी इच्छा करते हुये अनन्तकाल व्यतीत हो गया किन्तु लाभ की बात तो दूर रही क्लेश ही क्लेशका सघर्ष मिलता रहा अब कायको नाना तपस्यामें लगा दो।

विपदायें तो कुभाव है उन्हें दूर करना है इसका उपाय उपयोगको सही बनाना है उपयोगकी समीचीनताके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ऐसा नहीं है जो विपदाको दूर कर सके।

विषय कषायोंसे निवृत्त होकर सहज चैतन्य स्वभावकी दृष्टि रूप उपयोगका रहना सही रहता है। जब जब विषय कषायका परिणाम होता है तब तब पूर्व बंद्ध पापकी उदीरणा हो जाती है व तीव्र उदय हो जाता है, साथ ही अनेक पाप प्रकृतिया बध जाती है। कदाचित पूर्व पुण्यकी तीव्रतामें यश बना भी रहे परन्तु यह निश्चित है कि अचानक कभी भी पापकी उदीणा व तीव्र उदय हो बैठेगा। अतः परिणाम सदा समाधान रूप रक्खो।

२३ जनवरी १९५७

संसार सारा दुखमय है। कदाचित प्राणीको सुख भी हो जाय तो मोह पिशाच की कलाके कारण इतना उद्दण्ड है यह मोही जीव कि उस स्थितिमें इतराकर पापाशय बन जाता है अनेकोंको सताता है व स्वयं विषया कुल हो जाता है।

परिणाम ही सुख दुख का कारण है। नरकमें रहने वाला नारकी यदि सम्यकदृष्टि है तव वाह्य विरुद्ध कारण होते हुए भी अन्तरात्मामें आत्मीय आनन्दके कारण निराकुल रहता है। सिद्ध क्षेत्रमें रहने वाला निगोदजीव वैसे ही दुःख भोगता है जैसे अन्य सर्व स्थानोंमें रहने वाला निगोदजीव यानी सिद्ध प्रभुकी अवगाहना से अवरुद्ध आकाश क्षेत्रमें रहने वाला निगोदजीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दुख भोगता हैं।

वर्तमान दुखका साक्षात कारण तो उसकी वर्तमान समयका परिणाम है किन्तु वह उस कर्मके उदयको निमित्त पाकर हुआ जो कर्म पूर्व समयमें परिणामोंको निमित्त बन्धनको प्राप्त हुआ था। अतः यह कहना भी अनुचित नहीं है कि वर्तमान दुखका कारण पूर्व समयका परिणाम है।

वर्तमान दुखके साक्षात कारण वर्तमान परिणामका व्यय भूत परिणाम स्वभावाश्रियक शुद्धोपयोग है अतः दुःखका विनाशक तात्कालिक शुद्धोपयोग है। सर्व दुःख नाशक शुद्धोपयोग है। शुद्धउपयोगको शुद्धोपयोग कहते हैं। शुद्धके उपयोगको भी शुद्धोपयोग कहते हैं।

शुद्धोपयोग, साम्य, समाधि, स्वास्थ्य, योग्य, स्वभावाश्रय आदि सब एक उस ही मर्मके सूचक हैं।

२५ जनवरी १९५७

आत्माके परके प्रति व्यामोहकी परम्परा अनादिसे चली आई है। इसका विनाश प्रबल भेद विज्ञानके बिना नहीं हो सकता है। अतः निरन्तर भेद विज्ञान बनाये रहनेका लक्ष्य जिनके है अथवा जिनकी नैसर्गिक वृत्ति इस ओर है वे अपने उपयोगको निर्मल बनाये रहने में सफल हो सकते हैं।

आत्मन ! ध्यान रक्खो अपने उपयोगकी निर्मलता न बिगड़े ऐसा ही उपाय करो। एतदर्थ बुद्धि पूर्वक उपाय—सत्समागम, स्वाध्याय, भेद विज्ञान, द्वादश भावना आदि है। हे आत्मन। तेरा यहां कोई शरण नहीं है। तेरे सिवाय समस्त आत्मा तेरेसे अत्यन्त पृथक है। उनकी ओर उपयोग देकर अपने आत्म पर अन्याय मत करो। यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुआ है। इसे पाकर यदि ऐसा कार्य न किया जिससे समस्त २ दुःखोंसे निवृति रूप मोक्षका मार्ग न पालिया जावे तो खबर नहीं है कि दुर्गति ही हाथ रहेगी।

मनका विकल्प क्षणिक है यद्यपि अनुभवके अर्थ अन्तर्महूर्त तक होने वाली पर्यायोंका अन्तर्महूर्त तक होने वाला उपयोग उन्हें अनुभवता है फिर भी यह द्रव्य स्वभावके कारण सुनिश्चित है कि परिणमन प्रति क्षण होता रहता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मनके विकल्पमें मत बह जाना। विकल्प तो होकर त्वरित नष्ट हो जायेगा किन्तु विकल्प में बह जानेको निमित पाकर हुए कर्म बन्धोंका विपाक चिरकाल तक दुखी होनेमें निमित बन जायेगा।

आत्मन्! अपनी शक्तिका सदुपयोग कर। विषय कषायके उपयोगसे अपनेको बरबाद मत कर। तेरी शक्ति अनुपम है जिसकी भक्तिके प्रसादसे परमात्मा हो जाता है।

२५ जनवरी १९५७

व्यर्थका उद्यम छोड़ो और सुखी होओ

आत्मन्! क्या कष्ट है, जिससे अपनेको परेशान अनुभव करते हो। व्यर्थके उद्यम मनमें बसाये कोई, तो दुःख होना प्राकृतिक है। परन्तु तुम में स्वयंमें कोई विपदाकी बात नहीं और न तेरा विपदाका स्वभाव है। जो जैसा है वैसा मानते जावो फिर दुःखका कोई काम ही नहीं।

लोक शरीरको स्वस्थ रखना चाहता है किन्तु आत्माको स्वास्थ पर कोई लक्ष्य नहीं विधि विधान, निमित्त नैमेत्तिक भावकी दृष्टिसे देखो तो आत्माके स्वास्थ पर शरीरका भो स्वास्थ निर्भर है। आत्मा स्वस्थ है तो या तो शरीर स्वस्थ रहेगा अथवा शरीर ही न मिलेगा फिर दुःखास्थका झगड़ा ही समाप्त है।

कोई किसीको तुच्छ न समझे जो समझ में आता है वह तो पर्याय है। आज पर्याय किसीकी निम्न है तो कभी उच्च हो जावेगी। अथवा ऊंच नीच अवस्थामें क्या निरखते हो? यह उद्यम छोड़ो यदि ऐसे ही निरखोगे तो ऐसे ही बने रहनेकी संतति प्राप्त होगी। सर्व में चैतन्य सामान्य देखो और देखो प्रभुको जो कि कारण परमात्मा है सहज स्वभाव है।

मन तो जड़ है तब मनके निमितसे जो परिणाम बनेंगे आत्मामें हुये इससे चाहे जड़ न कहो किन्तु स्वभाव का मुकाबला करो तो वे जड़ हैं। जड़ से ममत्व न करना यानि विचार विभावसे ममत्व न करना। विभावोंकी ममता जगत में ममता की जननी है। विभावका ममत्व छुटा कि जगतका भी ममत्व छूट जायगा। व्यर्थका उद्यम छोड़ो, अपनी सुध संभालो।

श्री प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द जी जैन एम, एस सी जबलपुर बहुत ही

सज्जन पुरुष हैं। इतने महान होकर भी अपनेको बालबृन्द अनुभव करते हैं
http://sahjanandvarnishastra.org/
यह उनकी खास विशेषता है। आजकल ये सापेक्षवाद पर रिसर्च कर रहे हैं। यदि इनके रिसर्चमें कोई विघ्न न उपस्थित हुआ तो कल्याणेच्छुओंको एक बड़ी देन इनकी प्राप्त होगी।

२६ जनवरी १९५७

गणतन्त्र और स्वतन्त्रके अर्थ जुदे हैं, प्रयोजन भी जुदे हैं। गणतन्त्रता में एक कार्य जबकि समूहके आधीन हैं तब स्वतन्त्रतामें स्वका कार्य स्वके आधीन है।

वास्तविक स्वतन्त्रता तो स्वच्छता है। जहां परके संयोगको पाकर कोई उसके अनुकूल प्रभावित होनेको बाध्य न हो वह है स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता निर्मल परिणमन में है। मलिन परिणमनमें तो परतन्त्रता ही है। मलिन परिणामको मलिन, अहित समझना मलिन परिणामसे मुक्ति पानेका आद्य प्रयास है।

लोक मलिन परिणाममें ही आसक्त होकर अपना हनन करता है। मलिन परिणाम पर्यायें है सो वह एक समयमें होकर नष्ट हो जाता है। उसके मोहसे आत्माको क्लेश परम्परा ही प्राप्त होती है।

निर्मल परिणाम भी पर्याय है। वह भी एक समयमें होकर नष्ट हो जाती है। परन्तु अनैमित्तिक भाव है अतः वैसी ही वैसी निर्मल पर्यायें उत्तरोत्तर होती रहती हैं। निर्मल पर्याय वह है जहां मोह राग द्वेष नहीं। जहां मोह राग द्वेष होता है वहां उसके विषयका बना रहना अनिश्चित है। जहाँ मोह राग द्वेष नहीं उस पर्यायका निरन्तर प्रवाह चलता रहता है। देखो तो मर्म और विचित्रता। जिसे चाहो वह अपने अधिकारमें नहीं रहता और जिसे न चाहो वह अपने अधिकारमें रहता है।

श्रीमंत अरहंत भगवन्त कृपालुसेत लोकमें सर्वोच्च आत्मा है। जिसका ज्ञान दर्शन सुख वीर्य अनन्त प्रगट हुआ है और अनेक भव्यात्माओंके हित के निमित्त है।

२७ जनवरी १९५७

कोई विकल्प न उठे इससे बढ़कर अन्य कुछ वैभव नहीं और न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अन्यत्र आनन्द है सर्व ही अन्य हो तो पर है। उस सर्वसे मिल ही क्या सकता है, छोड़ो सर्व परके विचारोंको। छोड़ो सर्व विकल्पों को। छोड़ो जगतमें कुछ रुच जानेकी भावनाको। मानलो कि मैं इस पर्यायमें ही नहीं हूं, कल्पना करो तुम अन्य पर्यायमें होते तो यह बात ठीक थी ना। अब इसे वैसें ही मिल गई ऐसा जानकर, लौकिक हिसाबसे नहीं मिली ऐसा समझकर इस भावको ज्ञान, ध्यान, तपमें गुजार कर अपना समय सफल करो।

http://www.jainkosh.org

फांस तनकसी तनमें साले, चाह लंगोटीकी दुःख भाले। सर्व कुछ दिखाऊ चीज छोड़ चुकने पर भी यदि वर्तमान विभावकी उन्मुखता पकड़ नहीं छूटी तो बाह्य चीजों या न रहना दोनों बराबर हैं क्योंकि आकुलता व कर्मबन्ध बाह्य चीजसे उत्पन्न नहीं होती। आकुलताका अन्तरंग कारण चाह है और कर्म बन्धका निमित्त कारण आत्म परिणाम है।

बाह्य वस्तुका आश्रय बनाया जावे तो बाह्य वस्तु आकुलताका उपचार कारण है। कर्मोदय आकुलताका। अन्तरंग कारण आत्माका विभाव परिणाम है। विभावकी पकड़ तीव्र आकुलताका कारण है।

कर्म बन्धका अन्तरंग कारण वे ही कार्माण वर्गणायें हैं जिनकी कि बन्ध अवस्था होती है। कर्मबन्धका निमित्त कारण आत्माका विभाव परिणाम है। विभाव परिणामका व्यामोह तीव्र कर्म बन्धका कारण है।

कितने ही लोग कर्मको कोई मेटर (पुद्गल) नहीं मानते हैं किन्तु आत्माके परिणाम ही कर्म हैं सो जो जैसा परिणाम करता है वह वैसा फल पाता है इतना मानते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि जो जैसा परिणाम करता है वह वैसा फल पाता है। तथापि आत्मा जब कर्म पुद्गल बिना अकेला है तब उसमें विभाव परिणामका आना कैसे सम्भव है।

यदि केवल आत्मामें विभाव परिणामको संभव माना जावे तो विभाव सदा रहना चाहिये और एक सा रहना चाहिये। सो है नहीं, अतः कर्म पुद्गल वास्तवमें संसारी आत्माके साथ है।

२८ जनवरी १९५७

आत्माकी स्वभाव दृष्टि तो माता है, निर्मल आत्माकी जननी है, भेद विज्ञान पिता है निर्मल पर्याय कारण है, वैराग्य मित्र है, विपदाओंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बचाने वाला है, विवेक वधु है, समता बहिन है, स्वानुभूति रमिणी है।

आत्मन्! तेरी कम्पनीमें कितनेही बड़े २ साधु संत भी हारे, जो भी बड़ोंकी कथा है वह तेरी भक्तिकी कथा है। आत्मन्! तू आनन्द व ज्ञानका पुञ्ज है इसीसे तू सच्चिदानन्द है, तेरा ध्यान नियमसें अद्भुत, स्वायत्त आनंदका उत्पादक है।

आत्मन् तेरा ध्यान रहे तब जंगलका वास भी भला, अनशन होते रहना भी भला, अन्य जीवोंके द्वारा आया उपद्रव भी भला, परन्तु तेरे ध्यान बिना महलोंका रहना भी अग्नि वास है, सुस्वादु भोजन विष भक्षण है, अन्य जीवोंके द्वाराकी जाने वाली सेवा काटोंकी सेज है।

आत्मन्! तेरी भक्ति रहे, उपासना रहे उससें बढ़कर कोई विभूति नहीं। तेरी उपासना धनी सम्राट भिखारी ही तो हैं। परम संतोष आत्मलीनतामें ही है, अन्यत्र है ही नहीं। सबसे बड़ी जो बात है वह तुम्हींमें तो है न देखो, न मानो, न जानो तो इसमें अपराध किसका?

इससे बढ़कर आलस्य और क्या कि बना बनाया स्वतः सिद्ध) स्वभाव का स्वाद नहीं लिया जाता। इससें बढ़कर भौंदूपना और क्या कि पास ही क्या खुद ही खुद इस बड़े वैभवका पता ही नहीं किया जा रहा है। इससें बढ़कर और उद्दण्डता क्या कि दर्शनोपयोग द्वारा अनन्तोबार अनुपम यह भेट हाथ दिये जाने पर भी तिरस्कृत किया जा रहा है।

आत्मन्! दुर्भाग्यके दिन गये, अब सत्समागम मिला, बुद्धि प्राप्त हुई, अनेकों वीतराग ऋषियोंकी अनुभूत औषधियाँ मिल रहीं फिर भी संसार रोगका रोगी रहा तो समझदार तो यही कहेंगे कि धत तेरीकी।

२६ जनवरी १९५७

आत्म ध्यान कठिन नहीं, विभाव छूटना कठिन नहीं क्योंकि सबका उपाय मात्र जैसा है तैसा जानना है। यथार्थ ज्ञान भी कठिन नहीं, बस ज्ञान करने लगो। ज्ञान करनेका प्रयास भी कठिन नहीं क्योंकि इतनी योग्यता आज प्राप्त है। उक्त सर्व सिद्धि कठिन असैनीके लिये कहो तो वहां कठिन ही क्या उस अवस्थाके रहते हुये असंभव ही कह डालो।

ज्ञानका प्रयास करो तो ज्ञान करना सरल है, न प्रयास करो तो ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कठिन क्या, इस पुरुषार्थ हीनताकी दशा रहते हुये असंभव है।
http://www.jainkosh.org

इन्द्रियोंकी दासता न रहे यह सबसे महान् पावन पुरुषार्थ है। यह ज्ञान बिना असाध्य है। अनादि अब तक अनेक पाप हुए, उन सबको भस्म कर देनेका बल ज्ञान भावमें है। आत्मामें द्रव्य होनेके कारण प्रति समय कोई न कोई पर्याय रहती है और एक पर्यायके रहते हुए वह ही है अन्य कोई पर्याय नहीं हो सकती। तब यह तो प्रगट सिद्ध ही है कि ज्ञान भावनाकी पर्यायके रहते हुए एक भी पाप भाव नहीं है। ज्ञानोपासनाकी स्थितिमें पाप परिणाम द्वारा बद्ध कर्मोंको छत्र छाया न मिलनेसे उनका टिकना कठिन हो जाता है अतः अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ज्ञानोपासनाकी अभिन्न परिणतिके निमित्त को पाकर चिर संचित कर्म निर्जराको प्राप्त हो जाते हैं, इसमें संदेहको कोई स्थान नहीं है।

हे आत्मन्! न देख दुनिया की ओर। जो दिखता उनसे तेरी आत्मा को क्या मिलेगा। कुछ नहीं, क्योंकि आत्म द्रव्य उन सबसे अत्यन्त न्यारा है। सर्व पदार्थ अपने अपने चतुष्टयमें परिणत होते हैं। कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य पर असर नहीं डालता किन्तु यह परिणममान वस्तुवोंकी विशेषता है कि वह किसको निमित्त पाकर कैसा परिणाम जावे। वस्तु स्वभावकी पहुंच जीवकी अनुपम विभूति है।

होता स्वयं जगत परिणाम। मैं जगका करता क्या काम।

३० जनवरी सन् १९५७

अपनी सच्ची प्रसन्नतामें ही आनन्द है।

जीवनका विश्वास क्या कब तक यह मनुष्य जीवन है, पानीके बबूले का विश्वास क्या कब तक वह ठहरा रहता है। बबूलेके ठहरनेमें आश्चर्य है नष्ट होनेमें आश्चर्य नहीं, मनुष्य जीवन अब तक बना रहा इसमें आश्चर्य है उसके नष्ट होनेमें कोई आश्चर्य नहीं।

जब तक जीवन है—जो करना हो झट करो। क्या करना उत्तम है? धन जोड़ लेना। नहीं, यह तो सब यहीं पड़ा रह जावेगा। इज्जत बढा लेना। नहीं इज्जत करने वाले भी यहीं रह जायेंगे। इज्जतकी चेष्टा इज्जत करने वालोंकी परिणति है। और इज्जत मानना इस मरने वालेकी परिणति है।
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मरणके बाद इज्जत करने वाले साथ नहीं जाते और न इनकी चेष्टाका कुछ भी निमित्त वहां बनता। इज्जत माननेकी परिणतिमें जो पाप कर्म कमा लिया जाता उसका फल उसे परलोकमें मिलेगा। और इज्जत माननेकी स्थिति स्वप्न ही रह जायगी।

इस जगतमें किसीका कोई शरण नहीं यानी किसीका कोई कुछ नहीं करता। होना भी यही चाहिये अन्यथा सर्वनाश हो जायगा। सर्वका लोप हो जायगा। सर्व सर्व इस लिये है कि प्रत्येक अपने चतुष्टयसे बाहर नहीं जाता। प्राणी मान्यतामें अपने चतुष्टयसे बाहर चला जाता इसी लिये आज तक संसार भ्रमण कर रहा है।

परकी चेष्टावोंसे अथवा परके प्रसन्न करनेके प्रयाससे स्वयंको कुछ लाभ नहीं मिलता परकी विरुद्धतासे अथवा परकी अप्रसन्नतासे स्वयंको कुछ हानि नहीं पहुंचती।

अपनी प्रसन्नतासे अपना लाभ है। अपनी अप्रसन्नतासे अपनी हानि है। प्रसन्नताका सही अर्थ निर्मल स्वच्छता है, इसीमें सत्य आनन्द है। ॐ, सच्चिदान्दाय नमः ॐ नमः सच्चिदानन्दम्।

३१ जनवरी १९५७

कुछ भी विचार आते हों, उन सभीका निरोध कर देना आत्मीय आनन्दके विकासके लिये श्रेयस्कर है जिसका विचार हो वह मेरा क्या सहाय करेगा? आत्माका भी विचार आता हो तो विचार रूपसे समझा गया आत्मा विचारमें समाई न हो पानेसे वह पर है।

मनुष्य भव दुर्लभ है इसे विषय कषायोंमें पास नहीं करके निर्विकल्प निज ध्यान द्वारा पास कर देना बुद्धिमानी है।

आत्माका एकत्व स्थानका एकत्व परिणमनका एकत्व, स्वभावका एकत्व, सभी एकत्व श्रेय है। परन्तु कमजोरीकी हालतमें सत्संगति आवश्यक है।

किसीको अपना मत समझो अर्थात् अपनेको सबसे न्यारा समझो, परमे कुछ करनेकी चाह, परसे अपनेमें कुछ आ जानेकी कामना ये दोनों मिथ्या बुद्धिके फल हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यद्यपि लोकमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है फिर भी निमित्त उपादान में कुछ करना नहीं है किन्तु उपादान निमित्तको पाकर उस प्रकार परिणमता चला जाता है।

तुम्हारा अन्य पदार्थोंसे आश्रय आश्रयि सम्बन्ध है फिर भी आश्रयभूत अन्य पदार्थ तुम आश्रयीमें कुछ करता नहीं है किन्तु तुम परको आश्रय बनाकर इस रूप परिणमते चले जाते हो।

निज पर्यायमें वहोमत अर्थात् पर्यायको स्वयं मत समझ जावो। पर्याय तुम्हारा क्षणिक परिणमन है। पर्यायके कालमें तुम पर्याय मात्र हो परन्तु तुम पर्याय मात्र ही तो नहीं हो। तुम ध्रुव चैतन्य स्वभाव हो।

१ फरवरी १९५७

सत्य तो सदा सत्य ही रहता है। सत्य न माननेसे कहीं सतका सत्य समाप्त नहीं हो जाता। सत्य और अहिंसा कहनेको २ चीज हैं – वस्तुतः जो सत्य है वह अहिंसा है जो अहिंसा वह सत्य है। सत्यका अर्थ है सतिभवं सत्यम्, जो सत याने वस्तुमें स्वतः सिद्ध है वह सत्य है, और अहिंसा अर्थ है हिनस्ति इति हिंसा, हननत्र हिंसा, न हिंसा इति अहिंसा। जो नष्ट करना है वह हिंसा है। कोई वस्तु किसी वस्तुको नष्ट नहीं कर सकता जैसे कि कोई वस्तु किसी वस्तमें कुछ उत्पन्न भी नहीं कर सकता। नष्ट कर सकता है तो अपने ही परिणमनको और उत्पन्न कर सकता है तो अपने ही परिणमनको। परिणमन मात्र तो अपना स्वभाव है इस पूर्व परिणामका नाश और उत्तर-परिणमनका उत्पाद होता है। इस नाशसे हिंसाका दिग्दर्शन नहीं होता तब अहिंसाका भी प्रतिबोध नहीं होता।

यहाँ यह तात्पर्य लेना है कि जो परिणमन स्वभावके अनुरूप स्वाभाविक बासका बाध है वह परिणमन तो हिंसा है और स्वाभावानुरूप परिणमन बाधा न आना अहिंसा है।

इस प्रकार सत्य और अहिंसाके स्वरूपमें कुछ अन्तर न आया वस्तुमें सत्य व अहिंसाकी विजय स्वाभाविक है क्योंकि सत्य और अहिंसा निरपेक्ष सब अनैमितिक है।

जिन्हें सत्यका आदर नहीं वे असत्य बनकर संसार भ्रमण बढ़ाते हैं

Version 1

किन्तु जिनके उसका आदर है वे सब माया जालसे मुक्त होकर स्वयं सत्य स्वरूप बन जाते हैं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिनके अहिंसाका आदर नहीं वे स्वयं स्वयंकी हिंसा करते हुये क्लेशके पात्र होते हैं और जिनके अहिंसाका आदर है वे सर्व विकल्प एवं क्लेशोंसे मुक्त होकर साक्षात अहिंसामय हो जाते हैं।

२ फरवरी १६१८

द्वादश भावना

दृश्य मान समस्त जगत पर्याय है, अनित्य है, अहित है।

ध्रुव स्वभावी आत्म तत्व द्रव्य है, नित्य है उसका आश्रय हित है।

मित्र, बन्धु, देव, सेवक आदि मुझ आत्माको शरण नहीं है।

ध्रुव चैतन्य स्वभावमय आत्मतत्वका आश्रय मुझे शरण है।

परिग्रह रूप द्रव्य संसार और राग द्वेष रूप भाव संसार दुःख रूप हैं।

समस्त संयोग और संयोगी पृथक असंसार चैतन्यभाव आनन्दरूप हैं।

पर पदार्थ और पर भावोंके एकत्वका अभिप्राय परिभ्रमण कराने वाला है।

निज स्वभावके एकत्वका दर्शन स्वमे स्थिति कराने वाला है।

अन्य द्रव्य में कुछको अपना इतरको अन्य मानना समता स्वरुपके विकास का बाधक है।

निज चैतन्य स्वभावसे विलक्षण सर्व द्रव्य व भावोंको अन्य मानना स्वभावाश्रयका साधक है।

स्वभावसे विपरीत विभावोंका—जो कि हैं—आदर करना अशुचि पर्यायका कारण है।

स्वतः शुचि निज चैतन्य स्वभावका आदर करना शुचि पर्यायका कारण है।

रागद्वेष मोह रूप आश्रव भावोंमें रुचि होना विभाव संततिकी दृढ़ताका कारण है।

स्वतः निराश्रयरूप चैतन्य स्वभावमें रुचि होना विभाव विकासका कारण है।

सहज स्वभावके सहज विकास रूप संवर भावकी प्रतिमुखता संसार वृद्धिका हेतु है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सहज स्वभावके सहज विकास रुप संवरभावके सोत ही http://www.jainkosh.org मुक्तिका हेतु है।

कर्मके उदय अथवा उदीरणा वश हुई निर्जरा क्लेशके लिये है।

निज स्वभावाश्रयसे होने वाली कर्म व विभावकी निर्जरा शान्तिके लिये है।

लोक क्षेत्रके स्नेह और परिग्रहसे यह जीव सर्वत्र अनन्तोबार जन्म मरण कर लिया है।

निज चैतन्य लोकके आश्रयसे जीव जन्म मरणसे रहित शुद्धतत्वाश्रय आनन्द प्राप्त कर लेता है।

निज स्वभावकी उपासना में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति दुर्लभ है।

निज स्वभावकी उपासना में सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रका होना अनायास सुलभ है।

परके लक्ष्यसे प्रगट होने वाला आत्म धर्मका विकास अधर्म है।

निज स्वभावके लक्ष्यसे प्रगट होने वाला आत्म धर्मका विकास धर्म है।

३ फरवरी ११५०

आज श्रीयुत सेठ भवरीलाल जी पाण्डया झूमरीतिलय्या वालोंने मुझ को कहा कि महाराज किसी धर्म कार्य या ज्ञान प्रभावनाके अर्थ कोई हजारक रुपये लगाये जाने हो तो आप बताइये। मैंने कहा कि आगे मुझे कोई इसका विकल्प नहीं है तब भवरीलाल जी ने बड़ा आग्रह किया कि महाराज मुझे कुछ बता ही दीजिये। तब श्रीयुत सिघई मुन्नीलाल जी गोटे गांव वालो के प्रोग्राम अनुसार बतलाया गया उन्होंने १०००)रु० लाऊड स्पीकरके लिये प्रदान किया।

किसी परपदार्थसे मेरा हित नहीं है क्योंकि हित अनाकुलता में है। अनाकुलता किसी बाह्य वस्तुसे प्रगट नहीं होती है। आत्माका चैतन्य स्वभाव आकुलताकी तरङ्गोंसे स्वयं दूर है उसके आश्रयसे ही यह हित प्रगट होता है। जगतका कोई भी कार्य कोई भी परोपकार कुछ भी सेवा यह सब आत्म हितका साधन नहीं। हां विषय कषायकी बाधा न हो इस प्रयोजनके अर्थ यदि परोपकार सेवा हो तो उसमें जो विषय विवृति है वह सार प्रयोजन है उतनी साधना है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ममता ही आत्म द्रव्की पिशाचनी है क्षमता, दमता, समता, उत्तरोत्तर आत्मानंदकी सिद्धियां हैं। ये ही ऋद्धियां हैं।

केवलज्ञानका कारण आत्मज्ञान है, आत्मज्ञानका कारण स्वभाव दृष्टि है, स्वभाव दृष्टिका कारण स्वभाव ज्ञान है। स्वभावका ज्ञान विभावके विभाव रूप से ज्ञान किये बिना नहीं हो सकता है। स्वभावको स्वभाव समझना विभावको विभाव समझना उपादान निमित्त के यथार्थ ज्ञान बिना नहीं हो सकता। उपादान निमित्का बोध वस्तुके स्वरूपके बोध बिना नहीं हो सकता। अतः वस्तु स्वरूपका बोध अवश्य करना चाहिये यही उत्तरोत्तर ज्ञान की निर्मल पर्यायोंकी सृष्टिका कारण बनकर केवलज्ञानका कारण बन जाता है।

४ फरवरी १६५८

लोग चाहते हैं कि ज्ञान, सारी समझ अभी ही आजावे। धनोपार्जनके लिये तो बड़ी गमें, प्रतिज्ञायों की, परिश्रम किया और अनादि कालसे ज्ञानके विकासके लिये चाहते हैं कि अभी ही प्रगट हो जावे। क्या हो सकता है ऐसा? असंभव तो नहीं किन्तु महा कठिन है। किसीके ऐसा हो भी जाता है तो उसका मुख्य कारण परिणामोंकी निर्मलता है, परिणामोंकी निर्मलता भी न होवे तो यह बात असंभव है।

कुछ भाई कल्पना करते हैं कि आत्मा शरीर से प्रथक कोई वस्तु नहीं है किन्तु शरीरकी ही एक विशिष्ट शक्ति है जो कि मस्तिष्क का कार्य है। कुछ स्वीकार करते हैं कि आत्मा शरीर से पृथक भूत वस्तु है।

उक्त दोनों की दृष्टियों से भी विचार करै तो चाहते तो दोनोंही सुख शान्ति सुख शान्तिका सम्बन्ध ज्ञानसे कहो व कल्पनासे; है ज्ञान से ही सम्बन्ध। जैसे भौतिक पदार्थोंके समागममें कल्पना करली कि सुख है तो वह सुख कल्पना से हुआ। भौतिक शरीर आदि से प्रथक अरूपी आत्माका विचार किया तो हुई यहां भी शान्ति कल्पना से। यहां तक तो बहुत खिचाव के साथ बराबरी हुई। अब विवाद यहां जरुर रह जाता है कि कौन सी कल्पना का सुख निराबाध है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भौतिक पदार्थ विनश्वर है हमारी चाहके अनुसार प्रकट नहीं होते परिणमित नहीं होते उनका वियोग ही है, अतः भौतिक पदार्थों को कल्पना में सुख निरावाध नहीं रह सकता।

आत्मा अरूपी है नित्य है। अपने विचारके मुताबिक है उसके विचारों में टिकाऊ विषय है अतः शांतिका उपाय आत्माका अवलम्बन ही है।

५ फरवरी १९५७ बसन्त पंचमी

(१) कल्याणके लिये यह आवश्यक है कि किसी भी परवस्तुको चित्तमें न लाओ।

(२) यदि ऐसा नहीं हो पाता तो निज स्वरूपका ध्यान करने लगो।

(३) यदि यह भी नहीं हो पाता और पर वस्तु चित्रमें आती है तो उस पर वस्तुका यथार्थ ध्यान करने लगो परको चतुष्य रूप जानो।

(४) यह सब जाननेके लिये बोधाभ्यासकी जरूरत है सो बोधाभ्यास करना ही चाहिए संसारका कोई भी प्राणी, कोई भी मानव जिसका कि हस्त अपने सिर पर भी हो, साधी नहीं है। लोग तभी तक तेरे अनुकूल हैं जब तक तेरेमें वह कुछ है जिसके लिये लोगों की चाह है।

इस बात पर खेद करना वृथा है कि अमुकका ऐसा उपकार किया और वह धोका देकर अपना स्वार्थ साधता है। क्यों ? वृथा है ! इसलिए वृथा है कि प्रत्येक वस्तु खुदके अनुकूल ही तो परिणमती हैं। मेरे खुदका मेरेमें परिणमन है अन्यके खुदका अन्यमें परिणमन है।

अन्यका मैं करता नहीं इस वास्तविक सिद्धान्तकी प्रतीतमें निराकुलता हो जाती है। मैं अपनीं पर्यायका ही करता हूं सो भी होती वही पर्याय है जो होनी होती है सर्वज्ञ द्वारा ज्ञात हो चुका है। सर्वज्ञ द्वारा वह ज्ञान है जो हम करेंगे।

दुःख और सुख सब संसार भाव है। आनन्द दुःख और सुख दोनों से परे है। आनन्दमें तो स्मृधि है। सुख दुखमें अपनी स्मृद्धिकी बराबरी है।

६ फरवरी १९५७

मैं अपने वर्तमान भावको निर्मल करू

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१) मैं शरीरसे अत्यन्त पृथकभूत वस्तु हूं।

(२) मैं शरीरको छोड़कर आगे भी रहूंगा क्योंकि मैं हूं, जो है होता वह कभी नष्ट नहीं होता केवल अपनी पर्याय बदलता रहता।

(३) मैं क्या रहूंगा ? जैसा वर्तमान परिणाम कर रहा हूं उसहीके अनुकूल किसी पर्याय में रहूंगा।

(४) मैं स्वतन्त्र सत्तावान पदार्थ हूं। जगतमें सभी प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र सत्तावान् है।

(५) मैं स्वतन्त्र हूं अतः मेरा द्रव्य ही मैं हूं। मेरा क्षेत्र ही मेरा प्रदेश है। मेरा परिणमन ही मेरा कार्य है, मेरी सहज शक्ति या ही मेरे गुण है।

(६) मैं अपने चतुष्टय मय हूं अतः मैं इस शरीरसे भी उतना जुदा हूं जितना कि अन्य शरीरोंसे। धन मकान आदिका कुछ कहना तो बड़ी ही मूर्खता है क्योंकि ये तो आवाल गोपालको भी प्रगट जुदे दीखते हैं।

(७) मैं जिस भाव में अभी हूं यह भाव द्वितीव क्षणमें नहीं रहेगा यह भाव भी स्वप्न वत है सो वर्तमान परिणाम में आसक्त होना मेरा कर्तव्य नहीं है।

(८) मेरे कोई भी परिणाम एक समयसे आगे नहीं रह सकते अतः भविष्यके भी किसी परिणाममें बुद्धि रखना मेरा कर्तव्य नहीं है।

(९) मेरे भूतकालके परिणाम तो भूत ही हो गये उनके सम्बन्धमें चित्त डुलाना अत्यन्त मूर्खता पूर्ण विचार कहलाता है।

(१०) मैं सुख दुःख अपने वर्तमान परिणामसे करता हूं अतः किसीकी आशा न रख वर्तमान परिणामको निर्मल करूंगा।

७ फरवरी १९५७

एक प्रश्न हुआ कि क्या वजह है कि हाथ पैर आदिमें जिस जगह शून्य करनेकी दवा लगा दी जाती है उस हिस्सेमें ज्ञान नहीं होता, क्या वहां के आत्म प्रदेश सुन्न कर दिये गये हैं या वहां के ज्ञान तन्तु बिगड़ गये।

उत्तर—आत्म स्वयं ज्ञानमय है अतः उसें स्वयं ज्ञान करते रहना चाहिये और निश्चयतः करना भी स्वयं है परन्तु अनादिसे पराधीन ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकास होनेके कारण यह जीव इंद्रियोंके निमितसे ज्ञान करता है सो जब कोई इन्द्रिय बिगड़ जाती है तन्निमितक ज्ञान नहीं हो जाता। उस औषधिको निमित्त पाकर द्रव्येन्द्रिय प्रभावित होती है और द्रव्येन्द्रियकी खराबी हो जाने के कारण आत्मा तन्निमितक ज्ञान नहीं कर पाता है।

जैसे चक्षुरिन्द्रिय बिगड़ जाने पर देखनेका कार्य नहीं किया जा पाता वैही स्पर्शनेन्द्रियके बिगड़ जाने पर उतने स्थानके काटे जाने पर स्पर्श वेदना का काम नहीं हो सकता।

चक्षुरिन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय एक जगह है सो वहां स्पर्शनेद्रिय तो बिगड़ी नहीं अतः वहांके स्कन्वके छुए आदि जाने पर स्पर्श वेदनाका अनुभव है किन्तु चक्षुरिद्रिय बिगड़ी है तो रूप ज्ञानका कार्य नहीं हो पाता।

हाथमें शून्य करने वाली औषधिके लगाने पर हाथके छेदे जाने पर आत्माके समस्त प्रदेशों में स्पर्श वेदनाका अनुभव नहीं किन्तु कन्धे आदि में चोट या आघात करने पर आत्माके समस्त प्रदेशोंमें औषधि वाले हाथ के प्रदेशों में भी सर्वत्र स्पर्श वेदनाका एक अनुभव है।

प्रत्येक आत्मा एक एक अखंड है अतः आत्मामें सुख दुःख ज्ञान आदिका जो अनुभव होगा जो परिणाम होगा वह आत्माके सब प्रदेशोंमें एक साथ होगा और आत्म क्षेत्रसें बाहर कहीं भी नहीं होगा।

८ जनवरी १९५७

द्रव्य, वस्तुको देखनेके दो प्रकार हैं—१ किसी वस्तुको खालिस यानी केवल उसीको देखना, २—दो या दो से अधिक वस्तुओं को सम्बन्ध रूप से देखना। इनमें से पहिले प्रकार का नाम निश्चय नय है और दूसरे प्रकारका नाम व्यवहारनय है।

निश्चयनयके प्रकारसे ज्ञात वस्तु भी तीन प्रकारसे ज्ञात होनेमें आती है। १—अखंड स्वाभाव दृष्टिसें, २—शुद्ध अवस्था की दृष्टिसें, ३—अशुद्ध अवस्था की दृष्टि से। इनमें से पहिले प्रकारका नाम परम शुद्ध निश्चयनय है। तीसरे प्रकारका नाम अशुद्ध निश्चयनय है।

उक्त चार प्रकारके अभिप्रायोंमें से सर्व प्रथम अर्थात परम शुद्ध निश्चयनय निश्चयनय ही है और अन्तिम अर्थात् व्यवहारनय व्यवहार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नय ही हैं। मध्यके दो अर्थात शुद्ध निश्चय एवं अशुद्ध निश्चय ये दोनों अपेक्षा कृत निश्चय हैं और अपेक्षा कृत व्यवहार हैं।

जगतके प्राणी व्यवहारनयके विषयसे ही परिचित हैं और परिचित हैं इस प्रकार कि उसीको सर्वस्व समझा है। व्यवहारको यह व्यवहार है निश्चय नहीं इस प्रकार नहीं समझा है। इस अभिप्रायमें आकुलता ही मात्रहस्तगत है।

आकुलतासे बचनेके लिये निश्चयनयके अभिप्राय का आश्रय लेना चाहिये। उन तीन अभिप्रायोंमें पहिले अशुद्ध निश्चयकी ओर मुडे। क्योंकि जीवोंको अशुद्ध पर्यायका परिचय अनादिसे चल रहा है। सो उस अशुद्ध पर्यायको निश्चयनय की शैलीसे देखे। फिर अभ्यास करे शुद्ध निश्चयकी दृष्टिसे देखने का, क्योंकि स्वभावके अनुरूप शुद्ध पर्याय है।

आज श्री दयाचन्द जो फर्म माणिक लाल सतना ने प्रवचन समिति को एक हिन्दी टाइप राईटर भेट करने को कहा।

६ जनवरी १९५७

निम्न स्वभाव दृष्टि सम्यक्त्व सुपुत्र की जननी है। स्वाभाव दृष्टि पाने के लिये ५ प्रकारके प्रकरण गौण करदेना चाहिये इसके लिये:—

१— आत्मद्रव्यसे भिन्नपदार्थोंका आत्मद्रव्यमें संयोग न देखना

२—त्रैकालिक, एक स्वभावसे विलक्षण व्यञ्जन पर्यायोंको न देखना

३—त्रैकालिक नियत स्वाभावसे विलक्षण गुण पर्यायोंको न देखना

४—परम सामान्य स्वभावसे विलक्षण शक्ति भेद (गुणोंको) न देखना

५—स्वतः सिद्ध स्वभावको नैमैतिक परिणमनोंसे संयुक्त न देखना।

स्वानुभव यद्यपि प्रमाण एवं नयोके विकल्पसे रहित है, तथापि स्वानुभव स्वयं प्रमाण स्वरूप है।

स्वानुभव का उपाय साक्षात तो नहीं है क्योंकि वह सहजवृत्त परिणमन है तथापि स्वानुभवसे अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती परिणमन तक पहुंचनेका उपाय है। एतदर्थ पहिले व्यवहारनय और निश्चयनय दोनोंके विषयोंका अध्यन मनन करे फिर दोनोंको सापेक्ष देखते हुए प्रमाणित ज्ञान स्थापित करे तदन्तर निश्चयनयकी मुख्यदृष्टिसे एक सामान्यका उपयोग करे। यहां तक तो उपाय बताये तदन्तर एक सामान्यके विकल्पसे भी दूर हो जाना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है उस समयकी निर्विकल्प अवस्थामें जो अनाकुल स्वसंवेदन है वह स्वानुभव है।

संसारमार्ग तो आस्रव बंध है मोक्षमार्ग संवर निर्जरा है। एक समयमें आत्माके एक पर्याय होती है। आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा चारोंका कारण पर्याय है। सम्यग्दृष्टिके भी एक समयमें एक पर्याय है और वह पर्याय आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा चारोंका कारण है। पर्यायकी अद्भुतता भी देखो, शक्तिका कैसा विचित्र विकास है।

१० फरवरी १९५७

जानने वाला ज्ञान है सो जाननेमें भी ज्ञान आवे तो ऐसी स्थिति हो जाती है कि ज्ञाता ज्ञान है और ज्ञेय भी ज्ञान है। जहां ज्ञाता और ज्ञानमें कोई भेद नहीं रहता वह अवस्था प्रायोगिक स्वरूपाचरण है, स्वानुभव है।

ज्ञान धर्म है उसे जाननेके लिये आत्मा धर्मीका ज्ञान होना आवश्यक है। आत्मा चैतन्य स्वरूप है, स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है, निर्विकल्प है।

आत्माके सम्बन्धमें समझनेकी प्रकारे दो हैं एक जाति, दूसरा व्यक्ति। जाति आत्मा तो महासत् है, व्यक्ति आत्मा विशेष सत् है। जाति आत्माकी अपेक्षा आत्म सत् है वो व्यक्ति आत्माकी अपेक्षा असत् है। जाति आत्मा एक है। व्यक्ति आत्मा अनेक है, जाति आत्मा एक रूप है। व्यक्ति आत्मा अनेक रूप है। जाति आत्मा शुद्धाशुद्ध सर्व पर्याय स्थित है, व्यक्ति आत्मा एक पर्याय स्थित है। आत्मा अंशीकी अपेक्षा त्रिलक्षण है, अंशकी अपेक्षा अत्रिलक्षण है।

आत्म द्रव्य दृष्टिसे अभेद रूप है, द्रव्य रूप है। पर्याय दृष्टिसे आत्म भेद रूप है देशांश (प्रदेश) गुण, गुणांश (पर्याय रूप है)।

आत्माको भेदों द्वारा समझा जाता है किन्तु प्रतिबिम्बित याने प्रमाण रूपमें आगत अभेद रूप ही होता है।

आत्माका विलास अचिन्त्य है इसीके परिणाममें तो अनंत भाग वृद्धि असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त भाग हानि, असंख्यात भाग हानि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनन्त गुण हानि आदि वृद्धि हानियां होती रहती हैं।

११ फरवरी १९५७

आत्माकी उन्नति आत्माके ज्ञाता दृष्टा बने रहनेमें है। आत्माका ज्ञाता दृष्टा रहना अकषायता पर निर्भर है। अकषायता होना अकषाय स्वभाव चैतन्य तत्व के अभिमुख होने पर निर्भर है। यह अभिमुखता ज्ञान साध्य है अतः ज्ञानके लिये यत्न करना सर्वोपरि पुरुषार्थ है।

यथार्थ ज्ञान हो जाने पर भी यदि पुरुषार्थ नहीं चमकता है तो उस ज्ञान की यथार्थताकी प्रतीतमें कमी समझो। प्रतीत पूर्ण होने पर पुरुषार्थ चाहे उतना न बने फिर भी पुरुषार्थ चमकते हुएकी पद्धतिमें रहता ही है।

पुरुषार्थ पुरुषके अर्थको कहते हैं। पुरुषका अर्थ याने प्रयोजन शान्ति। शान्ति बिना यथार्थ ज्ञानके नहीं हो सकती। अतः यथार्थ ज्ञान करना ही सत्य पुरुषार्थ है।

(१) वह मनुष्य जो खुद अपने दुर्भावमें रहता है और दूसरोंसे घृणा करता है।

(२) वह मनुष्य जो खुद अपने सुधार मार्गकी ओर है किन्तु दूसरेसे घृणा करता है।

(३) वह मनुष्य जो खुद तो सुधार मार्ग पर नहीं किन्तु गुणियोंका बहुमान करता है।

(४) वह मनुष्य जो खुद तो सुधार मार्ग पर नहीं किन्तु गुणियोंका बहुमान करता है एवं दूसरोंसे घृणा नहीं करता।

(५) वह मनुष्य जो सुधारके मार्ग पर है और दूसरोंसे घृणा भी नहीं करता।

(६) वह मनुष्य जो खुद सुधार मार्गमें रहता है और दूसरोंको सुधार मार्गमें चलनेकी प्रेरणा करता है एवं दूसरोंसे घृणा नहीं करता एवं गुणियों का बहुमान करता है। ये मनुष्य उत्तरोत्तर उत्तम है।

१२ फरवरी १९५७

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सत्य स्वरूपता स्वयं है और बनता फिरता असत्य। यह संसारी भगवान

http://www.jainkosh.org

से भी बड़ा बनना चाहता है। भगवान तो केवल सत्यको जानतेथे संसारी असत्यकी भी कल्पना करते रहते हैं।

सत् द्रव्य, गुण पर्याय रूप है। अतः भगवान द्रव्य जानते हैं, गुण जानते हैं पर्याय जानते हैं। भगवान संयोग नहीं जानते हैं, मात्र नहीं जानते हैं। शरीर मेरा है ऐसा ज्ञान मोही बना लेते हैं, भगवान तो इस विकल्प में परिणत आत्माको जानते हैं। क्योंकि विकल्प आत्माकी पर्याय है शरीर का और आत्माका संयोग जिसे मोही देखते हैं वह संयोग किसीकी भी पर्याय नहीं, न तो संयोग शरीरकी पर्याय है और न संयोग आत्माकी पर्याय है। आत्माकी पर्याय आत्माकी शक्तियोंके परिणाम हैं और शरीरकी पर्याय पुद्गल की शक्तियोंके परिणाम हैं। संयोग न देशांश है और न गुण है और न गुणांश है। अतः केवली भगवान संयोग नहीं जानते।

जैसा भगवान जानते हैं उस जातिके ज्ञानको भूतार्थ कहते हैं और जैसा भगवान नहीं जानते हैं उस जातिकी कल्पनाको अभूतार्थ कहते हैं।

जम्बूद्वीप आदि पृथ्वी जल आदि सर्व पदार्थोंको भगवान जानते हैं किन्तु यह द्वीप एक लाख योजनका है यह इतने मापका है ऐसी कल्पना भगवानके नहीं है।

आत्मन! भगवान से बड़े बननेका यत्न न करो।

१३ फरवरी १९५७

शान्तिका उपाय करने लगे तो सरल है न करनेजावे तो कठिन व कठिन ही क्या असम्भव है। शान्तिके अर्थ आवश्यक है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की।

सारा खेल उपयोग हीका तो है। लेने देनेकी बात तो कुछ है नहीं, केवल उपयोगकी बात है। उपयोगको संभाल लेना ही ज्ञानका लाभ है। उपयोग को बिगाड़ लेना ही ज्ञानका दुरुपयोग है।

उपयोग ही तो उपभोग है निगोद भी उपयोग का उपभोग करते हैं। सिद्ध भी उपयोगका उपभोग करते है। उपयोग पर्याय है। भोग तो उपयोग पर्यायका है। उपयोगका स्रोत स्वरूप सहज चैतन्य उपभोग रहित है उसे समवेत दृष्टिसे उपभोग कह सकते हैं।

उपशान्त, प्रशान्त, अपशान्त, संशांत, अनुशान्त, निःशान्त, दुःशान्त,

Version 1

अशान्त, अनुशान्त, सुशान्त, अभिशान्त, प्रतिशान्त इनमेंसे तुम क्या बनना चाहते हो पसन्द करो।

अच्छा देखो इन सबको नम्बर वार रखते हैं अन्दाज करो—निःशान्त, अपशान्त, दुःशान्त, प्रतिशान्त, अनुशान्त, अधिशान्त, अशान्त, उपशान्त, अभिशान्त, प्रशान्त, सुशान्त, संशान्त।

शान्त अशान्त नहीं। अशान्त शान्त नहीं। आत्मा न अशान्त है न शान्त। वह अनुभव है।

आत्मा न प्रमत्त है, न अप्रमत्त है, अनुभव है।

१४ फरवरी १९५७

अर्हंत पूज्यको कहते हैं। पूज्य वह है जिसके गुणोंका पूर्ण स्वाभाविक विकास हो। जिसके गुणोंका पूर्ण स्वाभाविक विकास है उसे संक्षिप्तमें यों समझ लेना चाहिये कि वह अनन्त ज्ञानी है (सर्वज्ञ) है, अनन्त दृष्टा (सर्वदर्शी) है, अनन्त आनन्दमय है व अनन्त शक्तिमान है याने निजकी सर्वशक्तिका उपभोगी है।

सिद्ध – पूर्णतया सिद्धको कहते हैं। पूर्णतया सिद्ध वह है जिसके द्रव्यका अन्यद्रव्यसे संयोग न रहा हो। केवल वही द्रव्य असंयुक्त हो जिसके क्षेत्रका अन्यद्रव्यके क्षेत्रसे संयोग न रहा हो अर्थात् किसी भी द्रव्यका निमित नैमितक भावसे एक क्षेत्रावगाह न हो जिसकी कोई भी पर्याय किसी भी प्रकारके निमितको पाकर न हो, जिसके भावका पूर्ण शुद्ध अनैमितक विकास हो। जिसके ऐसी पूर्णतया सिद्धि हो चुकी है। उसको संक्षिप्त में यों समझ लेना चाहिये कि वह अनन्तज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तानन्दमय व अनन्त शक्तिमान तो है ही एवं वह शरीरसे भिन्न सर्व कर्मो से भिन्न भी हो चुका है उद्धर्वगमन स्वभावसे वह अत्यन्त उद्धर्व में स्थिति हो गया है जो कि लोकके अग्रभागमें स्थित कहे जाते हैं।

सिद्धोंमें व अरहन्तमें भावकी अपेक्षा तो वही बात है रंच अन्तर नहीं है। अन्तर द्रव्य क्षेत्र कालमें उपरी है। जैसे अरहंत शरीर व कर्मके संयोग सहित है। कर्मका व शरीरका एक क्षेत्रावगाह है। अघातिया कर्मोके निमित्तसे योग, प्रदेश परिस्पन्द है। यह अन्तर उपरी इसलिये है कि गुण

http://sahjanandvarnishastra.org/
Report any errors at vikasnd@gmail.com

घात करने में अन्तर असमर्थ है। http://www.jainkosh.org

१५ फरवरी १९५७

पूर्व कालमें हजारों साधुवों एक संग रह लेता था ! उसका कारण यह है कि वे साधु कल्याण भावसें संग चाहते थे। सभी साधु विनयसें अपना उत्थान समझते थे। वे आत्म कल्याणके लिये विनय करते थे, प्रश्न करते थे। वे आत्म कल्याणके लिये दूसरोंका वैयावृत्य करते थे। सबका एक आत्म कल्याण उद्देश्य था इसलिये सबका १ सूत्रमें रहना अनास बात हो जातीथी।

साधु संघमें शासन नहीं किया जाता था किन्तु शाशन हो जाता था। कोई भी साधु महाराज अपनी ही गरजसे आचार्य महाराजसे प्रार्थना करता था, सेवा योग्य कार्यकी आज्ञा मांगता था।

यदि किन्हीं साधु महाराजको कहीं बाहर जानेकी आवश्यकता मालूम पड़ती थी तो साधु आचार्यसे विनयपूर्वक आज्ञा मांगते थे। उत्तर न मिलने पर दूसरे दिन पूछते थे। फिर भी उत्तर न मिलने पर तीसरे दिन पूछते थे। जब उन्हें आज्ञा मिले तभी जाते थे। इसमें साधुकी तो यही श्रद्धा थी आचार्य महाराज कई बार सुननेके बाद जो आज्ञा देंगे वह हितकारी आज्ञा मिलेगी। आचार्य महाराजका मुझ पर बड़ा अनुराग है कि कई बार सुने और विचारे बिना मुझे झट ही कुछ नहीं कह रहे हैं।

जहाँ सबका उद्देश्य एक होता है वहां शासन नहीं करना पड़ता, स्वयं ही संघ अनुशासित हो जाता है। ॐ नमः सरलचयाय।

१६ फरवरी १९५७

विद्यार्थियों से।

विद्यार्थी जीवन संसारके समस्त प्राणियोंमें से केवल मनुष्यको ही प्राप्त होता है। अपनी उन्नतिका मार्ग बना लेना ही विद्यार्थी जीवनकी बड़ी विशेषता है।

विद्यार्थियोंकी उन्नतिके लिये संक्षेपमें बताया जावे तो यह है कि वे इन तीन ही बातों पर अपना अधिकार जमाले। (१) विनय (२) ब्रह्मचर्य (३) विद्याभ्यास।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विनय—विद्योपार्जन स्वयं व दूसरोंसे अभ्युदय प्राप्तिका मूल मंत्र है। विनयसे विद्यायें अल्प प्रयाससे ही प्राप्त हो जाती है, गुरु एवं अन्य जनोंका आशीर्वाद एवं प्रस्नेह प्राप्त होता है। विनय शील कभी भी दुखी नहीं हो सकता। विनयकी व्यक्ति सेवासे होती है।

ब्रह्मचर्य—वीर्य शरीरका बल है और शुद्ध भाव आत्मा का बल है। यदि शरीर और आत्मा दोनोंकी ओरसे बलिष्ट रहना है तो शुद्ध भावोंको बनाओ व वीर्यकी रक्षा करो। अशुद्ध भाव होने पर वीर्यकी रक्षा कठिन है। शुद्ध भाव वीर्य रक्षाके कारण है। अतः शुद्ध भाव व वीर्य रक्षा द्वारा ब्रह्मचर्यका अखण्ड पालन करो। एतदर्थ शुद्ध सात्विक आहार विहार करो।

विद्याभ्यास—विद्यार्थी कालमें बुद्धिका अनर्गल चमत्कार रहता है कि जो सीखो झट याद हो जाता है। इस अवसरसे जो चूकता है। वह बादमें पछताया ही नजर आया है। विद्यार्थी कालका विद्याभ्यास द्वारा पूरा लाभ उठाओ।

१७ फरवरी १९५७

गृहस्थ पुरुषोंसे—

अनेक जन्मोंको धारण कर कर थके हुये इस आत्माको आज यह मनुष्यभव मिला है। इस अनित्य समागमसे पूरा लाभ उठानेके अर्थ कर्तव्य तो यह है कि पूर्ण अहिंसक एवं पूर्ण ब्रह्मचारी रहकर आत्मसाधना करली जावे। एतदर्थ निर्ग्रन्थ, निःसंग होनेकी आवश्यकता है। ऐसा बननेकी सामर्थ्य न होनेपर गृहस्थ धर्म द्वारा अनेक उद्दण्ड तावोंको समाप्त कर देना कर्तव्य हो जाता है।

गृहस्थ जीवनको उत्तमतया पार करनेके लिये ३ बातोंका पालन अत्यावश्यक है (१) आध्यात्मिकता (२) आय से कम खर्च (३) हितमित, प्रिय व्यवहार।

आध्यात्मिक—अपना व परपदार्थोंका स्वरूप जानकर परपदार्थोंकी आसक्ति न करना और आत्म गुणोंकी ओर झुकना आध्यात्मिकता है। इस अन्तरङ्गवृत्तिके कारण कलह विसंवाद कपट आदि अनेक अवगुण समाप्त हो जाते हैं। जिससे शान्तिका साम्राज्य बन जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आयसे कम खर्च—आयसे कम खर्च करनेसे जीवनकी अनेक चिन्तायें समाप्त हो जाती हैं। कमसे कम खर्च जितनाचाहेकियाजा सकता है। इसके विश्वासके लिये गरीबों पर दृष्टी डालो। इस असार संसारमें संकोचका क्या काम। अपना लाभ देखो।

हित मित प्रिय व्यवहार—आत्म शान्तिके अतिरिक्त सब अहित है। जड़के उपयोगसे तो जड़ता ही, अशान्ति ही मिलती है। ऐसा जानकर सब से हितकारी परिमिति, सत्यता पूर्ण प्रिय व्यवहार रखना उन्नतिका अपूर्व साधन है।

१८ फरवरी १९५७

गृहस्थ महिलाओं से :—

प्राप्त दुर्लभ इस मनुष्य जन्मकी सफलता निःसंग रहकर आत्मानुभवमें रमनेमें है परन्तु इसकी असामर्थ्य होनेसे गृहस्थ धर्म अंगीकार किया है। इसे सफलतासे गुजारनेके लिये इन तीन बातोंकी आवश्यकता है—(१) सत्यशील मय वृति (२) गृहकार्यकी सुन्दर व्यवस्था (३) हित मित प्रिय वचन।

सत्यशीलमय वृति—शील व्रतसे रहना, दूसरोंका बुरा नहीं विचारना न्याययुक्त धनका ही उपयोग करना, सचाई रखना सत्यशील मत वृति है। इससे आत्मीय गुण प्रकट होते हैं जिससे खुदको एवं दूसरोंको भी सत्यशान्ति प्राप्त होती है यह गुण प्रधान आभूषण है।

गृहकार्यकी सुन्दर व्यवस्था—रसोईका प्रबन्ध, चीजोंके रखे जानेकी व्यवस्था, शिशुपालन, शिशुशिक्षण आदि गृह सम्बन्धी उत्तम व्यवस्था रखना चाहिये जिसमें अन्य जीवोंकी हिन्सा न हो और कुटुम्बको कोई रोग या चिन्ता उत्पन्न न हो।

हित मित प्रिय वचन बोलना—जो दूसरोंको सन्मार्गमें लगावे ऐसे हितकारी वचन बोलना, साथही यह ध्यान रखना कि वे परिमित वचन हों तथा साथ ही साथ यह आवश्यक है वे प्रिय वचन हो। इन तीनोंसे पूर्ण वचनसे गृहस्थी स्वर्गसे भी अधिक मनोरम बन जाती है।

यदि उक्त प्रकारका निष्काम कर्म योग रखा तो यह भी गृहस्थ पदमें आत्माकी उपासना ही है। यह वृत्ति भी मोक्ष मार्गमें परम्परया सहायक है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१९ फरवरी १९५७

घर, कर, खर, गर, टर, डर, थर, लर, शर, हर ये सब विडम्बनायें हैं। ज्ञान मान, ध्यान, गान, दान, भान, त्रान, आन, बान ये सब हित मार्ग चालक हैं। प्रभो! तेरी वाणी वाणी है ऐसी भी नहीं, वाणी नहीं ऐसी भी नहीं। तेरी ध्वनिका मिलना उत्कृष्ट पुण्यका फल है और सर्वोत्कृष्ट पुण्यका फल तेरी ध्वनिका होना है।

एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। परस्पर प्रेमका द्रव्य व्यतिरेक, क्षेत्र व्यतिरेक व भवव्यतिरेक है।

मोही पदार्थोंसे अपना सम्बन्ध सोचता है, मानता है। परन्तु उस आत्मका अन्य सभी आत्माओंसे रंच सम्बन्ध नहीं। जितने भिन्न उससे उसके अपरिचित हैं उतने ही भिन्न वे हैं जिन्हें घरके अपने पुत्र बन्धु मान रक्खे हैं।

द्रव्य प्रदेश गुण और पर्याय सबके स्वयंके प्रत्येक एकमें है। कोई किसीका अन्वयी नहीं। फिर कुछ भी अपना मानना निपट अज्ञान है।

बस हो चुका, हो चुकी अज्ञानकी हद, गुजर गया पशु जैसा जीवन। अब मनुष्य होओ। मनुष्यत्व बनाओ। तन पाया है तो दीन दुखियोंकी सेवामें लगाओ। मन पाया है तो वस्तु स्वरूपके अनुरूप बनाओ। वचन पाया है तो धर्मके अनुकूल वचन बोलो।

आत्मीय सहज भावकी रटना मात्रसे काम न चलेगा। जानो अपना स्वभाव, मानो तदनुरूप प्रवर्तन।

२० फरवरी १९५७

जो होना है वही होगा। जो जिनेन्द्र, सिद्ध परमात्मा को ज्ञात है होगा वही। उसमें परिवर्तन नहीं। वह जिस विधानसे प्रगट होता है वह केवलीके ज्ञानमें ज्ञात होता है।

स्वभावके उन्मुख होने वालेके इतना बल प्रगट होता है कि स्वयं सहज परिणमन अधिक होता है नैमित्तिक परिणमन कम होता जाता है। परके निमित्तके उन्मुख रहने वालोंके सहज परिणमनका तो तिरस्कार हो जाता है और नैमैतिक परिणमनोंका [illegible] हो जाता है। जब जहां उन्मुख होनेमें हित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझो सो उन्मुख हो जावो। कोई हाथ पकड़कर रोकनेको नहीं आवेगा।

आत्मा होना, कुछ अच्छी पर्यायमें आगये ना। अच्छा मचालो ऊधम। इसका परिणाम क्या होगा सो नहीं जानते। अरे ऐसा परिणाम होगा इतनी अशक्त स्थिति पावोगे कि दुःखका ठिकाना न रहेगा और ऊधम मचाने लायक भी न रहोगे।

अच्छा गुजरा सो गुजरा। क्या गुजरा। इतना गुजरा कि हद हो गई। अब क्या करना, क्या देखना, कैसे बर्तना। जरा कुछ विचार तो करो। अब स्वभावकी उन्मुखता करना स्वभाव देखना, स्वभावके अनुरूप बर्तना।

गुप्ति कहते हैं मनकी वचनकी कायकी प्रगति खतम कर देना। यह करते हैं साधु तो असाधु कैसी गुप्ति करते हैं—छल कपट जो मनमें हैं उसे गुप्त रखकर और भाति अभिप्राय सहित दिखाना। साधु और असाधुकी गुप्त में जमीन आसमान जैसा अन्तर है।

२१ फरवरी १९५७

यह शरीर जिसमें तुम्हारा बन्धन है, याद है बन्धन क्यों हो रहा है? इस कारण बन्धन हुआ कि शरीरको तुमने अपना माना।

शरीर दो प्रकारके हैं १ औदारिक शरीर २ वैक्रियक शरीर। औदारिक शरीर दो प्रकारका है। १ तो स्थावरका औदारिक शरीर दूसरा त्रसोंका औदारिक शरीर। स्थावरोंका औदारिक शरीर हाड मांससे रहित है जैसे पृथ्वी जल आग हवा वनस्पति। त्रस जीवोंका शरीर हाड मांस चर्बी आदि दुर्गन्धित चीजोंसे निर्मित है। औदारिक वैक्रियक शरीर हाड माँस रहित है। उक्त शरीरोंमेंसे जब जिस शरीरको इस जीवने पाया उसीको अपना माना।

इन शरीरोंमें से देखो तो जो अभी शरीर तुम्हें मिला है वह कितना दुर्गन्धित है। ऐसे अशुचितनसे राग करते हुए हिचकिचाहट नहीं। यह शरीर देखने योग्य भी नहीं। आद्योपान्त अशुचि ही अशुचि है। इसके सम्बन्धसे अन्य पदार्थ भी ग्लानि योग्य हो जाते हैं। शरीरकी ममता बिलकुल हटाओ। निज स्वभावके दर्शनमें उपयोग लगाओ। तुम तुम ही हो। तुम तुम्हीको करते हो। तुम तुम्हारे ही द्वारा करते हो। तुम अपनी ही उपादानसे करते हो। तुम्हीमें तुम करते हो। अन्य पदार्थका तो कुछ सम्बन्ध ही नहीं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीरकी दृष्टि छोड़ो। इस लूअर (आग) लगेको जो होना हो होने दो। तुम तुममें बस जावो, अलौकिक आनन्द हो जायगा।

जो सतके अनुरूप परिणाम रखता है वह सन्त है। जो सन्त हैं वह सत्का दृष्टा है। सतमें अलौकिकता है। सतमें लौकिकता भी है। लौकिकता में सत् तिरोभूत है। सत्य रूपका दर्शन उत्तम ज्ञान तपका परिणाम है।

२२ फरवरी १६१७

कौन कहता है कुछ भी कहीं। कहना हो जाता है। आत्मा तो परिणाम मात्र करता है। कौन खाता है कुछ भी कहीं। खाना हो जाता है। आत्मा तो परिणाम मात्र करता है।

आत्मा प्रभु है उसको ये सब लीलायें हैं। आत्मा ही स्वभावसे च्युत हो होकर बार बार अवतार लेता है। जो अवतार उत्तारके लिये होता है उस अवतारकी प्रशंसा है।

काल चक्रका ऐसा स्वभाव है कि कभी धार्मिक उत्थान होता है कभी धार्मिक पतन होता है। धार्मिक उत्थानके दिनोंमें भी सीमागत पतन उत्थान चलता है। यह उत्थान किन्हीं भी महापुरुष द्वारा जो अपनी विशिष्टता पाये हों, होता है। इन कारणोंसे यह बात प्रचलित हो गई कि जब जब धर्मकी हानि होती है तब तब भगवानका अवतार होता है।

क्षयसिद्ध, उदयसिद्ध, निमित्तसिद्ध, स्वत:सिद्ध, स्वयंसिद्ध, सहजसिद्ध, सदासिद्ध, सिद्धासिद्ध, सादिसिद्ध, अनादिसिद्ध इनका तात्पर्य जानो।

मुक्तामुक्त, अमुक्त, मुक्त, न मुक्त न अमुक्त इनका अर्थ समझो।

शेष, अशेष, विशेष, अनुशेष, अवशेष, नि:शेष, अधिशेष, प्रतिशेष परिशेष इनका भाव हृदयमें जमाओ।

अशुद्धि अपशुद्धि, प्रतिशुद्धि, अनुशुद्धि, विशुद्धि, प्रशुद्धि, अभिशुद्धि, अवशुद्धि, परिशुद्धि, संशुद्धि ये उत्तरोत्तर विकास हैं।

क्या कोई चीज कभी गुमती है? नहीं, फिर लोग रोते क्यों? मोहवश।

क्या कोई चीज कभी मिल सकती है? नहीं, फिर लोग हंसते क्यों? अज्ञानवश।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

२३ फरवरी १९५७

वास्तविक पुरुषार्थता तो वह है जो तत्काल शान्ति लावे। पुरुषार्थका प्रयोजन अशान्ति नहीं है। अशान्तिके अर्थ कोई प्राणी कुछ नहीं करना चाहता है। अतः यह सिद्ध है कि पुरुषार्थ वही है जो शान्तिमय क्रिया हो।

जगतके किन्हीं भी पर पदार्थोंका यह आत्मा कुछ नहीं कर सकता न मात्र उनके विषयमें आत्मभाव बनाता है। न अन्य पदार्थ इस आत्माका कुछ हित अहित करते हैं। यह तथ्य जानकर इतना तो मनमें विश्वास किये रहो कि मेरा हित किसी परके सुधार बिगाड़ से नहीं मेरा हित किसी अन्यकी किसी परिणतिसे नहीं। कोई अनुकूल हो गया इसका अर्थ इतनाही तो है कि तुम्हारी कषायके समान कषाय रखने वाला हो गया अथवा तूने अपनी कषाय के समान किसी को कषाय वाला समझकर उसका लक्ष्य बनाकर सुहावनेका भाव बना लिया। हुआ क्या? दूसरे ने अपनी तुझमें कोई शक्ति या पर्याय दे दी क्या? किसीसे कहीं कुछ नहीं हुआ। केवल अपनी कल्पनाओंको तू परम्परा बना रहा है। इस दुर्बुद्धिको छोड़ते ही आनन्द मिल जावेगा। कभी छोड़, जब तक न छोड़ेगा आनन्द पा नहीं सकता।

हे आत्मन तू तो स्वयं आनन्द समुद्र है, लहरें न उठे तो समुद्र अक्षोभ है, गम्भीर है, शान्त है। तुझमें विकल्प न उठें तो तू भी अक्षोभ है, गम्भीर है, शान्त है। कल्याणके लिये करना कुछ नहीं है, यथार्थ ज्ञान करना है। इसीमें जो करना है वह सब आगया।

कोई लोग धर्मके नाम पर क्या करते हैं उनकी आलोचनासे कुछ प्रयोजन नहीं।

स्वयं तुम भले हो अन्तरङ्गसे तो तुम्हारा समय भला है।

२४ फरवरी १९५७

इस जबलपुरके समीप मढ़ियाका यह स्थान धर्माराधना करनेके लिये रहनेके योग्य है। परन्तु यहाँ इतना जन समुदाय होकर भी किसीका परिणाम यहां रहनेका नहीं होता यह आश्चर्यकी बात है अथवा किसीके रहनेको स्थान तककी सुविधा नहीं है कोई रहे भी क्या?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहांकी जैन जनताका बहुत आग्रह था अतः अब कुछ समय और देखता हूं। पश्चात् यदि कोई जागृति लोगोंमें नहीं होती तो मौनपूर्वक यहांसे चला आऊंगा याने क्यों चले गये आदि विषयक कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर न दूंगा ऐसा संकल्प रहेगा।

ब्र० सत्य स्वरूप सूर्यवंशी क्षत्रिय अध्ययन करते हैं। इनका विचार अभी उत्तम है। कुछ अवस्था बीतनेके बाद लोकोंमें कुछ परिचय होनेके बाद संभलकर रहनेका समय आता है। उस समयको विवेकसे गुजारनेके बाद आपत्ति नहीं होती।

संसारका अर्थ मोही यह लगा सकते हैं सं– सार जहां सम्यक् अच्छा सार हो और मोक्षका अर्थ लगा सकते हैं वे जहां इस अच्छे सारसे छूट जाना हो जावे। तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनोयत्र संलग्नम्। संसारका अर्थ संसरण परिभ्रमण और मोक्षका अर्थ है परिभ्रमणसे छूट जाना।

जीव परमार्थतः अपने ही पर्यायोंमें भावोंमें परिणमनोंमें परिभ्रमण करता है। जब तक व्यतिरेकी पर्यायें विसदृश पर्यायें चलती हैं तब तक परिभ्रमण ही तो है। सदृश परिणमनोंमें बर्तनेका नाम परिभ्रमण, संसरण व संसार नहीं है। सदृश परिणमन मुक्तात्माओंका, परमात्माओंका होता है।

२५ फरवरी १९५७

हे परमात्मन! अन्य बातोंको भूले बिना तेरेको भूल जाना अक्षम्य अपराध है। इस अपराधका परिणाम संक्लेश ही संक्लेश है।

संसारके परिचयोंसे बड़प्पन नहीं है किन्तु बड़प्पन है यथार्थ ज्ञान व कषायोंके दूरी दुखमें।

लोग मेरे कार्यमें हाथ न बाँट लेंगे। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थमें नहीं परिणमता। किसी एक भी पर पदार्थकी आशा न कर अत्यन्त निवृत्त होकर एक बार तो आत्माके सहज आनन्दका अनुभव तो कर ले।

ऐसा नहीं होता है कि अनर्गल राग द्वेष बसाये और कभी भी झट ऐसे सहज आनन्दका अनुभव करले। तदर्थ बुद्धिपूर्वक उपाय यह है कि ज्ञानोपयोगमें चित्त लगाओ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मन् ! पर्याय तो नष्ट होनेके लिये विलीन होनेके लिये प्रकट होती है वह सूक्ष्म दृष्टिसे १ समय ही रहती है दूसरे क्षण नहीं। स्थूल दृष्टिसे याने उपयोक्तव्य दृष्टि से अन्तमुर्हूर्त विभाव पर्याय रहती है जिसका यह काल अधिकसे अधिक कुछ ही सेकिण्ड हो सकता है। ऐसे विनश्वर पर्याय, विभाव के हुक्ममें चलना अपने को क्लेशगर्तमें पटक लेना है। जो नहीं रहे उसके स्नेहसे हानि ही हानि है।

पर्याय बुद्धि में लाभ कुछ भी नहीं। यह जगत जिसे आश्रय बनाकर विभाव किया जाता है वह पर्याय रूप है, माया है, विकार है, इन्द्रजाल है, स्वप्न है। इसमें मोह करना अज्ञान है, मूढ़ता है, दुर्लभ नरजन्मकी बरबादी है, निज ब्रह्मकी प्रभुताका तिरस्कार है, महती बेहोशी है।

आत्मन् ! तू प्रभु है, अपनी प्रभुता सम्हाल, व्यर्थका भार दूर करो।

२६ फरव॰ १६५८

यदि कषाय होने पर भी वियोग बुद्धि रहती है तो अभी वह आत्मा बिगड़ी नहीं है क्योंकि उसे स्वभावकी आन तो है। जिस क्षण स्वभावकी आन न रखेगा यह उस क्षण वह मिथ्यादृष्टि हो जावेगा।

ज्ञानकी विजय स्वभावभक्तिसे ही है। स्वभावभक्तिमें परमात्माभक्ति है, स्वभावभक्तिमें सभ्यताकी योग्यताकी वृद्धि है।

हे स्वभाव ! हे कारण परमात्मन् ! हे परमपारिणामिक भाव ! हे समयसार ! हे चैतन्य ! हे ज्ञानानन्दस्रोत ! अभीक्ष्य ज्ञानोपयोगमें रहो। तेरी ही उपासना बिना जगतके धक्के अब तक खाये, अन्य सबकी उपासना करके व्यर्थ परिश्रम करता रहा।

हे सच्चिदानन्द ! हे परमब्रह्म ! हे सहजानन्द ! हे सहजभाव ! हे सनातन ! हे सदाशिव ! तू मेरे ज्ञान आसन पर. विराजा रह। तुम्हारा स्वलक्षण कुछ करनेका नहीं सो मैं तुझसे कुछ कराऊंगा नहीं। कुछ कराऊंगा भी क्या ? जो करता है वह बड़ा नहीं, जिसकी दृष्टिमात्रमें अलौकिक महान कार्य होता है मेरी बुद्धिमें वही बड़ा है।

हे परमज्योति, तेरा वातावरण अन्धकारमय ! इससे बढ़कर विपरीतालङ्कार और कुछ नहीं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिष्ठाका व्यामोह दुर्व्यामोह है। व्यामोह सभी खोटे होते हैं किन्तु अन्य व्यामोहोंका मिटना उतना कठिन नहीं जितना कठिन प्रतिष्ठाका व्यामोह मिटना है।

व्यामोहका विनाश सम्यग्ज्ञान बिना नहीं होता। सम्यग्ज्ञानके होने पर व्यामोह नहीं रहता।

कारण परमात्मा अमोह है, कार्यपरमात्मा विमोह है। कारणपरमात्मा शुद्ध है कार्यपरमात्मा विशुद्ध है। कारणपरमात्मा अमूल है कार्यपरमात्मा निर्मल है।

२७ फरवरी १९५७

वस्तु तत्व अवक्तव्य है क्योंकि वस्तु जैसी है तैसी शब्दमें कही नहीं जा सकती है। वस्तु नित्य नहीं, अनित्य नहीं, नित्यानित्य नहीं, नित्यानित्यसे अलग नहीं। उसे समझता है तो एक दृष्टिसे नित्य है, एक दृष्टिसे अनित्य है व एक दृष्टिसे नित्यानित्यसे परे है।

सर्वथा नित्यका अर्थ है अपरिणामी सो तो वस्तु अपरिणामी है नहीं। सर्वथा अनित्यका अर्थ है कि असत् उत्पन्न हो जाता है। और सत्का निश्चययनाश हो जाता है।

वस्तु नित्य हो तो अनित्यपना भी रह सकता है, वस्तु अनित्य हो तो उसमें नित्यपना भी रह सकता है।

वस्तु प्रति समय वर्तमान पर्यायमात्र रहता है। पर्यायको छोड़कर अकेला कुछ द्रव्य नहीं।

वस्तुस्वरूप अवक्तव्य है क्योंकि वह ध्रुव है और प्रतिसमय परिणमनशील है। दोनों बातें एक साथ हैं वह कैसा है इसे एक शब्दमें क्या बताया जावे। बतलाना तो दूर रहा एक बार समझ भी कठिन है। फिर भी बताना अशक्य है, समझना शक्य है।

२८ फरवरी १९५७

अतीव निरपेक्ष वृत्तिसे कुछ समय बीते वह आनन्दकी बात है। सत्य आनन्द निर्विकल्प अनुभवमें ही है। अन्य सर्वतो विपदा ही विपदा है।

आत्मा तो केवल परिणाम करता है। मलिन परिणाम किया तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाहरसे तो कुछ लाभ होनेका नहीं, किन्तु होगी हानि खुदकी वह जिसकी पूर्ति न कोई अन्य कर सकता है और न स्वयं शीघ्र पूर्ति कर सकता है। पूर्ति करेगा यह स्वयं ही अन्य कोई हानिकी पूर्ति कर नहीं सकता यह सही है फिर भी आसान बात नहीं है।

हानि तो भावोंकी लगाम जरासी ढीली करनेमें हो जाती है किन्तु उस क्षतिकी पूर्तिके लिये निर्मलभावोंके करने रूप परिश्रम अधिक करना पड़ेगा।

बाह्यवृत्ति मनकी कल्पना आजसे जीवित है। कामका तो काम ही मनोज है। उसका जड़ शाखा कुछ नहीं। मनसे काम उत्पन्न होता और मनके जीते बिना उसका साम्राज्य भी नहीं मिटता। मनके निर्मल हुए बिना काम विषय चिन्ताजन्य क्षतिका अभाव हो ही नहीं सकता।

नामकी संभाल तो भयंकर व्याधि है। जगतमें नाम हो गया तो मिल क्या जाता उस आत्मा को। बड़ी बेवकूफी है नामके स्वप्न देखना।

हे निजनाथ! घरमें बैठे रहो। बड़ी आग लग रही है बाहर। बाहर छूको भी मत, नहीं तो कषायिल लपटों के मारे झुलस कर गिर पड़ोगे और फिर पता नहीं पूरे बरबाद होकर रहोगे या कुछ बचोगे।

१ मार्च १९५७

किसी भी आत्माकी शल्य रहनी ही नहीं चाहिये। शल्य तो मिथ्या ज्ञानमें होती। वस्तुकी निरपेक्षता, वस्तुकी स्वतन्त्रता प्रतीतिमें आई फिर शोक को स्थान कहां? मोहको स्थान कहां।

मैं कभी भी दूसरोंके सोचने या प्रसन्न होनेसे सुखी न हो सकूंगा। मेरे भावोंमें ही करामात हो तो सुखी हो जाऊंगा। मेरे भावोंमें ही मलिनता हो तो दुःखी हो जाऊंगा।

हमारे सुखी बननेको हमें ही सुधरना है। अन्य किसीके कुछ भी हुए हमें कुछ नहीं मिलता।

नाम रहा सहा भी आज मिट जावो। नामसे मेरा काम भी जब नहीं बननेका तो नाम की फिक्र रखनेसे बड़ी बेवकूफी दुनियांमें और क्या होगी।

विकल्पका नाम ही दुःख है। नाममात्रको याने सूक्ष्म, रंच, जरासा भी विकल्प हो वह अहित है, शत्रु है। छोटीसी भी चिन्गारी पहाड़ जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ई धनके ढेरको जला देनेमें कारण बन जाती है। इसी प्रकार छोटा भी विकल्प बड़ी बड़ी उत्पत्तियों, पातकोंमें पतन कर देनेका कारण बन जाता है।

रंच भी विकल्प मात्र मत होओ। नाम मात्रका भी विकल्प नहीं चाहिये। ऐ विकल्पों ! सब हटो, हमारा मैदान साफ करो।

मैं यहीं शान्त, सुखी हूं। यहांसे जानेकी आवश्यकता नहीं, इसी निजके समीप ही चिपका रहूंगा और सारा भय खतम करूंगा।

२ मार्च १९५७

मैं स्वयं शांतिका पुञ्ज हूं। अशान्ति तो मेरे स्वभावमें है नहीं। अशान्ति ! अब तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। तुम्हारी दाल तो तब तक गल सकती थी जब तक तेरे दलाल विकल्प मोटे तगड़े हो रहे थे तेरे दिये हुए लोभोंका जूठा भोजन खा खा कर।

यह आत्मामङ्गलमय है, कल्याण मूर्ति है, इसके समीप हे उपयोग ! बसे रहो। बस करनेका काम इतना ही है। बाकीके कार्य जो सिरपर बीतते उन्हें तो अकार्य, हेय समझकर शीघ्र उनसे निवृत्त हो लो।

जो नाना परिणमनोंमें रहकर भी बदल नहीं जाता ऐसे चैतन्य सामान्यात्मक हे निज प्रभो तुम्हारे प्रसाद बिना मैं मरता जाता हूं। अटकी तो कुछ है नहीं कि वाह्य पदार्थ न मिले तो हमारा कोई जीवन न होगा। मैं सत् हूं, स्वयं सत् हूं। वाह्य पदार्थका तो मुझमें प्रवेश भी तीन काल नहीं हो सकता मेरा स्वरूप स्वतन्त्र केवल मेरा ही रहेगा। परके सम्बन्धमें कुछ भी विचारना, कहीं भी लगना भ्रमका परिणाम है। है, होना कुछ नहीं।

विकल्प ही मात्र दुःख है यदि कोई विकल्प न करे और ज्ञान जो करता हो सो ज्ञानको करने दे कोई हानि नहीं है।

हे परिणमन ! तू अपने आपको द्रव्य राजाको समर्पण कर दो, तुम द्रव्यसे परांमुख रहकर अपना निर्वाह न करो तो तुम स्वभाव परिणमन बन कर आनन्दमय हो जाओगे।

सम्बन्ध भी तो तुम्हारा अन्य किसीसे है नहीं हे परिणमन ! फिर अन्य की तरफ तुम ध्यान ही मत दो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३ मार्च १९५७

आत्मन्! यह नरभव पाकर ऐसा काम न करना कि अब संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाना पड़े। यह अवसर बहुत अमूल्य पाया है। यहां श्रेष्ठ मन मिला है जिसके द्वारा सदाचार और विवेक की बात बनाकर अनुपम सफलता प्राप्त कर सकते हो।

इन्द्रिय विषय तो बिलकुल असार हैं उनकी कल्पना जीवको संक्लेशकी कारण बनती है। विषयोंकी उन्मुखता केवल पागलपन है। सारका वहाँ नाम नहीं किन्तु मोही जीव सार वहीं समझता इससे बढ़कर कोई अन्य मूर्खता नहीं।

आत्मन्! माना कि तुम्हारा समय अनादिसे अब तक प्रायः विषयोंकी कल्पनामें समय बीता। तुम भी अधीर, व्याकुल और सशल्य रहें इस निःसार वाञ्छामें किन्तु जबसे विषय भावसे परांमुख हो जाओ तबसे कल्याण है। विषय विमुखता व विवेकके प्रकट हो जाने पर पूर्वकृत पाप भी झड़ जाते हैं।

हे निज प्रभो! तेरी लीला अपार है। विभाव रूप भी तू परिणमता है तो वह भी निराली लीला है और स्वभाव रूप तू परिणमता है तो वह शानदार लीला है ही।

नाथ कैसे परिणम जाता है इसकी अगल बगल भी किसी अपरिचित जीवके अगम्य है।

४ मार्च १९५७

संसारमें दुःख मात्र विकल्प ही है। इसके मेटनेका जो समुचित प्रयास है वही साधुता है। यदि साधु होकर विकल्प न मिटा अथवा विकल्प बढ़ा तो वहां साधुता नहीं।

विकल्प न बढ़े इसके लिये ये ३ साधन हैं— (१) एकान्त वास, (२) विहार और (३) सत्संग। विवेककी और आत्म ज्ञानके लगनकी सर्वत्र आवश्यकता है इन दोनोंके बिना वे ३ साधन भी कार्यकारी नहीं हो सकते। उन तीनों साधनोंके विपरीत जन संकुलवास, संस्थाके रूपमें जमाव और विषय कषाय प्रेमियोंका संग तो पतनकी ओर ले जाने वाले हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मन् ! क्या कहूं कहा नहीं जाता। इतनी वेदना है इस व्यर्थकी अशक्यता पर कि जानता तो हूं और उसके अनुरूप कर नहीं पाता। अब कर ही डालूं ऐसा संकल्प है।

ब्रह्मचर्य परम तप है और स्वाध्याय परम तप है जिसका समय इन दोनों तपोंको बीतता है उसका जीवन सफल है।

पुराने परिणमन अब तो नहीं हैं ना आत्मन् ! उनकी शल्य न कर। वर्तमान परिणमन स्वभाव दृष्टिका बना ले फिर कुछ आपत्ति नहीं।

तीनों समय जो सामायिकका है उसमें यदि स्वानुभव होता जाय तो वह सामायिक सफल है।

स्वानुभवके लिये यह कैद नहीं कि दिनमें इतनी बार ही हो या माहमें इतनी बार ही हो। कई कई बार एक दिनमें स्वानुभव हो सकता है। इसलिये अब लग जाओ कई कई बार स्वानुभव हो ऐसे यत्नमें।

५ मार्च १९५७

प्रत्येक सामायिकमें निर्विकल्प निज तत्त्वका अनुभव आ ही जाना चाहिये। एतदर्थ सामायिकमें तब तक बैठे रहो जब तक स्वानुभवका आनन्द न पा लिया जावे। स्वानुभवका आनन्द पानेके बाद तो कुछ समय और बैठे रहनेमें उपयोग लगेगा पश्चात् भी स्वानुभव आता है तो स्वयं बैठना और बनेगा। इस शैलीसे जो समय व्यतीत हो जायउसे सामायिकका काल समझना यह काल इस घड़ीके समयसे या उसके देखनेसे अधिक अच्छा है।

बहुतसे बन्धु पूछते हैं कि सामायिकमें मन नहीं लगता। सामायिकमें मन लग जावे ऐसा उपाय बताइये। भैया सामायिक और शल्य इन दोनों का परस्पर विरोध है। जहां सामायिक है वहां शल्य नहीं और जहां शल्य है वहां सामायिक नहीं। अतः सामायिकमें मन कैसे लगे इस पर विचार लेनेके बजाय शल्यें कैसे छूटें इस पर विचार करना चाहिये और इसका भावात्मक यत्न करना चाहिये। निःशल्य आत्माके सामायिकका हो जाना अतिसुगम है।

शल्य तीन प्रकारकी हैं—(१) माया, (२) मिथ्या, (३) निदान। तीनों के सम्बन्धमें अपने लिये सोचो—(१) चुगली करनेकी आदत तो नहीं है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी परकीय वस्तुको हड़प करने की चाह तो नहीं है, लोकमें अपनी नामवरी फैलानेकी चाह तो नहीं है। यदि ये तीनों बातें नहीं हैं तो तुम सामायिकके पात्र हो। (२) स्वार्थ वश कोई आगम विरुद्ध प्ररूपणा तो नहीं करते, सराग देव शास्त्र गुरुकी अनुमोदनामें तो नहीं हो, शरीरसे भिन्न आत्माके सम्बन्ध में कोई शंका तो नहीं है। यदि ये तीनों बातें नहीं हैं तो सामायिकके पात्र हो। (३) किसी वस्तुके संयोगकी आशा या प्रतीक्षा तो नहीं कर रहे, अगले भवमें राजा, देव आदि होऊं ऐसी कामना तो नहीं कर रहे, कल्याणके लिए निमित्तोंके संग्रह पर दृष्टि तो नहीं दे रहे, यदि ये तीनों बातें नहीं है तो तुम सामायिकके पात्र हो।

६ मार्च १९५७

यदि जल में आग लग जावे तो बताओ कोई बुद्ध नाथ, उस आगके बुझानेका उपाय। जैन धर्म पायकर यदि विनाशीक, अशुचि और दुःखके निमित्तभूत इस देह न देहकी शकलकी नामवरी, प्रतिष्ठा व ख्यातिमें लग जाये तो बताओ कोई बुद्ध नाथ, जगत्के परिभ्रमणसे छूटनेका उपाय।

किसी भी न्योछावर पर किसी चेतनसे अपना स्नेह करना आपत्तिका मूल है। यह स्नेह कितनी आपत्ति लावेगा इसका कोई अन्दाज नहीं कर सकता। प्रायः कोई स्नेह भी तो दृढ़तापूर्वक करता भी तो नहीं है। अविवेक है तब थोड़ा मोड़ा कोई स्नेह भी कम करके धर्मके बानेकी डींग मारे तो संभव है उससे अच्छा परिणाम (फल) भविष्यमें वह अच्छा पा ले जो अभी अत्यधिक स्नेहमें पड़ा हुआ है।

परिणामोंकी विचित्रता बहुत है। प्रत्येक आत्मा स्वतंन्त्र है। सबका परिणमन स्वतन्त्र है स्वभाव रूप परिणमे वह तो सबकी दृष्टिमें स्वतन्त्र सुगम या समझमें आ जाता है, और आत्मा विभाव रूप परिणमे तो वह विभाव परिणमन भी स्वतन्त्र है विभाव परिणमन भी आत्म द्रव्यका परिणमन है उसका स्वतन्त्र कर्ता आत्मा है। विभाव परिणमन यह इसलिये कहलाता है कि यह परिणमन आत्माके सहज स्वभावके अनुकूल नहीं है। विभाव परिणमनके सहज स्वभावकी अनुकूलता न होनेका कारण यह है कि आत्मा कर्मोदय रूप परको निमित्त पाकर व बाह्य पदार्थों को जो कर्मोंको आश्रय बना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर इस रूप परिणमता है।

प्रत्येक निमित्त परके कार्यके प्रति उदासीन हैं अर्थात् निमित्त भूत पर द्रव्य उपादानभूत परके परिणमन रूप नहीं परिणाम सकता।

निमित्त भूत पर द्रव्य भी अपने कार्यके उपादानभूत हैं उनके निमित्तों की भी ऐसी व्यवस्था है।

७ मार्च १९५७

संतमिलन, प्रभुभजन, संतगुण कथन, प्रभुपदनमन, आगमपठन, प्रियहित वचन, आत्महित मनन, परहित चिन्तन, क्रोधशमन, मदमर्दन, मायावर्जन, तृष्णा त्यजन, कामदहन आदि सत्करणोंसे भावोंको निर्मलता बढ़ाओ।

कार्य, परिणमनको कहते हैं। परिणमन किसीका अन्य कोई कर नहीं सकता। अतः यह भी वही बात है कि किसीका कार्य अन्य कोई कर नहीं सकता।

मेरा परिणमन जब अन्य कोई कर नहीं सकता तब मेरा अन्य कैसे हो सकता है! मेरा मैं ही शरण हूं और मेरा मैं ही विद्रोही हूं। जब निर्मल परिणामसे परिणाम होता है वह तो मैं शरण हूं और जब मलिन अभिप्राय रूप परिणत होता हूं तब वह मैं स्वयंका विद्रोही हूं।

मेरा सामान्य स्वभाव तत्त्व, सहजभाव परमात्मसत्य है। यह ऐसा ही परमात्मा भी है और यह ऐसा ही मुझमें है। ॐ तत्सत् परमात्मने नमः।

सत्, चित्, आनन्द रूप मैं भी हूं और सत् चित् आनन्द रूप प्रभु भी है। प्रभु और मैं यद्यपि दो हैं किन्तु प्रभुत्व दो नहीं हैं। इसी प्रभुत्वके भाव से तो यह प्रसिद्धि हो गई है कि हम सब प्रभुके अंश हैं। हम सब प्रभुके अंश हैं, इतनी ही बात नहीं किन्तु हम सब परिपूर्ण हैं, अंशी हैं, प्रभु हैं अंशकी बात इसलिये चल गई कि पर्यायमें स्वभाव विरुद्ध जम घट जम रहा है अतः कारण परमात्मा होने पर भी कार्य परमात्मा नहीं हूं। कारण परमात्म समझने पर कार्य परमात्मा होनेमें विलम्ब नहीं लग पाता। ॐ सच्चिदानन्द नमः।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

८ मार्च १९५७

द्रव्यमें स्वभाव एक है उसमें भेदाभिप्रायसे अनेक स्वभाव समझे जाते हैं उनको गुण कहते हैं। गुण नित्य होते हैं। गुणका अपर नाम शक्ति भी है। शक्ति नित्य होती है क्योंकि वह द्रव्योपजीविनी है।

सामान्यत: गुणोंमें परिणमनकी शक्तिका नाम भाववती शक्ति है। यह शक्ति प्रत्येक द्रव्यमें होती ही है। इस शक्तिके कारण गुणोंके परिणमन होते रहते हैं।

यहां एक प्रश्न यह हो सकता है कि सभी द्रव्य भाववती शक्तिसे शुद्ध परिणमते रहते हैं फिर जीव और पुद्गलमें विभावपरिणमन कैसे आगया। उत्तरमें यही कहा जासकता है कि जीव और पुद्गलमें यह विशेषता स्वयं है। इन दोनोंमें इसही प्रकारकी भाववती शक्ति है कि कर्मबंध उदयका निमित्त पाकर विभावरूप परिणम जाती है। और निमित्तके अभावमें स्वयं भावरूप परिणम जाती है। भाववती शक्तिकी इस विशेषताको बतानेके लिये भावशक्ति नाम रख दिया है।

यदि विभावशक्ति व स्वभावशक्ति दो प्रकारकी शक्ति स्वतन्त्र मानी जाती तो कदाचित् संसारावस्थाके सम्बन्धमें तो यह कुछ कहला भी सकते हैं कि दोनों शक्तियोंका परिणमन चल रहा है किन्तु मुक्तावस्थाके सम्बन्धमें बताओ कि दोनों शक्तियोंके २ परिणमन क्या चल रहे हैं। वहां तो केवल स्वभावपरिणमन चल रहा है तो फिर यहीं मानना उत्तम हो गया कि विभावशक्तिके २ परिणमन है—निमित्तके सद्भावमें विभावपरिणमन व निमित्तके अभावमें स्वभावपरिणमन है। अहा देखो देखो जैन संतोंकी प्रतिभा बहुत युक्ति युक्त और अलौकिक थी।

९ मार्च १९५७

प्रसङ्ग अप्रसङ्ग दु:सङ्ग कुसङ्ग अभिसङ्ग प्रतिसङ्ग परिसङ्ग उपसङ्ग अनुसङ्ग अवसङ्ग नि:सङ्ग विसङ्ग समसङ्ग सुसङ्ग सत्सङ्गका अर्थ समझो और इनमें हेय उपदेयका विचार करो कौन हेय है और कौन उपदेय है ?

समय—आत्मा, काल, अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू, रत्नत्रय, देव, शास्त्र, गुरु आदिको कहते हैं। इन सबका नाम समय है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह बहुत कठिन है कठिन ही नहीं असंभव है कि कर्मोका नाश कर दिया जाय। यह बहुत सरल है सरल ही नहीं किन्तु न्यायसंगत है कि निज स्वभावमें रम लिया जाय निज स्वभावमें रमणसे कर्म स्वयं खिर जाते हैं।

जगतमें कोई द्रव्य किसी द्रव्यका स्वामी नहीं है क्योंकि समस्त द्रव्योंकी सत्ता स्वतन्त्र है, परिपूर्ण है। जो है वह स्वतन्त्र है, जो स्वतन्त्र नहीं वह है ही नहीं। परतन्त्र तो कुछ होता ही नहीं।

सम्यक्त्वकी अतुल महिमा है चारित्रमोहके उदयमें ऐसा भी काम हो जावे जो तीव्र मोहमें किया हुआ सा जचता है। और कहो, अतरङ्गमें चिज्ज्योतिकी यथार्थ प्रतीति बनी रहे जिसके प्रतापसे संसारवर्द्धक कर्मबन्ध रुका रहे। विषयोंमें वृत्ति रहकर भी वियोग बुद्धि बनी रहे यह सम्यक्त्व जैसी निधिका बल है।

हे सम्यक्त्व ! तुम प्रसन्न रहो फिर मैं कैसा ही रहूं आपकी छत्रछाया सब सम्हाल कर लेगी।

१० मार्च १९५७

हे सम्यक्त्व ! तेरे प्रसाद का ध्यान बना रहना ही तो चारित्र है। तेरे प्रसादमें चारित्र आयगा।

यथार्थ प्रतीतिका कभी अभाव न हो पावे यही मेरा शरण है।

सत्य वह है जो सत्में हो। सत्में अन्य कुछ नहीं है। सत् तो केवल सत् ही है। सत् अखण्ड है उसमें अन्य कुछ होता ही नहीं। ऐसा सत् मैं भी हूं और ऐसे सत् अन्य सब हैं।

सत्को समझनेके लिये जो विशेषतायें बताई जाती हैं उसे सत्में होना कहते हैं। वह है गुण और पर्याय। सम्बन्ध सत्य नहीं है। सम्बन्ध किसी भी द्रव्य का न गुण है न गुण पर्याय है।

सत्य असत्य नहीं, असत्य सत्य नहीं। असत्यकी तो सत्ता ही नहीं, असत्य तो मात्र कल्पनामें ही है। कल्पनामात्र हो और सत्यसा लगे वही तो असत्य है। असत्य असत्य रूपमें समझमें आवे तब वह असत्य नहीं पावेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

११ मार्च १९५७

http://www.jainkosh.org

जो पर है अथवा पराधीन है उस विषयकी तो हठ छोड़ना ही चाहिये क्योंकि उस हठमें आदिसे अन्त तक क्लेश ही क्लेश है।

विषय सेवनकी हठ या प्रतिष्ठा बनानेकी हठ ये महती कलुषतायें हैं। इन परिणामोंमें आदिसे अन्त तक आकुलतायें ही हैं। पुनश्च ये हठ अज्ञान हैं।

हे आत्मन्! तुम ज्ञानमय हो, आनन्दमय हो, परिपूर्ण हो। फिर बताओ किस बातके लिये भिखारीसे बनकर इधर उधर भटकना। स्थिरता, धीरता व विवेकसे काम लो। तुम स्वयं अनुपम, महान हो। अपना यथार्थ काम करो।

विकल्प ही तुम्हारा शत्रु है। किसी भी इन्द्रिय विषयकी कामना, नामवरीकी चाह दोनों कुहठ हैं। परवस्तु या पराधीनभाव क्षणिकभावकी आशा बनाकर परतन्त्र हो जाना बुद्धिमानी नहीं है।

अनादिकालसे भटकते हुए चले आये। आज विवेकके योग्य विचार शक्ति प्रकट है। इससे लाभ न उठाया तो बताओ हे आत्मन्! क्या पशु, पक्षी, कीड़ा या पेड़ आदि बनकर आत्मोचित उत्तम काम कर लोगे।

आत्मन्! गर्राओ नहीं, कुछ पुन्यका उदय पाया वाह्य वस्तुका समागम कुछ सुलभसा बन गया तो अब इसमें कुछ हठ न करो। यह स्थिति सदा नहीं रहती, तथा हठ करने पर तो यह और सुनिश्चित है कि जल्दी ही यह प्रिय स्थिति समाप्त हो जावेगी। क्योंकि हठ कलुषित परिणाम है इस परिणामके होने पर पापकी उदीरणा व पापका बंध विशेष होता है।

१२ मार्च १९५७

आनन्द चाहो तो स्वभावकी सत्य आराधना करो आत्माका ध्रुव आत्मा ही है। जो ध्रुव है, स्वयं है, स्वमय है, जिसका कभी वियोग संभव ही नहीं है, कोई जाने तब भी वह है, कोई न जाने तब भी वह है, ऐसे इस निज चैतन्य स्वभावके जानने मानने रमनेका हठ करना तो सफल होता है, किन्तु शेष परकीय या पराधीन भाव सम्बन्धी हठोंका फ़ल उत्तम नहीं होता है।

अनंछा जरा बोलो तो—इस पर्यायमें तुम आये, कैसे जन्म लिया,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माता पितादि कुटुम्बने कितना हर्ष मनाया था। अब वे कहां हैं और उनको तुमसे क्या फायदा हो रहा है अथवा उनसे तुमको क्या मिल रहा है। बालक, कुमार थे जब ज्ञानके अर्थ कितना उत्साह था। और बड़े हुए तब कैसे सद्विचार थे। कभी कभी बीचमें अथवा बादमें क्या हुआ कहां कहां दिमाग बनाया। आज अब कहां हो। सारी बातोंको कुछ गहरे मनसे विचारो। तुम्हारा व्यापार यहीं भावात्मक चलना चाहिये। उतनी ही तो तुम्हारी करामात है और अन्य कुछ कर भी क्या सकते।

सद्भाव करो, विनयशील रहो, किसीको छोटा मत समझो। सबमें चैतन्य प्रभुके दर्शन करो।

कुण्ठ छोड़ो संकोच व संकुचित परिचय छोड़ो। बेपर बनो। यहां कुछ तुम्हारा नहीं है और न कुछ तुम्हारा साथी है। स्नेहका सर्वथा त्याग करो।

स्वभाव देखो जो कुछ मिलेगा स्वभावसे मिलेगा। स्वभावकी सत्य आराधना करो।

१३ मार्च १९५७

आत्मन्! पता हो गया ना। तुम ज्ञानमय हो, ज्ञानशक्तिमय हो, सहज ही ऐसे हो। बीज ही ऐसे हो। क्या करें और भांति तुम हो ही नहीं सकते हो। वस्तु सर्व स्वतः सिद्ध है।

हां तो तुम ज्ञानमय हो, यह कारणरूप, शक्तिरूप ज्ञान, सहजज्ञान अनादि अनन्त एक स्वरूप व्यवस्थित है। यह सदा जीवके उपकारके लिये अन्तः प्रकाशमान है। कोई विनयशील हो तो इस प्रभुके दर्शन करने और संसार सन्ततिके क्लेशोंसे छुटकारा पाले।

हे आत्मन्! तुम ही कुछ अनहोने नहीं हो। जैसे तुम अपनेको ज्ञानमय, ज्ञानवान समझते हो वैसे सबको ज्ञानमय, ज्ञानवान समझो। पर्याय दृष्टिसे तो तुम अनन्त आत्मावोंसे बढ़ी चढ़ी उत्तम अवस्थामें हो तो असंख्यात या संख्यात आत्मा अभी इस जगतमें तुमसे बढ़े चढ़े उत्तम भाववाले हैं।

अपने सद्भावमें उत्साह लाओ और मायाका ऊधम समाप्त करो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

देखो रखो अपनी सम्हाल। बोलो कम, गुणो अधिक।
देखो देखो अपनी चाल। डोलो कम, रमो अधिक।
देखो देखो जगका जाल। सोचोकम मुड़ो अधिक।
देखो देखो अपना लाल। चाहो कम देखो अधिक।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम,
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूं अभिराम।
ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः।

१४ मार्च १९५७

कुछ समयसे परिणामोंमें शिथिलता रहती है। जानता तो हूं फिर भी शिथिलता रहती इस सम्बन्धमें क्या कहा जाय कर्मका प्रबल उदय और क्या। भैया फिर भी ज्ञान ही तो उठाता है ना। तो ज्ञानको सम्हालो। पर्याय तो एक समय रहकर नष्ट हो जाती है। द्रव्यमें पर्याय प्रति समय नवीन होती है। ज्ञान सम्हालो और संस्कार दूर करो तो तुम्हें दिखाना। द्रव्य शुद्ध है इसमें वर्तमान पर्याय एक है! इससे पहलेकी अनन्त पर्यायें जो हो चुकी हैं उनमेंसे किसीका भी अंश नहीं बचा है। वे न हुईं की तरह हैं। गतका सोच कुछ भी नहीं करना। वर्तमानमें स्वाभावकी दृष्टि बनाना यही वर्तमानको सम्हाल लेनेका पुरुषार्थ है।

आत्मन्! यह कभी मत सोचो कि मैंने अमुक पदार्थ विषयक इच्छायें बहुत दिनोंसे बनाई व यत्न भी बहुत दिनोंसे किया और परिणाममें वह संयोग भी चलने लगा है तो अब इससे मुख कैसे मोड़ा जाय। शान्ति चाहते हो तो सभीसे तुम्हें एकदम बेलाग, बेदर्द बेदाद सम्बन्ध तोड़ना ही पड़ेगा।

भौतिक बात पौने सोलह आना पाकर भी उस सबसे मुख मोड़नेमें रंच भी हिचकिचाहट न हो यही तो ज्ञान बलका काम आना कहलाता है।

ॐ णमो अरहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ णमो आयरियाणं, ॐ णमो उवज्झायाणं, ॐ णमो लोए सव्व साहूणं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१५ मार्च १९५७

वस्तु है और वह परिणमती रहती है। सभी सत् अर्थोंका यही हाल है। इस प्रकृति पर ही यह सर्व विश्व निर्भर है। प्रकृति ही सृष्टि कर्त्ता हो रही है। जब एक नवीन पर्याय होती है तो पूर्व पर्यायका व्यय होता है सो यह प्रकृति ही प्रलय कर देती है। सृष्टि और प्रलय प्रतिसमय प्रति वस्तु में होते ही रहते हैं। लोकोंने तो किसी विलक्षण सृष्टि का नाम सृष्टि रख दिया और किसी विलक्षण प्रलयका नाम प्रलय रख दिया। ये भी सृष्टि और प्रलय है तथा अन्य समस्त प्रति समय होने वाली भी सृष्टि और प्रलय है।

प्रलय से घबड़ावो नहीं, क्योंकि प्रतिसमय परिणाम या परिणमन तो एक ही है वह प्रलय रूप है तो वही सृष्टि रूप है।

केवल प्रलय कभी नहीं होता, केवल सृष्टि कभी नहीं होती।

आत्मन् ! जो काम, जो भाव, गलत है वह गलत ही है कितना ही राग सतावे उसे सदा गलत ही समझते रहो तो विजयका पहला कदम यही है।

अनादिसे पापगर्तमें पड़े हुए जीवको सदाचार एकदम कहांसे आये, ऐसी स्थितिमें यदि कुछ सहाय है तो वह है यथार्थ श्रद्धा।

१६ मार्च १९५७

आत्मन् ! अपनेको न भूलना। भले रहो या बुरे अपने आपको तकते रहना। अशुद्ध निश्चय भी साधक बन जावेगा।

निश्चयनयके ३ भेद हैं अशुद्ध निश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्ध निश्चयनय। इनमें अशुद्ध निश्चयनय तो अशुद्ध पर्याययुक्त द्रव्यको देखता है। शुद्धनिश्चयनय शुद्ध पर्याय युक्त द्रव्य देखता है। परमशुद्धनिश्चयनय स्वभाव देखता है।

भैया इस समय तुम पर्यायसे शुद्ध तो हो नहीं, सो शुद्ध पर्याययुक्त अपनेको क्या देखोगे। स्वभाव भी है तुममें है और पर्याय है अशुद्ध सो परम शुद्धनिश्चयनयके विषय तुम बन सकते ही और बन सकते ही अशुद्धनिश्चयनयके भी विषय।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परम शुद्ध निश्चयनयके भाव द्वारा भी अपने आपको पाते हो और अशुद्ध निश्चयनयके विषय द्वारा भी अपने आपको पा सकते हो।

बुरे भी हो आत्मन्! तो भी तुम मेरे उपयोग में रहो। हे आत्मन्! कुछ भी होओ तुम्हारी दृष्टि सदा रहे। यही कृति मुझे अच्छा बना लेगी।

नित्य निरञ्जन जय निर्नाम। सकटमोचन जय अभिराम।
हे चेतन, आनन्द निकेतन, रहो विराजो मम उपयोग।
शाश्वत! सत्य! तुम्हारी रुचि सों मिटते जन्म जरादिक रोग॥
हे योगियोंके एक मात्र ध्येय! सदा जयवंत प्रवर्तो।

१७ मार्च १६५७

संसारमें सर्वत्र अशान्ति है। पर पदार्थ परकी हुई दृष्टि कैसे शान्ति लेने देगी। शान्ति तो स्थिर और सदा साथ रहने वाले पदार्थकी! दृष्टिसे मिलेगी। ऐसा पदार्थ है निज चेतन, चैतन्य स्वभाव।

पराधीन स्वप्नेहु सुख नाहीं, कर विचार देखो मन माही। विभाव इन्द्रजाल है यह सुखदायकसा लगता है किन्तु है अतिक्लेश परिणाम वाला। शारीरिक उपसर्ग भला, दैहिक रोग भला किन्तु विभावकी रुचि भली नहीं है।

हे सहज स्वभाव, हे परम पारिणामिक भाव, हे कारण समयसार। अनादिसे भटककर आज (साम्प्रत) तुम निज नाथके समझनेकी रुचि जागी है, समझनेकी वृत्ति हुई है, बड़ी सचेत अवस्था पाई है, अब और जो चाहे कुछ बीत जाओ किन्तु तुम मेरे नजरसे बाहर न होओ। बहुत कालमें तुम्हें पाया। तुम ही तो एक सार हो। तुम्हारा ही तो शरण सांचा। शरण है। हे निज नाथ! अब तो तुम्हारे अनुरूप होकर मैं मिलकर दुनियांकी निगाहमें मैं अपनी सत्ता खो दूं।

१८ मार्च १६५७

क्या अनादि अनन्त कालमें यही सर्व कुछ सर्वस्व है जो वर्तमान संयोग मिला अथवा वर्तमान भोग मिला। यह सब क्षणिक समागम है कितनी देर का है इसके लिये लोकमें कोई उपमा नहीं मिलती। यदि कहें कि करोड़ों वर्षोंमें एक बार मेघकी बिजली जितनी देर चमकती है उतनी देर तो यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिजली चमकने जितना टाइम भी लम्बा टाइम हो गया अनादि कालमें मिले आजके वर्तमान समागमके टाइमसे।

आत्मन्! केवल वर्तमान क्षणिक परिणामकी टाल करना है, उसे ही सुधारना है फिर कल्याण ही कल्याण है। इतना ही न संभाल सके तो फिर गजब है। कब सुधार होगा? कब शांति मार्ग मिलेगा।

यह संसारसुख सचमुच मधुबिन्दुकी तरह है। पूज्य श्री आचार्य महाराजों ने जो दृष्टान्त दिया है मधु बिन्दुका वह बहुत ठीक बैठता है। अनेक आपत्ति होने पर भी मधु मोही सोचता है यह बूंद जो अभी आने वाली है इसे और ले लूं फिर विद्याधर के विमानमें बैठकर यहांसे भाग निकलूंगा। आपत्तियां कितनी हैं, आयु रूपी चूहे जीवन डाल काट रहे हैं हस्ति रूपी यमराज भव वृक्षको जड़से उखाड़ रहा है चारों गतिके सर्प संसार कूपमें मुंह बाये खड़े हैं। यह मधुमोही आशाके वश होकर अपना भव बिगाड़ रहा है।

थोड़ा ही तो कष्ट है, वर्तमान मनको समझा लो फिर आनन्द ही आनन्द है।

निर्विकल्प परमसमाधि भावमें जो आनन्द है वह तीनों लोकोंके भौतिक पदार्थ भी जुट जायें उनमें आनन्द नहीं है।

१६ मार्च १९५७

जो यह विभाव परिणाम कर रहे हो यही तो संसार है। संसार और तुम ढूंढते कहां पर हो। देख लो कि इस परिणाममें तुम्हें शान्ति मिल रही या अशान्ति।

अशान्तिको ही शान्ति समझकर ज्ञानियोंकी मुंह जोरी करो तो इस हठ रोगकी औषधि तो और कहीं नहीं है कैसे उन्माद हठकर तथ्य मिले उस मद मोही को।

कल्पित शुभ वृत्तिको ही धर्म समझकर धर्मात्मापनकी पर्याय बुद्धि करे तो इस उन्मादकी औषधि तो और कहीं नहीं है कैसे उन्माद होकर तथ्य मिले उस पर्याय बुद्धिको।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धोखे पूर्ण पुण्यके उदय वश कुछ इष्ट समागम मिल जावे उसमें ही बड़प्पन समझे सो इस अज्ञानकी तो औषधि और कहीं नहीं है, कैसे अन्धकार हटकर सार दिखे इस भौंदूको।

इन्द्रियोंसे अधिक काम लेने पर मानों ये इन्द्रियां घिस जाती हैं और फिर भविष्यमें इनकी कमजोरी हो जाती है। यदि इन्द्रियोंको संयमित करके इन्द्रियोंको आराम दे दिया जावे तो इसमें जब तक इन्द्रियां हैं इन्द्रियोंकी पुष्टि रहेगी और आत्माकी पुष्टि तो बढ़ती है।

आत्मन्! बताओ तुम आत्मा हो या शरीर? यदि शरीर है तो जो दिखाओ सो करो किन्तु इतना तो ध्यान रक्खो कि शरीर तो लोग जला ही देंगे या शरीर कहीं पड़ा सड़ जावेगा या पक्षी पशु नोचकर बिखरा देंगे। फिर एक बार और सोचो शरीर हो या आत्मा। यदि आत्मा हो तो आत्माकी पुष्टिमें लग जाओ।

२० मार्च १९५७

श्री युत प्रोफेसर लक्ष्मी चन्द जी सा० नेचरल एक भावुक और बुद्धिमान पुरुष हैं। इतना निष्कपट निर्मद और बुद्धिमान व्यक्ति हमें अब तक नहीं मिला। होंगे बहुत, किन्तु मिला नहीं कोई ऐसा। इनको देखते ही हमें बहुत कुछ धर्म साधनके लिये भी एक प्रेरणा मिलती है। यह हमारा एक पुण्य फल है कि बड़ी लगनके साथ मेरे इंगलिश अध्ययनमें बहुत ही श्रम करते हैं और वह भी निःस्वार्थ और सभक्ति। मेरी भी कुछ ऐसी आदत बन गई है कि ये आते जाते कायिक भी भक्ति करते हैं और मैं कुछ संकोची और दुःखी होकर देख लेता हूं साथ ही अन्तर्भावसे मन वचन कायकी किसी चेष्टासे विनय व कृतज्ञता प्रकट कर लेता हूं।

दुनियांमें देखो सैकड़ों आये चले गये। सब अपनी करामात दिखाये चले गये।

भैया देखो तो अपनी पुरानी पीढ़ी। उनमेंसे कौन कौन अब साथ है और कौन कौन चल बसे। कुछ समय बाद तुम भी तो न रहोगे यहां।

करलो कल्याणकी बात शीघ्र। समय जा रहा है भैया समय गुजर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता है वह फिर वापिस नहीं आता। सोच लो समझ लो गुन लो खूब।

मान लो, तुम प्रभु हो इसलिये वैभव मिलना कोई बड़ी बात नहीं है किन्तु वैभवमें ही उजड़ गये प्रभुताकी बरबादी हो जावेगी।

२१ मार्च १९५७

आत्माका कल्याण निर्द्वन्द्व रहनेमें है। निर्द्वन्द्वता निरपेक्ष रहनेसे बनती है। निरपेक्षतामें ही शान्ति है। निरपेक्षताके लिए एकत्व भावना और अन्यत्व भावना आवश्यक है। अन्यत्व भावनासे विकल्पमल हटाकर एकत्व भावनासे आत्माको पुष्ट करो।

आत्माका सहाय अन्य कोई नहीं है। इष्ट समागमकी इच्छा ही क्लेश है। पहिले तो किसीको इष्ट समझना ही क्लेश है। सर्व पदार्थ भिन्न हैं उनके द्रव्य प्रदेश गुण पर्याय स्वयंके उनमें हैं। अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें कुछ भी सम्बन्धकी दृष्टि लगाना बड़ा अनर्थ है।

संसार संयोग दृष्टिके बल पर ही जीवित है। संयोग दृष्टि हटने पर मोक्षका विलास है।

अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको जबरदस्ती अपना मानना, अपना इष्ट समझना इससे बढ़कर और अज्ञान क्या होगा। इस अज्ञानने ही हमको आज तक सताया था। अब देखो आत्म क्या करता है? खुद ही खुदको खुदके द्वारा खुदमें करता है। पर वस्तुका ममत्व छोड़ो।

निजका आदर करो आत्मन्! नहीं तो देखा है ना मार्गणास्थान, समझा है ना जीवस्थान। कितनी जीवकी भटकनायें हैं उनमें भटकना ही फल हाथ रहेगा।

२२ मार्च १९५७

आजके दिन एक चौकेवाली महिला ने कहा कि आज तो महाराज अमुक भाईके यहां आहारको जावेंगे। यह सुनकर समझमें आया कि बाईजी का अभिप्राय यह है कि वहां न जाकर मेरे यहां आवें। ऐसी स्थितिमें भाव हुआ कि जिस भाईके यहां न जानेको यह कहा जा रहा है वहीं जाया जावे।

ऐसी स्थिति कई बार आजाती है और इस वातावरणसे लोग गलत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फायदा उठाना चाहते हैं। इसका प्रतीकार यही है जिसके यहांको कोई मना करने के गर्जसे अलङ्कार में कहे उसको बात न मानना।

गृह सन्यासीको जल प्रवाहकी तरह प्रयास करते रहना अधिक लाभकारी है। किसी भी चेतनते कोई परिचय ही प्रारब्ध न करना विशेष मङ्गल है। जीवके क्लेशका कारण परपरिचय है, साथ ही मलिनताकी योग्यता अन्तरङ्ग कारण है।

बड़ी कठिनतासे यह नर भवका अवसर पाया आत्मन्! अब तो सर्व यत्न पूर्वक आत्मामें ही एक करनेका पुरुषार्थ कर अन्य बातकी ओर रंच भी न झुक।

सर्व सर्व असार है एक आत्म दृष्टि आत्मोपयोग व आत्मस्थिरता ही सार है। पक्का उपयोग बना, बना अपने आपका। रंच भी न भटक अपने से बाहर अन्यत्र।

पक्की प्रतीतिसे भीतरके चारित्रमें चल। ऊपर क्या होता है उसे कर्म विपाक जानकर उससे उपेक्षित रह।

कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल अपने आपको मानना मोक्ष मार्गका बीज है।

२३ मार्च १९५७

आज प्रातः चन्द्रावती बाई जी खण्डवा वाली मिलीं। इनकी अधिक वृद्ध अवस्था है फिर भी धर्म पालनके व्यवहार साधनोंमें भी अति जागरूक हैं और निश्चय तत्त्वकी ओर उत्साह है।

धर्म ही जीवकी शरण है। धम्मं सरणं पव्वज्जामि। धर्मः—अर्थ आत्मनि (स्वस्मिन्) यं स्वभावं धते स धर्मः। आत्मनो धर्म आत्मनः स्वभाव स्तस्याश्रयोऽपि धर्मः। धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

आत्मन्! यह अवसर अपूर्व मिला है सो अपूर्व काम करके अपनेको अपूर्व बनाओ।

किसी भी अन्य पदार्थका चिन्तवन न करो, किसी अन्य पर दृष्टि न दो। अच्छा नहीं बनता है ऐसा तो उस अन्यका सही विचार करने लगो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विचार ही विचारमें तो सदा रहते हो और तो कुछ करते नहीं। विचार ही अच्छे करने लगो फिर आनन्दका सन्मार्ग हाथ ही है।

सत्य सदा सत्य रहेगा। सत्में जो हो वह सत्य है। सत्का अपत्य भी सत्य है अर्थात् सत्तका परिणमन भी सत्य है। यह बात अन्य है कि परिणमन सदा नहीं रहता अतः अभूतार्थ है अथवा सत्य है किन्तु सत् ही में तो होता अतः सत्य ही है। निश्चयनयका जो विषय है वह सत्य है जो सत्य है वह निश्चयनयका विषय है। अन्य सब विविध युक्तियोंके विलास हैं।

२४ मार्च १९५७

आत्माका चारित्र यदि गया तो वह संक्लिष्ट रहेगा। चारित्र व्यवस्थित रहने पर संतुष्ट रहेगा। हिंसा झूंठ चोरी कुशील परिग्रह इन पापोंका त्याग आत्माकी निर्विकल्पता का खास कारण है। शांति निर्विकल्पतामें। हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रहका सेवन कर निर्विकल्प न कोई रह सका और न कोई रह सकेगा।

जो स्थान विकल्पोंका कारण बने उस स्थानको सहसा छोड़ देना चाहिए स्थान वह विकल्पोंका कारण होता है जहां ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन दो संयमोंमें बाधा आवे। इस बाधाके आधार पर हिंसा झूठ और चोरीकी वृत्ति भी होने लगती है वह स्थान परित्यागके ही योग्य है जहां पांच पर्यायमें से किसी भी पापके करनेको विकल्प चले।

आत्माकी महत्ता गुणोंके सद्विकाससे है। लेखसे भाषणसे लोकमें महत्ताभी जाहिर हो किन्तु वह महत्ता महत्ता नहीं। इसका फल तो कर्म बंध है वर्तमान भी तृष्णा है। भविष्यका भी दुःख निश्चित कर लेना है।

संयमका मार्ग असंयमके भावोंके रहते हुए कठिन है। अन्यथा संयम तो अति सरल है क्योंकि उसमें पराधीनता नहीं है। स्वाधीन स्वभावना संयमकी माता है। स्वतन्त्रतामें संयमवृत्ति है। वह केवल के करनेसे होता है।

२५ मार्च १९५७

आज श्री फतेहलाल जी सिंघी जयपुर वाले आये। आये इस भावसे कि मढ़ियामें प्रबन्ध ठीक हो तो यहां रह जावें। वाहें हमारे साथ इष्ट है। इनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विवेक और कल्याण भाव सराहनीय है। ये शिक्षित और अन्तरङ्ग से विरक्त हैं।

नाथ ! कब परपरिवृत्ति समाप्त हो। माया तो माया ही है। जो था तत्व है सो दिखने वाला था। आत्माकी उपयुक्ति आत्माकी ओर ही हो इससे बढ़कर और वैभव नहीं, इससे बढ़कर और आनन्द नहीं।

इन्द्रायणफल विषयफल है। इन्द्रायणफलमें यह सुनते हैं कि वह खाने में तो मीठा लगता है किन्तु उसके खानेका फल मरण है। यही बात विषय फलकी है। विषय भोगनेमें तो रुचिकर लगते हैं किन्तु विषयभोगके उपयोग का फल आत्महनन है।

इस अनादि अनन्तकालमें यह ५०-७० वर्ष जितना जीवन है बतला, क्या मूल्य रखता है हजारों कोश लम्बे चौड़े समुद्रमें की एक बूंद उस समुद्रमें गिनती करने के योग्य है किन्तु यह जीवन बूंद बराबर भी नहीं है। इस अनित्य, जीवनमें अब क्या करना है? क्या संसारमें रुलनेका अन्त सोचना है या संसारमें रुलनेकाही कार्य करना है।

जैसे अनन्तों भव बीत गये तैसे यह भी भव बीत जायेगा। अनन्तमें एककी गिनती क्या? इस एकको लौकिक बातोंके लिये न कुछ समझ कर इस समागमका धर्मके लिये प्रयोग करलो।

जानलो, मानलो, हमें कोई नहीं जान रहा है कोई जिसे जानता है वह भौतिक है। अथवा कोई जिसे जान रहा है वह खुद खुद ही है।

मत भ्रमो, मत रुलो, मत श्रम करो, सत्य आराममें रहो। ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः।

२६ मार्च १९५७

इस युगमें सर्वोच्च तत्व, अहिंसा एवं अध्यात्मक तत्वके प्रतिबोधक भगवान् महावीर स्वामीका उपकार सभी शान्तिके इच्छुक अनुयायियोंपर हुआ है।

महावीर स्वामीके सेवक देव और देवराज भीथे यह तो उनके सातिशय पुण्यका फल था। सर्वविवेको आत्माओंके आराध्य जो वे हुए यह उनके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यथार्थ मार्ग दर्शन करानेका फल है।

उनका साक्षात् तीर्थप्रवर्तन आजसे २५०० वर्ष पहले हो रहा था वही परम्परागत सिद्धान्त आज भी शास्त्रोंमें निर्बाध निबद्ध हैं यह वस्तु स्वरूपके अनुरूप सिद्धान्तके प्रदर्शित होनेका फल है।

भगवान महावीर स्वामीका आत्मा इससे पहले भगवान था और फिर अवतार लिया ऐसा न था किन्तु उनका आत्मा सिद्धके भवमें अतीवन, उस भवके त्यागके बाद उच्च स्वर्गमें उच्च देव हुआ। वहांसे आकर राजा सिद्धार्थके घर माता त्रिशलादेवीके उदरसे उन्होंने जन्म लिया। उनके इस चरित्रके जान जानेसे हमें विकासको बड़ा उत्साह मिलता है।

महावीर स्वामीकी आयु कुल ७२ वर्षकी थी, जिसमें उन्होंने केवल ३० वर्षकी ही अवस्थामें बालब्रह्मचारी होकर कठिन संयमसाधनाकी, अत्यन्त निष्परिग्रह होकर एवं मौन रहकर अध्यात्म आराधनाकी आजकलकी संभव आयुके समान आयुवाले महावीर स्वामीकी यह धार्मिक विशेषता तो हृदयमें सहसा घर कर जाती है अपनेको सत्यतामें ले जानेके लिये।

महावीर स्वामीका आत्मा घातिया कर्मोंके क्षयके फल स्वरूप जब सर्वज्ञ हो गया, परम आत्मा हो गया, उसके पश्चात् बिना रागके दिव्य ध्वनि हुई। इस दिव्यध्वनि को सुनकर देवे, मनुष्य और सैनी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंने अपने आत्माका लाभ लिया। केवलि प्रणीत होनेके कारण यह सिद्धांत आज भी अबाधित रूपसे मौजूद है जिससे अपने व पर पदार्थका यथार्थ स्वरूप ज्ञान हो जाता है।

२७ मार्च १९५७

भगवान महावीर स्वामी जैनधर्मके संस्थापक नहीं थे किन्तु अनादिकाल से चले आये हुए जैनधर्मके प्रचारक थे। इनसे पहले २३ तीर्थङ्कर और हो चुके हैं तथा उनसे पहले भी प्रत्येक चतुर्थककालमें २४ तीर्थङ्कर होते आये हैं। विदेह क्षेत्रमें अनादि परम्परासे निरन्तर तीर्थङ्कर होते आ रहे हैं। भगवान महावीर स्वामीने नया धर्म न चलाकर अनादिसिद्ध जैनधर्मका प्रसार अपनेको उसमें निहित कर दिया यह उनका अलौकिकसत्य है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

भगवान महावीर स्वामीके सिद्धान्तोंमें से कुछ मुख्य सिद्धान्त तो अवश्य जान ही लेना चाहिये। यथा—

अनेकान्त—प्रत्येक वस्तु अनंत स्वभाव वाला है।

स्याद्वाद—वस्तुके अनेक स्वभावोंकी परख अनेक दृष्टियोंसे की जाती है।

परिणमनविधि—प्रत्येक वस्तु अपनी शक्तिसे परिणमती है। केवल जीव और पुद्गल जब स्वभाव प्रति के प्रतिकूल परिणमन करते हैं तो वे किन्हीं अन्यको निमित्ताओंको पाकर करते हैं, वहां भी वे अपनी शक्तिसे परिणमते हैं। जब वे स्वभाव के अनुकूल परिणमते हैं तब उनके परिणमन में केवल समय ही निमित है अन्य कोई पदार्थ नहीं।

पञ्चशील—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की वृत्तिसे निर्विकल्प परिस्थितिके लिये महान् बल प्राप्त होता है अतः इस पञ्चशलका पालन शान्तिके इच्छुकोंका परम कर्तव्य है। यह पञ्चशील लौकिक व्यवस्था और शांतिका भी अपूर्व आधार है।

कर्म सिद्धान्त—जीव कर्मके उदयके अनुसार सुख, दुःख पाता है। कर्मका बन्ध जीवके कषायके अनुसार होता है। कार्माण वर्गणा नामके पुद्गल स्कन्ध जो सर्वत्र लोकमें भरे हैं और प्रत्येक संसारी जीवके साथ अलग अलग अनन्त कार्माण वर्गणायें जो कर्म रूप होनेके लिये हैं बने रहते हैं। उन कर्मोंका खिरना कषाय न होने पर अपने आप होता है जैसे कि कर्मोंका बंधना कषायके होने पर अपने आप होता है।

२८ मार्च १९५७

दिगम्बरत्व—सर्वोच्च एवं शाश्वत आनन्दकी प्राप्तिके लिये अविचल समाधिभाव आवश्यक है। इसकी सिद्धि तब ही संभव है जबकि समाधि भाव के बाधक एक रंच भी परिग्रह न हों। यह तत्व दिगम्बरत्व याने अत्यन्त निष्परिग्रह अवस्थामें ही विकसित हो सकता है।

परमात्मतत्व—परमात्मतत्व दो पद्धतिसे जाने जाते हैं— (१) कारण परमात्मा, (२) कार्य परमात्मा। कारण परमात्मा तो चैतन्य तत्त्व है और कार्य परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, परमानन्दमय परमात्मा है। कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमात्माकी आराधनामें आने वाले विघ्नोंके दूर करनेके अर्थ कार्य परमात्मा की आराधना करनी चाहिये। निर्मल पर्याय याने कार्यपरमात्मत्वके विकासके लिये कारण परमात्माका आश्रय याने अभेद आराधना करना चाहिए।

सहज चैतन्य भावमय यह परमात्मतत्त्व नामक कारण परमात्मा सर्व जीवोंमें एक स्वरूप है। जो इसका दर्शन पा लेता है वह संसारके दुःखोंसे छूट जाता है।

जो आत्माको अशुद्ध रूपमें देखता है उसे अशुद्धोपलब्धि होती है और आत्माको शुद्ध रूपमें देखता है अथवा जो स्वभावके अनुरूप परिणमता है उसके शुद्धोपलब्धि है। अब यहां केवल यह बात शेष रह जाती है कि सकषाय अवस्थामें शुद्ध कैसे देखा जा सकता है।

शुद्धि दो प्रकारकी है—(१) द्रव्य शुद्धि, (२) पर्याय शुद्धि। द्रव्य शुद्धि तो शाश्वत रहती है जिसका इतना अर्थ है कि जो सब पर्यायोंमें रूप परिणमता रहता वह सामान्य द्रव्य। यह निर्विकल्प है। पर्याय शुद्धि पर्याय शुद्ध होने पर कहलाती है।

सकषाय अवस्थामें द्रव्य शुद्धिकी दृष्टिसे शुद्ध द्रव्य देखा जा सकता है। इस तरह भी जो अपनेको शुद्ध रूपमें देखता है उसके भी शुद्धोपलब्धि है। शुद्धोपलब्धि या तो स्वानुभवमें होती है या केवल ज्ञानमें होती है।

२६ मार्च १९५७

भावोंकी निर्मलता होना और बढ़ना व निभा जाना अलौकिक, अनुपम पुरुषार्थ है।

भावोंकी निर्मलता अपरिचयकी स्थिति बने रहने बिना नहीं बनती है। आत्मा अनादिसे ऐसा शक्तिहीन है कि निर्मलताकी उन्नति इसके नहीं हो पाती। और जब किसी पर पदार्थसे स्नेह रूप परिचय हो जाता है तब उसके विकल्पसे विराम नहीं मिल पाता। ऐसी स्थितिमें आत्माका पतन ही हाथ रहता है।

आत्माको शान्ति आत्माके उपयोगमें ही मिलेगी। शान्ति निज घरमें ही मिलती पर घरमें नहीं। जो शान्तिमय है वहीं शांति मिलेगी। समुद्रमें जल मिलता है रेतमें नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विकल्पोंमें आत्मा बरबाद हो गया। कितना बरबाद हो गया। क्या बतायें। हो गया! हो जाने दो। गतका शोच न करो और वर्तमानमें निज यथार्थ स्वरूपको देखो तो सहज पुरुषार्थसे सारी बरबादी मिटाकर अपनी सही आबादी पा लोगे।

http://www.jainkosh.org

घबड़ानेसे न लौकिक काम बनता है और न अलौकिक काम बनता है। किसी भी स्थितिमें घबड़ाना अच्छा नहीं है। धीर बनो। धीरता सम्यक् भावनासे उत्पन्न होती है। धीरतामें अनाकुलताका मन्त्र है। धीरता विवेककी जननी है। धीरता क्षमाकी अभिन्न हृदय सखी है।

हे धीरते! तुम्हारा शरण आत्माको अभय बना देता है।

धीर बड़ा कि वीर? भैया दोनोंका मतलबतो करीब एकसा है किन्तु लौकिक अर्थमें ऐसा हो गया कि वीर तो कहते शक्तिशालीको और धीर कहते हैं बुद्धिमान गंभीरको। तो अलौकिक अर्थ क्या है? धीं बुद्धि राति ददाति इति धीरः? विशिष्टाई ज्ञान लक्ष्मीं राति ददाति इति वीरः।

३० मार्च १९५७

संसारी आत्मा जिस परिस्थितिमें होता है वह उसी स्थितिमें बन्धनके योग्य विकल्प बना लेता है? बाह्य अर्थ कोई भी पराधीन नहीं बनाता। मलिन आत्मा स्वयं किसीको निमित्त पाकर किसीको आश्रय बनाकर विपरीत परिणमतसे परिणमता रहता है।

संसारके समस्त दुःखोंके नाश करनेके पुरुषार्थको कर लेनेका मौका तो यही है! मौका मत चूक। मौका चूके ठिकाना नहीं। एक बार असंज्ञी हुएके बाद सुलटनेका क्या पुरुषार्थ बनाया जा सकता है फिर तो केवल समयकी बात है। सुलट गया तो सुलट गया। नहीं सुलटा तो जय हरि।

हे आत्मन् विकल्पोंमें मत पड़ा रह। किसीसे स्नेह मत बढ़ा। नहीं तो अपने दुःखसे ही तो विरामको मौका नहीं, परके दुःखसे दुःख बढ़ा लेनेकी विपदा और ले लोगे।

दुःखसे दुःख बढ़ते हैं और अनाकुल भावसे अनाकुल भाव बढ़ता है प्रायः यह ही स्थिति है। पूर्ण नियम ऐसा नहीं है अन्यथा दुःखसे कभी छुटकारा ही नहीं हो सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यथार्थ ज्ञान वह है जिसके फल स्वरूप राग द्वेषकी वृत्ति न जगे। सम्यग्ज्ञान पानेका फल यह लूटना कि संसारके क्लेश आगे न चल सकें।

ॐ सम्यग्दगात्मने नमः।

31 मार्च 1957

यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया। इसके फलमें ऐसी वृत्ति बनाना जिससे निर्विकल्प ध्यानको प्रोत्साहन मिले।

अपने आपके ध्यानमें उपयुक्त रहना, अपनेमें ही अपना अधिक विचार करना, बाह्यका अधिक ध्यान न रखना। हां भोजनादि आवश्यक हैं सो उस चर्यादिमें संयमादिके अर्थ बाह्यका ध्यान तो रखना ही पड़ता अन्यथा सावद्य आहार विहार हो जायगा तब तो वह प्रमाद भी दोषादायक हो जायगा।

संस्थाकी चिन्ता भी गृहस्थी जैसा एक रूप है। गृह सन्यास करके किसी परमें अटक रखना न शोभा देतो है और न हितकर होती है।

निश्चयनयका विषय निर्द्वन्द्व और निर्विकल्प है तो उस विषयके आश्रयसे हुई परिणति भी निर्द्वन्द्व और निर्विकल्प होती है।

निर्द्वन्द्वतामें आनन्द है और सद्वन्द्वतामें क्लेश है। निर्द्वन्द्वताका अर्थ है द्वन्द्व याने दो से रहित, एक स्वतन्त्र। सद्वन्द्वका अर्थ है द्वन्द्व याने दो से सहित संयुक्त, दूसरेके उपयोग वाला।

निर्विकल्पतामें आनन्द है और सविकल्पतामें क्लेश है। निर्विकल्पका अर्थ है विकल्प रहित और सविकल्पताका अर्थ विकल्प सहित। विकल्प अभिप्राय, हर्ष विषाद, संकल्प, ख्यालात और विचारोंको कहते हैं। विकल्पके रहते हुए आकुलताका प्रादुर्भाव है। निर्विकल्पतामें आकुलताको कोई गली ही नहीं मिलती।

1 अप्रैल

आज विक्रम सम्वत्का नवीन वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। अनेकों वर्ष जीवनके गुजर गये। आज आत्मोन्नतिके हिसाबमें कितनी सफलता हस्तगत है इस विषयमें क्या निर्णय है? जैसें पल्लव ग्राही पाण्डित्य विडम्बना है वैसे ही पल्लवग्राही संयम भी विडम्बना ही है।

थोडा त्याग थोडा राग, कभी त्याग कभी राग, मनका त्याग मनका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

राग ये सब विडम्बनायें हैं।

http://www.jainkosh.org

त्याग हो और त्याग हो त्याग हो तो वहां त्यागका आनन्द मिल जावेगा।

राग हो और बेधड़क राग हो तो रागसें अफरकर कल्याणकी ओर उपयोग आजावेगा। वह नियम तो नहीं बनाया जा सकता है किन्तु होता करीब ऐसा ही है। तभी तो अधिकसे अधिक राग भी ऊंचा संहनन वाला कर पाता है।

आत्मन् ! किसी पर वस्तुके संकल्प विकल्पमें बसना अच्छा नहीं ! यदि तुम्हारे संकल्प विकल्पके अनुसार पर पदार्थकी परिणति हो गई तो उससे कहीं तुम्हारी इच्छा पूर्ण न हो जावेगी। यह तो भ्रान्त धारणा है कि एक बार अमुक कार्य हो जावे तो पीछे इस कार्यकी पूर्ति हो जावेगी या इच्छा न रहेगी यदि परकी परिणति तुम्हारे संकल्पके अनुसार न हुई तो बात भी न बनी और कर्म बन्धनका भार भी ऊपर ले लिया। सभी आपदाओंसे बचनेका मात्र यही उपाय है कि संकल्प विकल्पमें मत बसो। बसो एक दम अपने ध्यान चिन्तनमें।

समस्त आपदाओंका मूल पर्याय बुद्धि है। किसी पर्याय मात्र अपनेको अनुभवना ही मोह है। इसके रहते हुए शांति नहीं हो सकती। अतः भेद विज्ञान द्वारा मोहको समाप्त करो।

२ अप्रैल १९५७

पर वस्तुका लक्ष्य भुलानेका यत्न तो करते हो किन्तु थोड़ा थोड़ा यत्न होने पर लक्ष्यकी पूर्ति नहीं हो सकती है। कुछ थोड़ा ही समय इस रूपसे जावे कि सर्व परका लक्ष्य छोड़ विश्राम मिले तो वहां निर्विकल्प आत्मानुभव हो जायगा।

संसार परिभ्रमणका मूल मोह है। मोहका मूल स्व परमें एकत्वका अभ्यास है। स्व परैकत्वाभ्यासका मूल परमें आत्म बुद्धि या परमें आत्मीय बुद्धि है। इस पर्याय बुद्धिका मूल स्व परके यथार्थ स्वरूपके ज्ञानका अभाव है। इस अज्ञानका मूल प्रमाद है। अतः प्रमादको छोड़कर, पाये हुए क्षयोपशमका अपनी ओर उपयोग कर स्व परके यथार्थ स्वरूपके ज्ञानका यत्न करा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहिये। जब यथार्थ स्वरूपकी प्रतीति हो जावेगी, पर्याय बुद्धि मिटेगी, स्व परैकत्वाध्यास मिटेगा, संसार परिभ्रमण मिट जावेगा।

सदाचारकी ओर प्रगति होना आत्माकी उन्नति है। सदाचार दो प्रकार का है अन्तरङ्ग सदाचार, वाह्य सदाचार। अन्तरङ्ग सदाचार तो निज स्वभाव की दृष्टि और उसकी स्थिरता होना है। वाह्य सदाचार हिंसा, झूठ चोरी, कुशील और परिग्रह इन पापोंका त्याग होना है।

ऐसा नहीं हो सकता कि वाह्य सदाचारका तो दुश्मन रहे और अन्तरङ्ग सदाचार हो जावे।

अन्तरङ्ग सदाचार मुख्य है तो बाह्य सदाचार उसकी पोषक है अथवा बाड़ है।

जिन्होंने विषय कषायके परिणामको जीत लिया वे उपास्य हैं, धन्य हैं।

ॐ श्रीजिनाय नमः।

३ अप्रैल १९५७

सम्यग्दर्शन सम्यक् का दर्शन है। सम्यग्दर्शन सम्यक् द्वारा किया हुआ दर्शन है। सम्यग्दर्शन सम्यक्के लिये किया हुआ दशन है। सम्यग्दर्शन सम्यक् दर्शन है। सम्यग्दर्शन सम्यक् अभिप्रायसे जायमान दर्शन है। सम्यग्दर्शन सम्यक् नयसे जायमान दर्शन है।

मिथ्यादर्शन–मिथ्या भावका दर्शन है। मिथ्यादर्शन–मिथ्या (विकार) का दर्शन है। मिथ्या दर्शन–मिथ्या अभिप्रायके द्वारा किया हुआ दर्शन है। मिथ्यादर्शन–मिथ्याके लिये किया हुआ दर्शन है। मिथ्यादर्शन–मिथ्यादर्शन है। मिथ्यादर्शन–मिथ्या अभिप्रायसे जायमान दर्शन है। मिथ्यादर्शन–मिथ्यानयसे जायमान दर्शन है। मिथ्यादर्शन–मिथ्या विकारी) आत्माके द्वारा किया हुआ दर्शन है। मिथ्यादर्शन-मिथ्या (वस्तु स्वरूपसे उल्टे तत्व का दर्शन है।

मिथ्यात्वके स्थान अनेक हैं। सम्यक्त्वका स्थान एक है।
मिथ्यात्व सहेतुक है। सम्यक्त्व अहेतुक है।
मिथ्यात्व विभाव पर्याय है। सम्यक्त्व स्वभाव पर्याय है।
मिथ्यात्व विकार भाव है। सम्यक्त्व अविकार भाव है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिथ्यात्व संसार मूल है	सम्यक्त्व मोक्ष मूल है।
मिथ्यात्व पराधीन है	सम्यक्त्व स्वाधीन है।
मिथ्यात्व परम्परया अनादि है	सम्यक्त्व परम्परया भी सादी है।
मिथ्यात्व पर्यायाश्रयज है	सम्यक्त्व द्रव्याश्रयज है।
मिथ्यात्व पराश्रयज है	सम्यक्त्व स्वाश्रयज है।
मिथ्यात्व सविकल्प है	सम्यक्त्व निर्विकल्प है।
मिथ्यात्व भेद विषयक है	सम्यक्त्व अभेद विषयक है।
मिथ्यात्व अकल्याण है	सम्यक्त्व कल्याण है।

४ अप्रैल १९५७

अनियम, असमयम, अशमयम, अशयम, अंशसंयम, देशसंयम संयम इन सबमें उत्तरोत्तर विशेष बलवान् हैं।

आज तुमने सब कुछ जान लिया। आत्माको भी समझते हो। वह चैतन्यमय है, अमूर्त है, स्वतन्त्र सत् है शरीरसे भिन्न है। मोक्ष मार्गको भी समझ लिया। अब तो सर्व विकल्प छोड़कर अपने राममें आरामसे रहजाना मात्र कर्तव्य रह गया।

यह कर्तव्य किसी भी बाह्य अवस्थामें निभाया जा सकता है। न कहीं भी होओ, किसी समय होओ, किसी संगमें होओ, यह आत्मोपयोगका कार्य ले स्वाधीन हैं, कभी भी, कहीं भी निभालो इसमें विघ्न रूप है तो है अपनी कमजोरी व पर दृष्टि।

ॐ तत् सत्। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और विषय भूत पदार्थों का विजय चारित्रका सर्व प्रथम कदम है। इनके जीतनेका उपाय इनसे उल्टोंका आश्रय करना है।

द्रव्येन्द्रिय जड़ हैं तो जड़से विपरीत चैतन्य स्वभावका आश्रय द्रव्येन्द्रियोंके जीतनेका उपाय है।

भावेन्द्रिय खण्ड खण्ड रूपसे ज्ञान करता है तो खण्ड ज्ञानके विपरीत अखण्ड विज्ञान घन चैतन्य स्वभावका आश्रय भावेन्द्रियोंके जीतने का उपाय है।

विषयभूत पदार्थ अन्य है उसका संगसा ज्ञानमें हो रहा है उस संग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाले विषयोंको जीतनेका उपाय असंग निज स्वभावका आश्रय है।

५ अप्रैल १९५७

जिस ज्ञान पर दुनियावी प्राणी, मनुष्य इतने इतराते हैं उस इन्द्रिय ज्ञानमें अनेक दोष हैं यथा—

(१) ऐन्द्रिय प्रति अर्थके अनुसार बदलता है विकल्प करता है। (२) व्याकुल है। (३) राग द्वेष सहित है। (४) दुःख रूप है। (५) निष्प्रयोजन है! (६) मोहमुक्त याने प्रमत्त है! (७) निकृष्ट है अनेक हेतुवोंकी अपेक्षा रखता है। (८) क्रमवर्ती होनेसे व्युच्छिन्न है (९) विचारके यत्नसे होनेसे कृच्छ है। (१०) बंधका कारण होनेसे विरुद्ध है। (११) बंधका कार्य होनेसे कर्मज है। (१२) आत्माका धर्म न होनेसे अश्रेय है। (१३) अशुचि है क्योंकि कलुषित है। (१४) पराधीन होनेसे परोक्ष है। (१५) इन्द्रिय जन्य होनेसे अमूल्य है। (१६) संशयादि दोषोंकी इसमें संभावना है। (१७) घटा बढ़ीके कारण मूर्च्छित है। (१८) ज्ञानावरणके उदय की संभावना होनेसे अशरण है। (१९) यह इन्द्रिय ज्ञान अमूर्तको नहीं जानता मूर्तको ही जानपाता है। (२०) मूर्तमें भी सूक्ष्मको नहीं जान पाता, स्थूलको ही जानसकता है। (२१) स्थूलमें भी इन्द्रिय ग्राह्यको ही जान पाता है (२२) इन्द्रिय ग्राह्यमें भी भूत भविष्यत्‌को नहीं जान पाता, वर्तमानको ही जानपाता है। (२३) वर्तमानमें भी सन्मुखकी ही जान पाता है। (२४) सन्मुख होने पर भी अब ग्राह्य होने परही जान पाता है। (२५) इतना होनेपर कदाचित जानता कदाचित नहीं जानता–जैसी शुद्धि हो। (२६) ज्ञानावरण का क्षयोपज्ञान हो तभी जानता। (२७) ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेपर भी वीर्यान्तरायका क्षयोपशम हो तभी जानता। (२८) पञ्चेन्द्रिय जाति नाम कर्मका उदय होनेपर यह ज्ञान हो सकता है! (२९) मन अङ्गोपाङ्गका उदय हो तब होता। (३०) पञ्चेन्द्रिय जाति वा मन अङ्गोपाङ्गका बँध होनेपर भी यदि संक्रमण न हो तो ज्ञानका काम बनेगा। (३१) पर्याप्तिज्ञान कर्म का उदय हो याने शरीरादि पर्याप्त हो तो जानता। (३२) प्रकाशादि मिले तब ही जानता। (३३) तद्विषयक संस्कार हो तब ही जानता। (३४) परम्परावलोकन बन [illegible] हो तब जानता। (३५) इतने हेतुसे होनेपर भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रियजज्ञान खंडित है। क्योंकि एक एकको जान पाता। (३६) इतनेपर भी प्रदेशचलनात्मक है यह।

६ अप्रैल १९५७

मैं आत्मा ही क्या ? समस्त आत्मीयें, समस्त आत्मायें हो क्या ? समस्त द्रव्य मात्र केवल अपने अपने द्रव्यका ही परिणमन कर पाते हैं। इसमें सन्देहको रंच भी स्थान नही। प्रत्यक्ष भी अनेकों उदाहरण दिख रहे हैं।

जो किसी बाह्य वस्तुका आश्रय कर दुर्भाव करता है वह उस बाह्य वस्तुका तो कुछ भी नहीं करता, केवल अपना हीं अनर्थ करता है ! इस तत्त्व की खबर मोहमें नहीं रहती और इसी कारण बाह्य अर्थमें एकमेक हो जाते हैं।

इस जगतमें अपनी संभाल कर लेना कठिन किन्तु सर्वोच्च काम है। बेसुधपन तो जीवने अनादिसे अपनाया विषय कषायकी बेसुधपन ही रहा तो मनुष्य जन्मका क्या उपयोग हुआ विचारो। विषय कषाय का कलायें ता तिर्यञ्च, पशु पक्षियोंके भवमें प्रयुक्त की जा सकती थीं।

इस जन्म की सफलता स्वात्मीय आनन्द का लोभ लेनेमें है। यह स्वाधीन आनन्द अनुपम है। इस आनन्दके प्राप्त होनेपर फिर वह सहज आनन्द भुलाये भी नहीं भूला जाता।

सत्य पथ विकल्पोंका अभाव है। विकल्पोंका सद्भाव अपथ है। अपथके विनाशका आदि उपाय सत्संग है और है साथ ही स्वाध्याय।

स्वाध्यायमें स्व का अध्ययन, मनन है। जिस अध्ययनसे स्वका मनन हो वह स्वाध्याय है।

७ अप्रैल १९५७

प्रत्येक जीव के दुःख होनेमें उस ही जीव का अपराध है। कोई किसी के अपराधसे दुखी नहीं होता। परसे हित या अहित मानना ही बड़ा अपराध है। इस अपराधमें दुःख स्वयंसिद्ध है। सम्यग्ज्ञान होना, भ्रम संस्कार बना रहना अनर्थ ही उत्पन्न करना है।

हे आत्मन् ! अनादि से अब तक अनन्त काल बीत गया। कब क्या न पाया होगा। किसका साथ रहा अब तक।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माके साथ कर्मका बन्ध है ! कर्मके बंध बिना आत्माकी ऐसी विचित्र परिणतियां हो नहीं सकती ।

कोई आत्मा कितना भी बरबाद हो जावे जब भी चेते तभीसे समझे अब भी बचेकी लाज रखी जासकती है। सुधार उत्तरोत्तर सुधार ही लाता है।

बिगाड़के बाद बिगाड़ हो गया अब सुधारको क्या रहा सुधार कैसे हो सकता है यह कायरोंकी भावनायें हैं। सौदास कब सुलटा ? अञ्जन चोर कब सुलटा अनेकों उदाहरण हैं।

स्वयं स्वभावसे निर्विकल्प है आत्मा। निर्विकल्प हो सकता थोड़े प्रयास से भी।

धर्मके मार्गमें अनेकों लगा रहे। जिनको नाम प्रतिष्ठाका भाव नहीं उनकी धर्मकी लगन तो सच्ची है और जिनके नाम प्रतिष्ठाका व्यामोह है उनकी दशा गृहस्थसे भी निम्न है।

महान् आनन्द तुच्छ आनन्दकी बलि पर ही मिल सकता है।

८ अप्रैल १९५७

आज श्री भगवान् रामचन्द्रजीके जन्मका दिवस है। श्री रामचन्द्र जी अद्‌भुतायन मर्यादा पुरुषोत्तम प्रजाजनके निकट सम्पर्कमें रहने वाले महा-पुरुष थे। थे भी तो बलभद्र वे।

सुख शान्ति चाहो तो पुण्य पाप सबकी आहुति करो। एक दम उपेक्षा कर दो सर्व समागत सचित अचित मिश्र पदार्थकी।

सर्वजन सुकर सर्वजनरम्य वर्तनोंकी उपेक्षा कठिन है किन्तु निजस्वरूप जान लेने पर यह निज वर्तन सुकर है। हिम्मत करो तो एक साथ जैसे बड़े वृक्षको उठाकर फेंक देनेके लिये सर्व यत्नसे एक बारमें ही हिम्मत करी जाती है।

धिक्कार है उस उपयोगको जिसमें पर विकल्प बनाया जाता है। किस परके सोचनेसे क्या लाभ है ? जन्म क्यों व्यर्थ गमा रहे हो। सर्व परको छोड़ कर एक निज शुद्ध चैतन्य तत्त्वकी दृष्टि बनाये रहो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वह आत्मा धन्य है जिसके उपयोगमें निरन्तर बस रहा है शुद्धचैतन्य तत्त्व।

 http://www.jainkosh.org

मुझ इस चैतन्य स्वरूपको अन्य कोई जानता ही नहीं है। यदि कोई जानता भी है तो वह अपने आपके तत्वमें समाविष्ट हो जाता है। अब मेरा किससे सम्बन्ध है। मोहका मोहसे मोहात्मक सम्बन्ध बनाया जाता है। इससे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

९ अप्रैल १९५७

ब्रह्मचर्य परम तप है। आत्म तत्व में अनवरत वर्तने वाले रुचि करने वालोंके तो यह ब्रह्मचर्य तप अनायास बनता ही है किन्तु जो ऊपरी तत्वकी जानकारीके बल पर भी ब्रह्मचर्यकी साधना करते हैं उन्हें भी ब्रह्मचर्यकी सिद्धि होती है और इससे उन्हें आनन्द प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्यको विरुद्ध भाव मात्र पागलपन है। सारका तो नाम रंच भी नहीं है। विपत्तियोंकी गिनतीका छोर पाना भी सरल नहीं है ब्रह्मचर्यके घातमें।

आत्मन् अपनी दया करो। विवेकके साथ रहो। क्षणिक भावावेशमें बहकर गिर न जाओ। आत्म कल्याणका यह अवसर चूकने पर बताओ अधिकार पूर्वक कह सकते हो कि कब ठिकाना पावोगे।

दुर्विचारका विश्वास न करो। यह अहितके लिए ही प्रकट होता है। यह वर्तमानमें सुखद मालूम होता है किन्तु परिपाक काल प्रकट दारुण दुःख देता है।

ये विभावों ! तुम तो भावक ही रहते हो भाव्य तो बनते नहीं फिर तुम्हारे होनेमें तुम्हें क्या लाभ है। होकर हमें और बरबाद करते हो। कुछ सज्जनता लाओ मेरे पुराने प्यारे।

दुर्भाव केवल कल्पनाकी भीतके चित्रण हैं। उनका मिटा लेना कोई कठिन बात नहीं है। सद्भूतका मिटाना कठिन है व कठिन क्या असंभव है किन्तु असद्भूतके मिटानेमें कौनसी कठिनाई है।

१० अप्रैल १९५७

नाटकको नाटक कर दो।

कौन कैसा है इसके निर्णयमें तुम्हें अन्तरमें लाभ होगा या मैं स्वयं कैसा हूं स्वभावसे और क्या होता है विभावमें तब मैं अपनी ओर उन्मुख होऊं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो क्या बीतता है स्वभावमें और विभाव किस दशाका शरण लेता है आदि निजके निर्णयमें तुम्हें लाभ होगा।

आत्माका आत्मीय आत्मा ही शरण है। हे निज नाथ! अब न छुपे रहो उपयोग की दोनों आंखोंमें विराजमान रहो। तुम्हारे इस नाटक से तुम्हें कोई लाभ है? नहीं, तो नाटक समाप्त करो।

नाटकको नाटक कर दो न अटक इति नाटक। इसकी अटक न रहे। नाटककी अटक न रहे। नाटक तो होता ही रहेगा। बिना अटकके नाटक शुद्ध नाटक होगा। अटक वाला नाटक अशुद्ध नाटक होगा।

शिवोऽहं, शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, नित्योऽहं, निरञ्जनोऽहं, ज्ञायकैकस्वरूपोऽहं, ज्ञानमात्रमेवाहं, परमशिवोऽहं, सदामुक्तोऽहं, सदाशिवोऽहं परमपारिणामिकभावरूपोऽहं, चित्स्वरूपोऽहं, चिद्रूपोऽहं, निःशल्योऽहं, अकर्ताऽहं, अभोक्ताऽहं, अमूर्तोऽहं, निराकारोऽहं, स्वस्थोऽहं।

ब्रह्मास्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि, तत्वामस्मि।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
जानातो मा येकत्वं गमय। असतो मा सद्गमय।
कर्मणो मा स्वंय गमय।

११ अप्रैल १९५७

मनुष्य भवका क्षण क्षण अमूल्य है। श्रेष्ठ मनवाला है, उत्तम होशके अवसर का दाता है यह। इतनी श्रेष्ठता पाकर भी यदि मन बहलाव, परानन्दानुभव, विविध अनात्मीय विज्ञान आदिमें समय बिता डाला तब गया समय तो हाथ न आयेगा केवल उस अच्छे योग्य कालके लिए पछताना रहजावेगा।

मनका वश करना सबसे बड़ा उच्च काम है। यह सम्यग्ज्ञान द्वारा वश किया जाता है।

जगत का कोई भी पदार्थ अपनेमें बद्ध नहीं और न मैं जगतके किसी पदार्थसे बद्ध हूं। एक चितको वश किया सर्व जगतसे उपेक्षाकी स्वतन्त्रता स्वानन्द सर्व कुछ अपने ही हाथ है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कोई पदार्थ मुझे वशमें नहीं करता मैं ही स्वयं किसीको इष्ट कल्पित

http://www.jainkosh.org

करके स्वयं परके वशकी कल्पना करके पराधीन अनुभव करता। यह जगत स्वतन्त्र पदार्थोंका समूह है। पदार्थोंकी ऐसी स्वतन्त्रता है वह अपनी योग्यता के अनुकूल परको निमित्त मात्र पाकर विशिष्ठ विशिष्ट परिणमनसे परिणत होता रहता है। तथा अपनी स्वाभाविकता योग्यताके अनुकूल अवशिष्ठ परिणमन करता रहता है।

पदार्थ स्वयं परिणत होता है यह पदार्थका स्वतःसिद्ध स्वभाव है। जो परिणमता है परिणमने दो उससे मेरा क्या ?

१२ अप्रैल १९५८

आज श्री १००८ भगवान महावीर स्वामीकी जयन्ती है। वीर प्रभु का महत्व इसलिये है कि उनका निष्पक्ष उपदेश ऐसा पवित्र है जिसके अनुसरणसे भव्य जीव शान्ति को प्राप्त हो जाते हैं। वीर यदि राजपुत्र थे तो इस नाते भी मेरे उपास्य नहीं। वीर का पुण्य विशिष्ठ था तो इस नाते भी मेरे उपास्य नहीं। वीर उपास्य इसी हेतु है कि उनके उपदेश के अनुसरणसे आत्मा सत्य शास्वत आनन्द पा लिया जाता है।

वीर प्रभुका स्वर्गसे अवतरण हुआ किन्तु वहां यह न समझना चाहिये कि स्वर्गमें वे उच्च पदस्थ थे और उस ऊंचे पदसे उतर कर आये यह बात नहीं है।

अवतार की बात इसलिये प्रसिद्ध हो गई कि स्वर्गका स्थान तो आकाश में ऊपर है और मनुष्य लोक स्वर्गसे नीचे है। स्थान के ऊपर नीचे होने से कुछ छोटा बड़ापन नहीं है। वस्तुतः सर्वश्रेष्ठ भव इस मनुष्य भवका है।

वीर वीर थे महावीर थे वर्द्धमान थे सन्मति थे अतिवीर थे। इसलिये कि ब्रह्मचर्यसे उनके जीवन का प्रारम्भ था और पूर्व ब्रह्मचर्यमें जीवनकी समाप्ति थी।

वीर प्रभुके उपदेशका सार यह है जिसे श्रीमत्कुन्द कुन्दाचार्य जी ने कहा है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुचइ जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥

Version 1

रागी जीव कर्मोंका बन्ध करता है किन्तु विरागी जीव कर्मोंसे छूट

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता है यह जिनेन्द्र देवका उपदेश है, इसलिये हे हितके इच्छुको कर्मोंमें राग-मत करो।

१३ अप्रैल १९५७

आत्माका कर्तव्य है कि चैतन्य मात्र निज ध्रुव स्वभावकी दृष्टि बनाये और इसी ओर निरन्तर उपयोग रहे। प्रागवस्था यथाशक्ति यह होगा पश्चात् यह निरन्तर होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई काम है ही नहीं। अन्य कार्य जिन्हें भूलसे अपने सम्बन्धित मानता था, उन्हें होते हैं तो होने दो न होते हों तो तुम्हारा जन उस ओर चित्त देना नहीं। अन्यकीय कार्योंसे तुम्हारा हित नहीं। तुम्हारी शान्ति और अशान्ति तुम्हारे उपयोगके आश्रित है।

जब तक आत्मस्थिरता नहीं हुई तब तक आत्म स्वभावका लक्ष्य यत्न करके भी बनाये रहो। यदि आत्म स्वभावके लक्ष्यमें कोई विघ्न बाधायें उत्पन्न होती हों तो उन भावात्मक विघ्न बाधाओंकी निवृत्तिके अर्थ णमोकार मन्त्रका परमेष्ठियोंके स्वरूपका ध्यान रखते हुए स्मरण करते रहो।

आत्मन्! जान तो लिया शांतिका मार्ग, यही है ना शान्तिका मार्ग कि समस्त यह दृश्यमान पर्याय है अध्रुव है तेरेसे अत्यन्त भिन्न है तथा तेरा यह शरीर भी तेरा नहीं है। सर्व अपने अपनेमें ही अखण्ड सत् हैं अतः किसी का कुछ तीन कालमें भी किसी प्रकार हो नहीं सकता। अब कर्तव्य यही है ना कि ऐसा ही समझते रहो, किसी अन्य पदार्थकी ओर मत झुको।

यह भावात्मक यत्न कर लो अब जल्दी कर लो।

समय जा रहा है इसकी तो परवाह नहीं क्या कि समय तो जावेगा भी और आवेगा भी। परन्तु विषाद तो इस बातका रहेगा कि सम्यक्त्व व चारित्र के योग्य अवसर पाकर उचित कार्य न किया तो अनुचित अवस्थाओंमें रहना पड़ेगा।

१४ अप्रैल १९५७

आत्मन्! निर्विकल्प स्थिति तब तक कठिन है जब तक निर्विकल्प स्थितिका एक बार भी स्वाद न आवे।

यदि एक बार भी निर्विकल्प स्थितिका स्वाद आ गया तो चाहे प्रबल कर्मोदय वश निर्विकल्प स्थितिका वियोग बहु काल तक रहे तथापि अनेक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अवसर प्राप्त हो सकते हैं निर्विकल्प स्थितिके अनुभवके और कोई समय ऐसा आवेगा कि निर्विकल्प स्थितिके अनुभवन शीघ्र शीघ्र होवेंगे उस समय ऐसा इस शुद्ध परिणमनका प्रवाह चल जावेगा कि विकल्पकी गंदगी सदाके लिये मिट जावेगी।

यत्न करो, चाह मत करो। चाहसे सिद्धि नहीं होती, सिद्धि यत्नसे होती है। मोक्षकी सिद्धि मोक्षकी चाहसे नहीं होगी, मोक्षके यत्नसे होगी मोक्षका यत्न यथार्थ ज्ञानका अनुभवन है।

सम्यग्दृष्टि मोक्षकी चाह नहीं रखता किन्तु आत्म स्वरूपकी यथार्थता अवगत हो जानेसे मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहनेका परिणमन करता जाता है। कर्मोदयवश विडम्बनायें भी सामने आ जावें तो उनमें पड़कर भी उनका ज्ञाता रहता है।

धन्य है सम्यग्दृष्टि आत्माकी लीला। यही प्रभाव यही चमत्कार उसकी विजय है और पूर्ण विजयकी जड़ है। सम्यक्त्व ही श्रेय है, आनन्दका सर्वस्व है।

१५ अप्रैल १९५७

माया, मिथ्या और निदान ये तीन शल्यें हैं। माया तो, पाप करनेके परिणाम हों और ऊपरसे लोगोंको पापी न जचाना हो, ऐसे अवसर में होती है। यह एक अन्धकार की स्थिति है। आत्माकी इस परिणतिमें अवनति है। क्योंकि निर्विकल्प अनुभवकी बात तो गई गुजरी, पुण्य भावका भी यहां अवसर नहीं।

मिथ्याभाव अज्ञानदशामें होता है। जहां वस्तुकी स्वतन्त्रताकी प्रतीति नहीं वहां ही परसे अपना सम्बन्ध समझने रूप मिथ्याभावकी उत्पत्ति है। यह भी अन्धकारकी स्थिति है। आत्माकी इस परिणतिमें अवनति है क्योंकि निर्विकल्प अनुभवकी बात तो गई गुजरी, पुण्य भावका भी यहां अवसर नहीं।

निदान सांसारिक सुखकी चाहको कहते हैं। चाहसे सिद्धि नहीं है। कदाचित् विशिष्ट तप संयम वालोंके तपस्यासे कम पदकी चाह होने पर चाह की सिद्धि हो जावे तो उस सिद्धिको हानि ही समझना। निदान का भाव शुद्ध तत्त्वके आनन्द बिना होता है। यह भी एक अन्धकारकी स्थिति है। आत्मा

Version 1

की इस परिस्थितिमें अवनति है।
http://sahjanandvarnishastra.org/

तीनों शल्योंसे वर्जित आत्मा पूज्य है। तीनों शल्योंसे रहित आत्माका सत्सङ्ग लाभकर है।

कोई बातोंकी चतुरतासे सङ्गमें किसीको बनावे सङ्ग वालोंकी संख्या बढ़ावे और वहां संगमें रहने वाले सन्तुष्ट भी रहें तो भी उनसे अच्छा तो उनका सङ्ग है जो तीनों शल्योंसे रहित हैं, किसीसे विशेष बात भी नहीं करते हैं और न अपना सङ्ग बढ़ाते हैं और निरपेक्ष रहते हैं। ऐसे योगीका सत्सङ्ग मुझको विशेष लाभदायक है।

१६ अप्रैल १९५७

सर्व सम्मत तत्व इतना है कि शान्ति मिलना चाहिये। उसका क्या उपाय है यह सर्व सम्मत एक न हो सका।

अखण्ड एक सत्के भूलसे चलें तो उपाय भी सत्य एक निकल आवे पहिले तो स्वयंके विषयमें ही अनेक धारणायें हैं कोई मानता है—

(१) समस्त लोकमें एक ही आत्मा है उसकी मन पर छाया है तो मन ही चेतनाका संग पाकर विकल्प करता और दुःखी होता है।

(२) आत्मा अनेक है और उन सबको ईश्वरने बनाया है।

(३) ईश्वर ही चेतन अचेतनके रूपमें अपना विलास करता है ईश्वरके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

(४) आत्मा अनेक हैं और प्रत्येक आत्माके साथ प्रकृति लगी हुई है सुख, दुःख, शुभभाव अशुभभाव सभी विकारोंको प्रकृति करती है और भोगने पड़ते हैं उनके फल आत्माको।

(५) पाप, पुण्य करता है आत्मा और उसका फल देता है ईश्वर।

(६) पाप पुण्य भी ईश्वर कराता है और फल भी ईश्वर देता है।

(७) प्रकृति ही भावोंको करती है और फलोंको भोगती है आत्मा भ्र उन्हें अपनाकर कर्ता भोक्ता बनता है।

(८) समस्त पदार्थ अनादिसे अनन्तकाल तक अवस्थित हैं और समय वे परिणमन करते रहते हैं। वैज्ञानिक ढंगसे जैसे भौतिक पदार्थ निमित्त नैमित्तिक भावसे परिणमन समझमें आता है वैसे ही आत्माक
Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

निमित्त नैमित्तिक भावसे परिणमन होता चला आया है। निज शुद्ध स्वभाव की दृष्टिसे इसका परमात्मावस्थारूप परिणमन हो जाता है। पर लक्ष्यसे जन्म मरण रूप संसार बना करता है। क्या सत्य है सोचो।

१७ अप्रैल १९५७

सत्य उसे कहते हैं जो सत्में हो। सत् क्या है कितना है इसका निर्णय बिना सत्य नहीं जाना जा सकता। सत् वह होता है कि जो एक परिणमन जितनेमें होना ही पड़ता और जितनेसें बाहर कभी नहीं हो सकता। इस दृष्टिसे देखने पर सत्की यथार्थ पहिचान हो जाती है। इस तरह प्रत्येक आत्मा सत् है। एक एक अणु सत् हैं। सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर अन्य द्रव्य भी सत् हैं।

अब प्रत्येक द्रव्यकी बात उसही एक द्रव्यमें देखी जावे। इस प्रकारकी दृष्टिसे स्वतन्त्र रूपसे देखा गया तत्व सत्य है।

आत्माका चरित्र सबसे बड़ा वैभव है। चरित्र खोकर जो लौकिक वैभव पानेका यत्न करता है वह कीमती मणियोंको पाकर उससे पैर धोनेके काम जैसा काम करता है अथवा चन्दनके पेड़ जलाकर बर्तन माजके लिये राख पानेका यत्न करता है।

आत्म चारित्र सर्वोपरि चीज है। कितनी ही आपत्तियां भी आवो फिर भी चरित्रकी रक्षा करना अन्त तक कर्तव्य है।

चारित्रमें प्रधान ब्रह्मचर्य और सरलता है। व्यभिचार भी पतन है और छल कपट भी पतन है। इन दो ऐबोंसे बचकर चलने वाले अन्य ऐबोंसे सुगमतया बच जाते हैं।

मनुष्यको यदि आत्मीय उत्थान करना है तो ब्रह्मचर्य और सरलता इन दोनोंका आदर करना चाहिये।

१८ अप्रैल १९५७

मनुष्य छल करनेके पापसे तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक छुपकर किसी कार्य करनेकी आदत समाप्त न कर दे।

Version 1

परवाह नहीं, चाहे वह खोटा काम हो किन्तु उसे छुपकर न करे।

http://sahjanandvarnishastra.org/ चाहिए नहीं, चाहे वह भला काम हो किन्तु उसे छुपानेका यत्न न करे। हां प्रकट करनेका भी यत्न न करे।

ब्रह्मचर्य ही सत्य जीवन है। शरीरका सर्व बल वीर्यमें है इसी कारण इस धातुका नाम वीर्य रखा गया है वीर्य माने बल याने शक्ति। वीर्य बल है।

शरीरसें वीर्य निकलना बड़ी भारी हानि है। शरीर पुष्ट रखनेके लिये लोग अनेक प्रकारके आहार करते हैं अनेक यत्न करते हैं यदि एक ब्रह्मचर्यको अपना लिया जावे तो यही एक यत्न सर्व सफलताओं का मूलहो जाता है।

संसारमें कोई किसी का साथी नहीं। निमित्त नैमेत्तिक अब ऐसा है कि जीवने किसी भी वस्तुसे स्नेह किया, परिचय किया कि अपने स्वतन्त्र परिणमनसे वह पराधीन बन गया।

पराधीनता ही महान क्लेश है, पातक है। पराधीनता याने क्लेश न चाहने वाले जीव किसी भी पर पदार्थ का परिचय न बढ़ावें।

अपनेमें पूर्ण परिचित रहना अन्यसे अपरिचित रहना अध्यात्मयोगकी महती साधना है।

दिग्भ्रम हो जाने पर तीव्र गतिसे भी चला जावे तो भी इष्टस्थानकी प्राप्ति निश्चित नहीं है उसी प्रकार मोहभावके होने पर किया काण्ड कितना भी अधिक किये जावे उससे शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती दृष्टान्तमें तो संभव भी है इष्ट प्राप्ति किन्तु प्रकृतमें तो मोहके रहते हुए असंभव ही है शान्ति प्राप्ति।

१६ अप्रैल १९५८

रे मन ! तूने कितने ही भाव विचारे, कितने ही भोग भोगे, कितने ही कार्य किये किन्तु तू सब कुछ कर चुकने व भोग भोग चुकने पर भी सदा भूखा प्यासा रहता है। इसका कारण यह है कि कर्म और भोग तेरी शान्तिके उपाय नहीं हैं। तेरी शान्तिका उपाय तो मात्र सम्यक् ज्ञान है।

सम्यक् ज्ञान वह कहलाता है जहां वस्तुकी स्वतन्त्रताका प्रतिभास बना रहे। वस्तु स्वातन्त्र्यकी प्रतिति रहते हुए जीव दुःखी नहीं रह सकता। ब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपके विरुद्ध विचार होने पर जीवको दुःखी होना पड़ता है।

वस्तु तो है और भांति और कोई देखे और भांति, तब जैसा जाना वैसा वस्तुमें परिणमन न होने पर क्षोभ होना प्राकृतिक बात है।

सम्यग्दृष्टि पुरुष चाहे वैज्ञानिकोंकी बातें न जानता हो तो भी उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्को तो जानता ही है और जानता ही है सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

इन दो ज्ञानोंमें प्रायोजनिक सर्व ज्ञान आ गया। सर्वत् सत् उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है इस ज्ञानमें सर्व द्रव्योंका ज्ञान आ गया। द्रव्योंको स्वतन्त्र अखण्ड ज्ञान कर सर्वसे अप्रभावित होकर स्वमें उपयुक्त रहना ही तो महान् प्रयोजन है। इस प्रयोजनकी सिद्धि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् इस तत्त्व ज्ञानमें सिद्ध हो जाता है। किसी भी पर पदार्थसे कुछ लेना देना ही नहीं सो परके विशेष ज्ञानसे कुछ प्रयोजन नहीं, अतः विशेष ज्ञान बिना कुछ बिगाड़ भी नहीं है।

२० अप्रैल १९५७

आत्मन्! तुम प्रभु हो। अपनी प्रभुता सम्हालो। सत्य पथमें पैर बढ़ावो असत्य पथसे पीठ फेरो। तुममें वह बल है कि अन्तर्मुहूर्तको भी निर्विकल्प समाधि बन जावे तो करोड़ों भवके कमाये हुए और असंख्याते वर्षकी स्थिति रखे हुए कर्मोंका झड़ना हो जाता है। विनाश हो जाता है।

तुम्हारा आनन्द तुम हीमें है अन्यका ध्यान छोड़ दो। तुम्हारे तुम ही प्रभु हो, दीनता छोड़ दो।

तुम अनन्त बल शाली हो उस अनन्त की महिमामें समा जावो।

तुम अनन्त आनन्दमय हो उस आत्मीय आनन्दकी महिमामें समा जाओ।

तुम सुगमता, सरलता, सहजभावसे सुखी हो जाने वाले हो। कष्ट, कपट कृतियोंका प्रकरण छोड़ दो।

तुम सत् हो, सत्य हो, सत्त्व हो, सनातन हो, शान्त हो, शुद्ध हो, सुधाम हो, सदोदित हो, शाश्वत हो, सदाशिव हो।

Version 1

हे निजनाथ तेरी दृष्टिमें तो प्रकाश है और तेरी परान्मुखतामें अन्धकार है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकाशमें रहते हुए दुःख भी आये तो भी विडम्बना नहीं होगी। अन्धकार में रहते हुए सुख भी हो जायें तो वह बड़ी विडम्बना है।

प्रकाश सदा रहो फिर जो हो सो होओ। आत्म स्वभावकी दृष्टि हट जाना विपदा है अन्य विपदायें विपदा नहीं।

२१ अप्रैल १९५७

हे आत्मन्! तुम ज्ञानमय ही तो हो, बस अब सर्वत्र ज्ञानका विलास होने दो।

ज्ञानका साम्राज्य सत्य साम्राज्य है अन्य तो सब आतङ्क ही है।

कोई जानता होगा कि रागका साधन मिल गया तो बड़ी कमाई पा ली। उस इन्द्रजालके उपयोगसे अपनी कितनी बरबादी कर ली इस ओर चित्त नहीं डालता।

सुख एकाकीपनमें है। है भी तू प्यारे एक। भ्रमबुद्धिमें ही यह मनुष्य पर्यायका भी समय यों ही गुजार दोगे तो मेरे शरण! बतावो कब नैया पार होगी।

मनको मार, वचन मत बोल, कायसे तो तुझे करना ही क्या है। एक बार तो ऐसा सांचा ढाल। फिर मनसे जो बन पड़ेगा, वचनसे जो बोला जायगा, कायकी जो चेष्टा हो बैठेगी उनसे तुम्हें बाधा न आवेगी।

अब तो पूरी पूरी ठान ले, स्वमें ही रत होना है। कर्मोंको हमने बांधा था, कुछ ज्ञान होने पर भी बांधा था इस धैर्यके साथ कि बंध जाओ किसी भी समय थोड़ी ही बेलामें तुमसे अच्छी तरहसे निपट लेंगे। अब उस धैर्यका काम कर डालो।

मेरे आत्मन्! तुमने दर्शन दिया अब दर्शनके लाभसे मुझे वञ्चित न होने देना इसके एवजमें यदि किसीको उपसर्ग करके बाधामें देकरके मन भरना है तो खूब भर लेवे। बन्दा इसके लिये सविनय तैयार है।

२२ अप्रैल १९५७

सम्यक्त्वकी महिमा अनुपम है। निर्मल ज्ञान रहनेसे बढ़कर भी क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कहीं कुछ वैभव है।

http://www.jainkosh.org

किसीको ओर मत देख, किसीकी आधीनताका ध्यान न रख, किसीसे स्नेह मत रख। जानता तो जा जो जानने आता जावे, किन्तु उनमें उपयुक्त, आसक्त न होजा।

मिलेगा क्या अन्य वस्तुसे सो तो बताओ। जैसे शरीरका शरीरसे परिचय हो तो शरीरको लाभ तो दूर रहा शरीरकी ही कुछ क्षति होगी। वैसे आत्मा किसी भी अन्य पदार्थसे परिचय हो तो आत्माको लाभ होना तो दूर रहा आत्माकी कुछ क्षति ही हो जावेगी।

पुराण पुरुषोंके चरित्र देखो परिचय बढ़ाया कुछ भी हुआ आखिर परिचय छोड़कर अपनेमें अपने एकाकित्वका अनुभव करके ही सुखी हुए थे ना। तो क्या तुम कुछ संग्रह मनाकर सुखी होना चाहते हो। पुराण पुरुषों से भी बड़े चतुर बननेका प्रयत्न करना चाहते हो।

करना, कर्तव्य करना इसलिये कर्तव्य बताया है कि अकर्तव्य न बन बैठे।

अकर्तव्यके परिहारके लिये कर्तव्य है। तभी तो कर्तव्य निष्काम कर्म योग हो जाता है।

२२ अप्रैल १९५७

संसारका बन्धन राग द्वेष मोह भाव ही है। रागका बन्धन स्वभावमें नहीं इसी कारण राग छूट जाता है। राग नैमित्तिक है इसी कारण राग छूट जाता है।

विद्वानको सबसे जल्दी क्या काम कर लेना चाहिए संसारकी सन्तति का छेद।

शरीर मिलते रहना ही विपदा है। वह क्षण कब आये जब शरीरका बन्धन छूट जावे। शरीरका संस्कार न करो, शरीरके लिये बुद्धि मत लगावो। शरीरका व्यामोह छोड़ दो। शरीर शरीर (शरारती) है, शरीरके लिये अधीर न होओ।

शरीरके स्नेहसे शरीर ही रहोगे शरीफ नहीं हो सकोगे।

काल बड़ा विचित्र है। योगी होने पर बताओ वह कहां रहे। जंगलमें

Version 1

तो वहां आत्मघातके योग किये बिना निर्वाह कठिन है अथवा हिंसासे बचाव कठिन है यदि अन्य कोइ यत्न किया जीवनके लिये।

http://sahjanandvarnishastra.org/

योगीका शहरमें रहना उसके उत्कर्षका कारण नहीं।

अब क्या करे योगी? बस एक बात है अध्यात्मदृष्टिको अधिकसे अधिक बनाये फिर जो हो पड़े सो होने दे। हां अब क्या क्या सोचा जाय। इसीमें समय गमा दिया इसमें तो कुछ सिद्धि है नहीं।

२४ अप्रैल १९५७

श्रीयुत प्रोफेसर लक्ष्मी चन्द जी जैन M. Sc. एक सज्जन पुरुष हैं। इनमें मान तो छू भी नहीं गया, वैसे तो मान होगा अन्य था संसारमें क्यों रह रहे। हां लोकमें असंगत हो ऐसा मान नहीं। सहृदय, सरल पुरुष हैं ये। आत्मदृष्टिसे देखा जावे तो इन जैसा सर्वहितचिन्तक गृहस्थ जबलपुरमें जैन समाजमें तो अन्य कोई नहीं दिखा।

सज्जन पुरुष एक दम नहीं मिल जाते, ढूंढनेसे अथवा संयोगवश अचानक मिलते हैं।

अपनी दया करो, पर पर ही है उसमें आसक्त मत होओ। तेरी परिणति तेरेसे तेरेमें तेरे ही लिये होती है। यह लो सर्वकालके लिये है। लो बनाई हुई व्यवस्थाका लो बिगडता है, स्वभावका लो नहीं बिगड़ता।

सम सम्, सं, स्वकीय, स्वक, स्व।

ॐ शुद्धोऽहं. बुद्धोऽहं, नित्योऽहं, निरञ्जनोऽहं, ज्ञानानन्द, स्वरूपोऽहं।

मन वशकर, तन कृशकर, वचन हितमय कह। धन रुचि मत रख, ज्ञान धन भज।

जिस कायसे दुनियांको इतनी प्रीति है वह काम ही दुःखका हेतु है।

जिस कायकी राख अभी हो जाना है अथवा पशु पक्षी जिसे चौंटकर अभी खा जावेंगे, उस कायकी ओर ही बुद्धि रहती इससे बढ़कर पछताने की विषय और क्या होगा।

अपनी ओर बस। अपना काम कर। अपनेमें रम। अपने लिये सोच।

२५ अप्रैल १९५७

संसारमें सार कछु अन्य नहीं है। आत्म स्वभाव ही सार है। आत्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वभावकी दृष्टि ही हमारी माता है।

http://www.jainkosh.org

हे नाथ ! एक क्षण, एक सेकिण्ड, एक बार भी निर्विकल्प अनुभव हो जावे फिर यह परम्परा सब सम्हाल कर देगी।

कोई मेरा साथी नहीं है। एक भी अन्य पदार्थ मेरे विकल्पमें, उपयोग में मत आओ। बाह्य कौन मेरा क्या कर देगा। हम ही को तो अकेले इस संसारमें रहना है और हमको, इसको ही अकेले मोक्षमें रहना होगा। हम अनादि अनन्त एकाकी हैं।

हे आत्मन् किसी भी वस्तुमें राग मत करो। वह वस्तु, जिससे राग किया जाता है, रंच भी तेरे परिणामका, सुख दुःखका साथी नहीं है। राग परिणामसे आत्माका बल कम हो जाता है। राग परिणाम वर्तमानमें भी आकुलताका बढ़ाने वाला है और आगामी कालमें भी आकुलताके होनेका कारण बनता है।

हे प्यारे ! राग ही महादुःख है, अन्यको दुःख मत जानो। दुःख नहीं करना है तो राग न करो।

राग न करो, राग न करो, राग न करो।

प्रियतम ! चैतन्य स्वभाव ! अनादिसे बिछुड़ प्यारे ! तुम आज मिले। अब मुझ उपयोगसे बिछुड़े मत जाना।

तेरे रहने पर उपयोग हरा भरा है, तेरे पराँमुख होने पर उपयोग शून्य, दरिद्र और गरीब हो जाता है।

२६ अप्रैल १९५७

आज नाइयोंकी सभा थी नाई भाइयोंका आग्रह था। उसमें हम लोग गये। यह सभा उन्होंने भक्त सैनकी जयन्तीके उपलक्ष्यमें की थी। भक्त सैनकी विशेषता भक्ति है। भक्ति चारित्र निष्ठ कर सकता है। जगमें आनन्द इन दोनोंका अद्भुत है। आनन्दकी प्राप्तिके लिये चारित्र और भक्तिको अपनावो जिसका चरित्र सुरक्षित है उसका आनन्द, संतोष सब सुरक्षित है। जिसका चारित्र नष्ट हो गया उसका सब नष्ट हो गया।

चारित्रमें प्रधान है ब्रह्मचर्य और सरलता इनकी पुष्टिके लिये हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह इन पांचों पापोंका त्याग बताया है। पांचों पापोंके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्यागका प्रयोजन ब्रह्मचर्य है और सरलता की पूर्ति है।

जीवन अनित्य है। मनुष्य जन्म एक अनुपम अवसर है। इससे लाभ जरूरी निकाल लो अन्यथा केवल पछतावा रह जायेगा।

जो क्षण गुजर जाते हैं वे फिर वापिस नहीं आते हैं। जो साधन निकल जाता है उसकी सभावना तो है कि फिर भी हो जावे किन्तु निश्चय नहीं है।

शीघ्र कल्याण कर लिया जावे इसकी उपयोगिता इस ही में है।

किसीका दिल न दुखाना, चुगली निन्दा न करना, झूंठी गवाही न देना, झूंठे लेख न लिखना, किसीकी चीज चोरीसे, कलासे, डकैतीसे किसी भी प्रकार न हड़पना, कुशील सेवन न करना, परिग्रहकी तृष्णा न रखना यह चरित्र है। चरित्रकी रक्षा करो भक्तिका प्रवाह बढ़ेगा।

ऐसी भक्तिमें जो आनन्द है वह लोक में अन्यत्र नही।

२७ अप्रैल १९५८

संरण परिभ्रमण को कहते हैं। आत्मा आत्मा में ही परिभ्रमण करता और आत्मा में ही मुक्त हो जाता है। आत्माकी मलिन परिणतियोंका पुनः पुनः भवन होना ही तो परिभ्रमण है। आत्मा स्वयंकी शक्तिसे परिभ्रमण है, यह संसार रचना, यह सृष्टि किया करता है? आत्मा स्वयंकी शक्तिसे स्वभाव दृष्टि, अचलता, निर्मल सृष्टि और मुक्ति बनाता है।

जिसने संज्ञी बनकर भी स्वस्वरुप न पिछाना उसने दिल्ली जाकर भाड़ ही तो झोंका।

जिसने स्वस्वरुपावबोध पाकर निज चरित्रकी रक्षा नहीं की, उसने चन्दन वृक्ष बर्तन मांजनेको राख चाहने के अर्थ जला ही तो डाले।

जिसने चरित्र का भी आश्रय लेकर उसका निभाव नहीं किया उसने हीरा पाषाणको पाकर उसे पैर धोने में ही तो लगा दिया।

परिणामका नायक चाहिये फिर परिणामको जैसा चाहे बनालो। ज्ञान भावनासे परिणाम धर्मकी ओर उन्मुख हो जाते हैं। परवासनासे परिणाम विषय कषायकी ओर उन्मुख हो जाते हैं।

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।

ताव द्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितम्। ॐ नमः शिवाय, ॐ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नमः सिद्धाय, ौ मुक्ताय । ॐ नमःhttp://www.jainkosh.org शक्तिमयाय, ॐ नमः सहजाय । ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॥

२८ अप्रैल १९५७

आज पूरन चन्द मुलायम चन्द की मातेश्वरी जबलपुरने जीवस्थानचर्चाके द्वितीय संस्करण छप जानेके भावसे शास्त्र माला को एक हजार रु० प्रदान करना कहे । यहाँके पुरुष वर्ग और विशेष कर महिला वर्गने जीवस्थानचर्चा से अधिक लाभ लिया है और इसी कारण एक महिला ने द्वितीय संस्करण छपवाना चाहा ।

आत्मन् ! क्या जड़ पदार्थकी राह तकता है ? तू तो सर्व अन्य आत्मा और सर्व पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल से अत्यन्त पृथक है ।

हे राम ! तुम्हारा रमनेका स्वभाव है । रमो किन्तु पवित्र निजतत्त्वमें ही रमो । बहुत खेल हो चुका, बहुत होनी हो चुकी, बहुत विडम्बना हो चुकी । अब आखिरी परिणाम शुद्ध तत्त्वमें रमना ही हो । बड़े पुरुषोंकी यही रीति है जितना वह किसीका मजाक करे उतना ही वह उसे आराम देता है । और, अन्तमें तो आराम देता ही है ।

ॐ सत्यं शिवं सुन्दरम् ।

ॐ नमः शिवाय । ॐ नमः शुद्धाय । ॐ नमः परमतत्त्वाय । जिन ॐ नमः ।

२९ अप्रैल १९५७

आत्मामें एक समय एक पर्याय रहता है, पूर्व पर्याय तो हैं नहीं अतः वे अच्छी गुजरी या बुरी गुजरी इनका विकल्प कर वर्तमान पर्यायको विकल्पक मत बना ।

आत्मा में एक समय एक पर्याय रहती है, भविष्यत् पर्यायें तो हैं नहीं अतः भविष्यकी पर्यायोंकी इच्छा कर वर्तमान पर्यायको विकल्प मत बना ।

आत्मामें एक समय एक पर्याय रहती है वह पर्याय कैसी हो कि आत्मा में निरन्तर सहजकी ... हो जाय । यही एक खास समस्या है । जिन्होंने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसका हल निकाल लिया वे कृतकृत्य हैं ।

भ्रमजाल कितना है ? कहां है ? विचार करने पर हंसी ही आती है ।

मोक्ष मार्ग कितना है ? कहां है ? विचार करने पर गुजरे समय पर आश्चर्य अफसोस ही होता है ।

आत्मन् ! तुम अपने ध्येय के पक्के बने रहो मौन रहो, मौन रहो, मौन रहो बोलो तो केवल प्रवचन के समय या किसीसे पढ़ने के समय या पूजा भक्ति बोलते समय । या चर्चा समाधान के समय या पढ़ानेके समय इसके अतिरिक्त बोलना है तो केवल एक निश्चित समय । वह टाइम है जैसे आजकल के लिये—सुबह प्रवचन के उपरान्त ।

आत्मन् ! तेरे लिये तू ही प्रिय है, हित है । यह पूर्ण सत्य है । अनाकुलता के लिये बहुत से उपाय खोजा करते हैं खोजी । मुझे तो यह पूर्ण जंच गया कि मैं ही अपने ज्ञानके अनुकूल सुख और दुःख पाता हूं । आनन्द भी इसीसे ही पाता हूं, पाऊंगा ।

३० अप्रैल १९५७

अब चित्त नहीं चाहता कि कुछ बोलूं ! चित्त यह भी नहीं चाहता कि कुछ लिखूं । चित्त यह भी नहीं चाहता कि कुछ भी चेष्टा करूं ।

देखो तो विवशता ! ठाली भी रहा जाता नहीं । देखो तो पराधीनता ! इसे कुछ न कुछ करना ही पड़ा है ।

ये सब आपत्तियां समाप्त हो जावेंगी । धैर्य रखो । निज चैतन्य स्वभावकी दृष्टिकी ऐसी अपूर्व महिमा है कि इसके प्रसाद से निर्विकार, निश्चल आत्म स्थिति प्रकट होगी ही ।

जितना एकान्त पावोगे उतना भला होगा । अन्तः एकान्त पावोगे सर्व विपदायें शान्त होंगी ।

ॐ नमः परमात्मने ।

१ मई १९५७

जगतकी जागत है सोनेको जग कहता है, जगतको सोता कहता ।

जगतमें करनेको कुछ नहीं पडा है केवल विकल्पका नाट्य हो रहा है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्यारे ! तुझे यहां कौन जानता ? कषायवश बंध गये कर्मोंके उदय

http://www.jainkosh.org

वश संचित वर्गणावोंके इस ढेरको ही तो लोग देखते हैं। न ऐसा वह रहेगा और न ऐसा यह रहेगा और न बीचकी बात भी रहेगी। कामकी इच्छा सब मूर्खताओंमें पहिले नम्बर पर लिखी जाने योग्य मूर्खता है।

यहां यह सब इन्द्रजाल है। यह कुछ भी नहीं रहनेका है। इससे पराङ्मुख होओ अपने उन्मुख होओ।

कुछ करो, याने कुछ भी न करो।

मेरा स्वभाव सर्वज्ञताका है, वर्तमानमें मैं कितना ज्ञान रखता हूं? वह कुछ भी नहीं है। छद्मस्थ अवस्थामें भी बड़े बड़े ज्ञानी हुआ करते हैं। सचमुच मेरा यह ज्ञान अत्यल्प विकसित है, किन्तु नाथ सन्तोष मुझे इसलिये है कि प्रयोजनभूत निजतत्व की स्वतन्त्रताका बोध जो हुआ है वह असंदिग्ध निःशङ्कित है। इसके बारेमें कभी भी मुझे सन्देह नहीं होता।

हे जिनेन्द्र! तेरा उपकार वर्णनातीत है।

२ मई १९५७

आज मढ़िया क्षेत्रों पर पार्श्वनाथ जी और महावीर जीकी मढ़िया बननेका मुहुर्त था मुहुर्त सानन्द सम्पन्न हुआ। पार्श्वनाथ जीकी मढ़िया श्री कोमल चन्द जी जैन पुरानी बाजा जी वालोंने बनवाई और महावीर जीकी मढ़िया श्री खूब चन्द जी जैन जवाहर गंज वालोंने बनवाई।

हे अरहन्त देव तेरी विशुद्धताका ध्यान रहे जिससे मैं अपने विशुद्ध स्वभावका ख्याल करता रहूं।

हे प्रभु तेरी भक्ति यावत् स्वस्थ न बनूं तावत् बनी रहे।

हे जिनेन्द्र! तुम जिनके इन्द्र हो तो कोई जिन होता होगा। क्या तुम हमारे नाथ नहीं हो? हो, तो लो, तुम्हारे नाम बननेमें एक मैं भी कारण बन गया।

हे देव! तेरा स्वरूप तेरेमें नहीं मिलता, मेरेमें मिलता। तेरा स्वरुप है तो तेरेमें किन्तु मिलता मेरेमें। नाथ! मैं असत्य नहीं कह रहा हूं। इस इसी सत्यता पर भक्त और भगवान की रिश्तेदारी है।

हे प्रभु! तुम प्रकर्ष रूपसे हो गये हो। इसलिये प्रभु हो।

हे ईश्वर! तुम स्वयं स्वयंको स्वयंमें स्वयं के साधते हो इसलिये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ईश्वर हो।

हे शिव ! तुम स्वयं आनन्द मङ्गलमय हो और जो तुम्हारा ध्यान करता है वह भी आनन्द मंगलमय हो जाता है इसलिए तुम शिव हो।

हे राम ! तुम अपनेमें रमण करते रहते हो इसलिये राम हो।

हे विहारी ! तुम अपनेमें निर्भय विहार करते हो इसलिये विहारी हो।

३ मई १९५७

सर्व परिग्रह से अत्यन्त विरक्त होकर कुछ क्षण निजके स्वभावका अनुभव तो करो, जन्म सफल हो जायेगा। आत्मा वैभव युक्त हो जावेगा।

यह आत्मा स्वयं कारण परमात्मा है। कारण परमात्मा ही तो तीन रूप में लीला करता है (१) बहिरात्मा (२) अन्तरात्मा और (३) परमात्मा।

परमात्मा शब्द ही अन्य दो रूपोंका याने बहिरात्मा और अन्तरात्मा को सिद्ध करता है। परमात्मा वह है जो आत्मा परम है, उत्कृष्ट है। उत्कृष्ट है तब कोई अनुत्कृष्ट भी है या वही अनुत्कृष्ठ था पहिले। अनुत्कृष्ट २ प्रकारमें है (१) अधिक अनुत्कृष्ट (२) कम अनुत्कृष्ट। अधिक अनुत्कृष्ट बहिरात्मा है और कम अनुत्कृष्ट अन्तरात्मा है। उत्कृष्ट आत्मा परमात्मा है।

परा उत्कृष्ट मा लक्ष्मीः ज्ञान लक्ष्मीः विद्यते यत्र सः परमः, परमाश्चसौ आत्मा चेति परमात्मा।

अन्तरात्मा— अन्तः ज्ञायते आत्मा येन स अन्तरात्मा शुद्धात्मावि-दित्यर्थी।

बहिरात्मा— बहिः ज्ञायते आत्मा येन स बहिरात्मा पर्यायात्माबुद्धिरित्यर्थः।

४ मई १९५७

अमित, अखण्ड, अतुल, अविनाशी। अच्युत, अकल, अमल, अवभासी।
अचल अहेंतु अछल अविकारी। अमर अनन्त अखिल अवतारी॥

हे प्रभु ! हे आनन्दघन ! तुम ही अनुपम तत्व ही तुम हो ब्रह्म हो अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हे देव, देवाधिदेव, निजरस निर्भर ! सच्चिदानन्द। ज्ञानधन।

http://www.jainkosh.org

वन्त प्रवर्तों।

हे परम तत्व ! तुम्हारी दृष्टिके प्रसादसे पर्याय भी स्वतन्त्र हो जाती है।

हे निश्चल तत्व तुम्हारी दृष्टिके प्रसादसे पर्याय भी निश्चल हो जाती है।

हे स्वतन्त्र तत्व ! तुम्हारी दृष्टिके प्रसादसे पर्याय भी स्वतः सिद्ध हो जाती है।

हे निर्विकल्प तत्व ! तुम्हारी दृष्टिके प्रसादसे पर्याय भी निर्विकल्प हो जाती है।

जगतमें कुछ भी सहाय नहीं है। मात्र निजस्वभावकी दृष्टि ही निजका शरण है।

हे शरण ! तुम्हारी दृष्टिके प्रसादसे सर्व विकल्पोंका अभाव हो जाय मौलिक और आन्तरिक इच्छा है।

५ मई १९५७

इच्छा मात्र ही सर्व दुःखकी जननी है। इच्छाका अभाव ही आनन्द है।

आत्मामें भूख तो आती है परन्तु आत्मा खाता नहीं है। भूखका संस्कृत शब्द है बुभुक्षा। बुभुक्षा अर्थात् भोक्तुमिच्छा इति बुभुक्षा खानेकी इच्छाको बुभुक्षा कहते हैं। सा इच्छा आत्माका परिणमन है। इसे यह सिद्ध हुआ कि बुभुक्षा आत्मामें हुई। किन्तु खाना कहते हैं भोज्य पदार्थ और भूख पेटके सम्बन्ध होनेको। इसमें आत्माके गुणोंका कोई परिणमन नहीं है। हां इस कालमें जो भोजनके प्रसङ्गमें तृप्ति अतृप्ति आदि परिणमन होते हैं वे आत्मा के परिणमन हैं।

इस प्रकार देखो भूख आत्मामें हुई, खाना आत्माने नहीं किया। फिर सोचो भूख कैसे मिटती। भूख खानेकी इच्छाको कहते हैं। खानेकी इच्छा मिटनेसे भूख मिटती।

कोई भोजनके सम्बन्धसे इच्छा मिटाते हैं। कोई भोजन सम्बन्धके बिना ज्ञान मात्रके द्वारा इच्छा मिटाते हैं।

Version 1
जब समस्त इच्छायें शान्त हो जाती हैं तब शरीरका पोषण बिना खाये

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी उत्तम होता है। कितने केवली ८ वर्ष कम एक कोटि पूर्व तक संसार में रहते हैं। उनका शरीर तो कर्म वर्गणाओंके अनायास ग्रहणके कारण पुष्ट रहता है।

६ मई १९५७

आत्माका कल्याण सचाईमें है। सचाईके विरुद्ध चलनेमें आत्माका उत्थान नहीं। आत्माको बनाना है स्वभावके अनुकूल यथार्थ। तब यदि कोई जान बूझकर उल्टा चलता है याने स्वभावके विपरीत असत्यतामें प्रवर्तित होता है तब वह कैसे उत्थानमें आगे बढ़ जावेगा। इस पर विचार तो करो।

उत्थान ज्ञाता द्रष्टा रहना है। पतन राग द्वेषसे कलुषित हो जाना है।

मानव भवका क्षण बहुत अमूल्य है! यह अमूल्य है इसलिये कि इसमें मन इतना श्रेष्ठ है कि आत्म स्वभावका ज्ञान कराकर आत्म स्वभावमें प्रतिष्ठित हो जानेके लिये बड़ी प्रेरणा देता है।

वस्तुतः आत्माका काम आत्मामें आत्मासे होता है। किन्तु जब अनादि कालसे कर्मका, शरीरका, इन्द्रियका, बन्धन हो रहा है तब इस भवके मनका उक्त काम एक बड़ा विशेष अनुपम है।

हे आत्मन्! खूब तो घूमे विकल्पोंमें। अब तो विकल्पोंको शान्त करो। क्या निर्विकल्प परम अमृत रसका स्वाद नहीं लेना चाहते?

हे आत्मन्! विकल्प छोड़नेमें तुम्हारा कुछ जाता नहीं है। श्रम भी इसमें कुछ नहीं पड़ता। आनन्द ही आनन्द इसमें भरा है। विकल्पोंको छोड़ परसे मुख मोड़।

७ मई १९५७

खुद ही खुदका उद्धारक है।

हे आनन्द घन! तेरे में आनन्दकी कोई कमी है ही नहीं, फिर आनन्द के लिये भूकता क्यों है? यही तेरी बड़ी भूल है, यही तेरी पराधीनता है। यही सर्वहानि है।

आवो नाथ! अब मेरे उपयोगमें सदा विराजे रहो। तेरे दर्शन बिना यह मैं दीन होकर अब तक भ्रमा हूं। स्वभावके दर्शन पाने पर सर्व दीनता दूर हो जाती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ॐ नमः शिवाय शिवमयाय । ॐ नमः शिवराम शिव मूलाय ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तेरी दृष्टि सुख उत्पन्न करती है अतः तू ही शंकर है ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तेरी दृष्टिके प्रसाद से चेतना विश्वाकार रूप निज का अनुभव करता है अतः तू ही विष्णु है ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तेरी दृष्टिके प्रसादसे रागादि दोष सब जीत लिये जाते हैं अतः तू ही जिन है ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तेरा स्वभाव परम ज्ञान है अतः तू ही बुद्ध है ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तुम स्वयं स्वयंकी सृष्टिके उपादान कारण हो अतः तू ही ब्रह्मा है ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तेरी दृष्टिके प्रसादसे समस्त पाप हरे जाते हैं याने नष्ट हो जाते हैं अतः तू ही हरि है ।

हे चैतन्य स्वभाव ! तू ही सुख, दुःख, राग, द्वेष, अज्ञान, सुज्ञान आदि सृष्टियोंमें स्वतन्त्र समर्थ है अतः तू ही ईश्वर है ।

८ मई १९५७

हे निज आमत्न् ! समय गुजर रहा है बता तुझे अब क्या करना है । लोकमें आडम्बर हो जाए इससे कुछ सिद्धि नहीं । लोक तुझे बड़ा जाने इससे कुछ सिद्धि नहीं । लोकमें प्रसिद्धि हो इससे कुछ सिद्धि नहीं । तू तो अकेला है । केवल निजके प्रदेश गुण पर्याय रूप हो । यहां तुझे पहचानता ही कौन है और पहिचान भी सकता कौन है सर्व विकल्पोंको छोड़ निर्विकल्प स्थितिके आनन्दसे तृप्त हो जाओ ।

तेरा यहां जगतमें कुछ नहीं है । किसी भी पुरुष पर यह विश्वास न कर कि यह मित्र है। अन्य वह यदि स्वार्थी है तो जब तक तेरे निमित्तसे उसके अभिमत स्वार्थकी सिद्धि होती रहेगी तब तक वह तो मित्र है, स्वार्थ सिद्धि न होने पर निःसंकोच वह तेरे से विरुद्ध हो जावेगा । अन्य वह यदि कल्याणार्थी है तो जब तक तेरा चरित्र निर्मल रहेगा और तेरे ज्ञान, उपदेश आदिके निमित्तसे उसके सत्पथकी सिद्धि होती रहेगी तब तक वह तेरा अनुरागीहै उसके इष्ट प्रयोजन की सिद्धि न होने पर या तेरे चारित्रमें हानि होने पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
निःसंकोच वह तेरेसे विरुद्ध या उपेक्षित हो जावेगा।

तू अपनेको देख, अपनेको संभाल, अपनेमें बस। इस विधीसे तेरा कल्याण अवश्य होगा।

कहना सरल है किन्तु ऐसा जीवन बनाना कठिन है इस उक्तिके विरुद्ध चल याने अपने जीवनको सत्य पुरुषार्थसे सफल कर।

९ मई १९५७

जीवनको आनन्दमय बनानेके मुख्य उपाय।

(१) ब्रह्मचर्यको अबाधित बनाओ।

(२) अपने चैतन्य स्वभावकी ओर अधिकसे अधिक उन्मुख होओ।

(३) पर पदार्थसे सदा उपेक्षित रहो।

जीवन क्या है ? जीवन One, yes, I am only one इस प्रतीतिमें बन जाता है जीवन।

सत्य वह है जो सत्‌में हो, सत्‌में वह है जो तबसे हो जबसे यह सत् है। सत्य है चैतन्य स्वभाव। इसमें तू रत हो, इसमें तू तृप्त हो, इसमें तू संतुष्ट हो।

आत्मन्! कहांसे आये ? पता नहीं। आत्मन्! कहां जाओगे ? पता नहीं। आत्मन् कहां पर हो ? यह भी पता ना हो तो लुटिया डूब गई। वर्तमान का तो पता कर लो। इसका पता तो अति सरल है। जो गुजर रहा है तुम पर उसका भी पता न पाड़ोगे फिर कैसे मुक्तिका मार्ग तुम्हें मिलेगा।

तुम हो अभी राग द्वेष विकल्पोंमें। इनसे पृथक् चैतन्य मात्रको देखो तो तुम हो तब निज निर्विकल्प स्वभावमें।

कहां रहना है ? कहां तुम शान्तिका अनुभव करोगे। इसका ठीक निर्णय कर लो यही तुम्हारे आनन्दकी जड़ बन जावेगी।

१० मई १९५७

आत्मन्! अपने गुणोंकी दृष्टिसे अपनेमें परम संतोषको पाओ।

प्रत्येक पदार्थ अपने अपने आपमें ही परिणमता है अन्यके प्रदेशमें नहीं अन्यके गुणोंमें नहीं और अन्यकी परिणति से नहीं।

तुम्हारा जीवन स्वयं अपने आप है। अमुक पदार्थ न मिलो तो तुम्हारा
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवत्व न होगा ऐसा नहीं है । अमुक योंन परिणमें तो तुम्हारा जीवत्व न होगा ऐसा नहीं है । जीवत्व भाव पारिणामिक भाव है, वह है ही । उसका कार्य परिणमन है वह होगा ही । पर संसर्गके परिणाम स्वरूप परिणमे तो विभाव परिणमन होगा । पर संसर्गके निमित्त बिना परिणमे तो स्वभाव परिणमन होगा । परिणमना धर्म है वह परिणमता रहेगा ।

तेरे जीवत्व गुणको और उसके परिणमनको पराधीनता नहीं है ।

हे आत्मन् ! तू अपनी स्वतन्त्रतासे ही तो पराधीन बनता और अपनी स्वतन्त्रतासे ही स्वाधीन बनता ।

तू ही क्या सर्व द्रव्य सर्वत्र सर्वदा स्वतन्त्र हैं ।

नित्य, निरञ्जन, निरावरण, निस्तुष, नियत, निष्कल, निर्द्वन्द्व, निरामय निर्भय, निर्बन्ध, निर्मल, निष्काम, नीराग, निर्वैर, निर्दोष, निर्विशेष चैतन्य महाप्रभो ! जयवन्त होओ ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ।

११ मई १९५७

आज चित्त उदास है यह उदासी किसी कल्याणमय तत्वकी प्रतीक्षा कर रही है । कल्याण कब हो यह तो तुम्हारी करतूत पर निर्भर है ।

जब तक किसी जड़की ओर चित्त है शान्ति असम्भव है । शान्तिके अर्थ अनेक यत्न किये अब एक यह यत्न कर किसीको मत सोच, किसीसे मत बोल, कुछ भी चेष्टा न कर । सोचे बिना न रहा जावे तो पदार्थोंका स्वरूप सोच । बोले बिना न रहा जाय तो नियत समय पर धर्म तत्त्वसे सम्बन्धित ही कभी कभी बोल । कुछ चेष्टा किये बिना न रहा जाय तो स्वास्थ्यसे सम्बन्धित और ज्ञानोपायसे सम्बन्धित कुछ चेष्टा कर ।

किसीको शत्रु मत समझ । किसीका बुरा मत विचार । किसीसे परिचय मत बढ़ा । किसीको कुछ कर देनेका विश्वास मत दे ।

संभव है उक्त संयमोंमें आने पर कुछ लोग बुरा विचारें, तुम पर उपसर्ग करें । किन्तु सम्यक् श्रद्धाके बल पर उन सब अनर्थोंका पार कर परम विश्राम पा ।

हे कल्याण मूर्ते ! कल्याण भाग अब ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तेरा स्वस्थ सरल और स्वाधीन है। एक अपने स्वभावकी ओर रह। फिर क्या है, तुझे कोई विचलित नहीं कर सकता।

१२ मई १९५७

आजसे अहोरात्र कार्यक्रम प्राय: निम्न प्रकार रहेगा ता०

प्रातः	४	से	४।	आत्म कीर्तन
,,	४।	से	५।	सामायिक
,,	५।	से	५॥।	देव दर्शन, भक्ति, संस्तवन
,,	५॥।	से	६॥	पर्यटन, शौच निवृत्ति
,,	६॥	से	७	भजन या विद्वानोंका प्रवचन
,,	७	से	७॥।	प्रवचन
,,	७॥।	से	८	भजनादि
,,	८	से	९	अध्यात्म पाठ
,,	९	से	१०	चर्या
,,	१०	से	१०॥	विश्राम
,,	१०॥	से	११॥	अध्यात्म स्वाध्याय
,,	११॥	से	१२॥	सामायिक
,,	१२॥	से	१	पत्र लेखन
,,	१	से	२	इंगलिश लेखन
,,	२	से	२॥	संस्कृत लेखन
,,	२॥	से	३	विश्राम
,,	३	से	४	करणानुयोग स्वाध्याय
,,	४	से	४॥	पाठन
,,	४॥	से	५॥	शङ्का समाधान
,,	५॥	से	६॥	पर्यटन, सेवा
,,	६॥	से	७॥	सामायिक
,,	७॥	से	८	विश्राम
,,	८।	से	९॥	भजनादि
,,	९॥	से	४	शयन विश्राम ध्यान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

१३ मई १९५७

आत्मा में किसी भी पर का विकल्प होना एक उपद्रव है, इतना ही दुःख है, इतनी ही बाधा है, इतना ही संसार है।

जिस पर के सम्बन्धमें विचार किया जाता है उस पर तो विचारका कुछ असर होता नहीं किन्तु यह विचारक स्वयं उस असरमें बह जाता है।

परकी उन्मुखता महान संकट है। प्रभु निज नाथ इस संकटसे बचाओ इस संकटसे बचो।

लोकमें जो सामग्री दिखती है उसको देखकर मलिन आत्मा उसकी ओर खिंचता है यह उसकी एक बड़ी विपदा है।

भोजनकी डाह सतावे तो उपवास कर लो। काम की दाह सतावे तो ज्ञानार्जनमें लीनतासे जुट जाओ। नामकी चाह सतावे तो निर्नाम निज स्वभावका ध्यान करो।

भक्तिका प्रवाह आने दो।
मुक्तिकी राह जाने दो।
ज्ञानकी थाह पाने दो।
निज अवगाह पाने दो।

संसारके परिकरमें रहकर संसारसे उपेक्षित रहना बड़े आत्मबलका काम है।

विषयोंकी संपत्तिकी ओर प्रवृत्ति है तो इसी का नाम तो वह संसार है जिसमें रुलते अब तक चले आये हैं। यदि ऐसा ही आगे रहनेका प्रोग्राम है तो जो मर्जी आये करो।

संसार असार है, खूब दृष्टि पसार कर देख ले, आनन्दको तुषार, ज्ञानको अभिसार यह संसार है।

१४ मई १९५७

आत्माका सर्वोच्च धन सत्य श्रद्धान और चारित्र है। यदि हजारों लाखों रुपयों की प्राप्ति हो और उस प्रसंगमें चारित्रका श्रद्धान बिगड़ जाये तो सब खो दिया समझो। तथा यदि श्रद्धा चारित्रसे चलित नहीं हुए और धनको, नामकी गरीबी रही आई तो भी सर्व पाया हुआ समझो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माके संक्लेशका और शान्त होनेका सम्बन्ध उपयोगसे है बाह्य-वस्तुसे नहीं। तब जो व्यक्ति चारित्र नष्ट कर लेता है उसकी दृष्टिमें तो वह पाप ज्ञात बना रहता है ऐसी स्थितिमें वह उन्नति कैसे कर सकता है, बुजदिली कैसे छोड़ सकता है। जो व्यक्ति श्रद्धा या चारित्रसे चलित नहीं होता उसके अनेकों संकट आवें फिर भी आत्मबल होनेसे अपनी दृष्टिमें निष्पाप होनेसे उसकी व्याकुलता कहांसे हो सकती है, वह कायरता कहांसे ला सकता है।

सर्व कुछ जाता है अन्य तो सब जाने दो किन्तु अपना चारित्र मत खोओ नियमसे विजय होगी।

तन छुटा फिर यहांका धन अथवा जिसे सुख सामग्री मानी थी वह तुम्हारे किस काम आयगा? काम तो यहींके यहीं नहीं आता। खैर यह दूर की भी बात कह दी।

१५ मई १९५७

चारित्रबल सर्वोच्चबल है। जिसने आत्माको जाना और उस ही ओर उपयोग है वह धनके वियोगसे तो क्या शरीरके वियोगको भी कुछ हानिकर नहीं समझता।

सुदृष्टि ने जिसे जाना वह उसके पास ही है, इसमें रह रहे हो तो वहां क्या और अन्य शरीरमें जावे तो वहां क्या अथवा शरीरही कोई न रहे, न मिलेतो वहां क्या, सर्वत्र वह वैभववानके समीप ही है, फिर उसे भय किसका, शङ्का किसकी, प्रतीक्षा किसकी, आशा किसकी। वह तो अपने में अपने आप सदा प्रसन्न है।

निजका ज्ञान नहीं है तो जिसका ज्ञान है उसी ओर उसका उपयोग रहेगा। यही कारण है कि अनेकोंको क्या प्रायः सबको यह बोध होते हुए भी कि यह शरीर एक दिन लोगोंके द्वारा जला दिया जायगा या अन्य प्रकार बरबाद हो ही जायगा, शरीरसे ममत्व नहीं हटा पाते।

शरीरसे ममत्व तो तब हटे जब इससे बढ़कर अन्य कुछ समझमें आवे। शरीरसे बढ़कर अन्य कुछ और क्या हो सकता है? वह हो सकता है जिसकी आरम्भिक अभिनिविष्ट हो। वह है स्वयं, स्वयं तो है किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

परमशुद्ध निश्चयनयसे ज्ञात जैसा स्वयं है तैसा स्वयम्। इस स्वयंके दृष्ट हो जाने पर मोह मूलसे मिटता है।

http://www.jainkosh.org

१६ मई १९५७

अनेकान्त वस्तुका विशेषण है। तब प्रश्न हो कि वस्तु कैसी है तब उत्तर आता है वस्तु अनेकान्त है।

अनेकान्त शब्द में ३ शब्द हैं-न एक अन्त। न एक इन दो शब्दों में तो हो गया नञ् समास जिससे बना अनेक, और, अनेक व अन्त इन दो शब्दोंमें हो गया बहुब्रीहि समास।

इस अनेकान्त शब्दके अर्थ दो हैं—[१] जिसमें एक नहीं किन्तु अनेक धर्म पाये जावें उसे अनेकान्त कहते हैं। [२] जिसमें एक भी धर्म दृष्ट न हो उसे अनेकान्त कहते हैं।

भेद दृष्टिसे वस्तुके जानने पर पहिले अर्थ वाली वस्तु ज्ञात होती है। और, अभेद दृष्टिसे वस्तुके जानने पर दूसरे अर्थ वाली वस्तु ज्ञात होती है।

जब नय २ हैं तो दो नयोंसे ज्ञात वस्तुत्त्व २ प्रकारसे ज्ञात होता है।

मोह दूर करना ही एक मात्र ध्येय हो। इस ध्येयकी पूर्ति उस उपयोग के करनेमें है जिस उपयोगके करनेसे मोह ठहर ही न सकता हो।

वह उपाय याने मोह दूर कर देने वाले उपयोगके बनानेका उपाय वस्तुकी स्वतन्त्रताकी दृष्टि हो। वस्तु स्वातन्त्र्यकी दृष्टि आजाय और मोह न गले यह नहीं हो सकता। सम्बन्धकी दृष्टि प्रतीति बनी रहे और मोह गल जावे यह नहीं हो सकता।

१७ मई १९५७

आज देहरादूनमें प्रवचन सभामें जो कुछ कहनेमें आया वह कुछ संक्षिप्त और लाभकर प्रतीत होनेसे संक्षेप में लिख रहा हूं।

प्रश्न—दुःख कैसे मिटेगा?

उत्तर—पहिले तो दुःख क्या है इसे जानो फिर पूछो दुःख कैसे मिटेगा। सर्व दुःखोंके समस्त रूपकोंको परख लो सर्वत्र यही मिलेगा कि अमुक मोह है, यही दुःख है। मोहको छोड़कर अन्य कुछ दुःख नहीं है अतः यह पूछो कि मोह कैसे मिटेगा।

प्रश्न—मोह कैसे मिटेगा?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्तर— जो अपना नहीं है उसे अपना मानना इसको मोह कहते हैं। इसका उपलक्षित अर्थ यह हुआ कि जैसा वस्तुका स्वरूप है उससे उल्टा मानना मोह है। यह मोह तो यथार्थ माननसे ही मिटेगा।

प्रश्न— वस्तुका यथार्थ स्वरूप क्या है ?

उत्तर—इसका सुपरिचय पानेके लिये पहिले यह जानो कि सर्व पदार्थ कितने हैं।

प्रश्न—सर्व पदार्थ कितने हैं ?

उत्तर— एक एक करके जितने हों उतने पदार्थ हैं।

प्रश्न—एक कितना होता है ?

उत्तर—जिसका दूसरा अंश (टुकड़ा) न हो वह एक उतना होता है। जैसे एक मैं आत्मा, एक आप, एक ये, इस प्रकार अनंत आत्मा प्रत्येक एक एक हैं।

प्रश्न—दिखने वाली चौकी पुस्तक आदि तो एक एक होंगे ?

उत्तर—चौकी, पुस्तक, शरीर आदिके अंश हो जाते हैं अतः ये एक नहीं है। इनमें एक एक परमाणु (जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके) वह एक एक द्रव्य है। इस तरह अनन्तानन्त परमाणु प्रत्येक एक एक द्रव्य है।

१८ मई १९५७

प्रश्न—ये ऐसे एक एक क्यों हैं ?

उत्तर— प्रत्येक द्रव्य अपने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावसे है परके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे न थे, न हैं, न होंगे, अतः प्रत्येक एक एक अलग अलग हैं, स्वतन्त्र हैं। जैसे हम जैसा बोलते, चलते हैं इस चेष्टासे आपकी चेष्टा तो नहीं होती इससे सिद्ध है कि हम आप एक एक अलग अलग स्वतन्त्र हैं। इसी तरह सब पदार्थोंकी व्यवस्था है। इससे अपने आप पर यह घटाना- कि मैं मैं हूं अन्य कुछ मैं नहीं हूं। मैं अपने क्षेत्र में, प्रदेश में हूं अन्य द्रव्य के क्षेत्रमें, प्रदेशमें नहीं हूं। मैं अपने ही परिणमनसे परिणमता हूं अन्य द्रव्य के परिणमनसे मैं नहीं परिणमता। मैं अपने ही स्वभावमें, गुणोंमें तन्मय हूं अन्य द्रव्य के गुणोंमें नहीं हूं। ऐसी ही व्यवस्था समस्त द्रव्योंकी है।

१ धर्म द्रव्य, १ अधर्म द्रव्य, १ आकाश द्रव्य, असंख्यात काल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य है उनकी भी प्रत्येककी व्यवस्था ऐसी ही है।

वस्तुकी ऐसी स्वतन्त्रता प्रतीतिमें आ जाय फिर सम्बन्ध दृष्टि रह ही नहीं सकती। और जब सम्बन्ध दृष्टि न रही फिर मोह हो ही नहीं सकता।

जैसे—जिसे रस्सीमें सांपका भ्रम हो गया तो उस काल उसे भय और व्याकुलता हो गई। वही यदि हिम्मत करके उसे जाने कि कैसा है यह, तब समझमें आ जावे कि यह रस्सी ही है तो क्या फिर भी भय ठहर सकता है ? नहीं। इसी तरह जब पदार्थका यथार्थ ज्ञान हो गया कि प्रत्येक वस्तु इस प्रकार बिलकुल स्वतन्त्र है तो क्या फिर भी मोह ठहर सकता है ? कभी नहीं। इस सम्यग्ज्ञानमय उपयोगसे दुःख बिलकुल मिट जावेगा।

१६ मई १६५८

भोजन किया वह तो ६ घंटे बाद बुरी शक्ल पाकर निकल जायगा, आत्मामें क्या लाभ रह गया कुछ नहीं। प्रत्युत भोजनका विकल्प करके जो कषाय बनाई थी उतनी हानि हुई समझना।

भोजन न किये पर आत्माको अपने आपके गुणोंकी दृष्टि मिले तो वहां अपनी क्या हानि हुई। प्रत्युत आत्मबल आत्मतत्त्व पानेका महान् लाभ हुआ।

भोजन मिलनेके लाभको लाभ न समझो।

अच्छे भोजनके लाभसे बड़प्पन न समझो।

भोजन तो केवल संयमके साधनभूत इस शरीरके यथोचित बने रहनेको करना पड़ता है। भोजनसे मेरा कोई नाता नहीं।

भोजन न किये हुए जितना चल सके मेरा खुदका अपना काम, वह मेरे लिये उतनी ही उत्तम बात है।

आजके उपवासमें मुझे बहुत कुछ लाभ हुआ। यद्यपि आज कोई पर्वका दिन न था तथापि ऐसी इच्छा हो ही गई आज सुबह कि आज तो उपवास ही करना है।

उपवासका बाहरी अर्थ भोजनका न करना है सो मैं इस अर्थको धन्यवाद देता हूं। इस वातावरणमें मैंने अपने निज भावको देखा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२० मई १९५७

आजसे १५ जुलाई तकके लिये निम्नलिखित अहोरात्र चर्चा प्रायः होगी—

प्रातः	४ बजे	से	४। बजे	तक	आत्म कीर्तन
,,	४।	से	४॥	तक	आध्यात्मिक मनन
,,	४॥	से	५॥	तक	सामायिक
,,	५॥	से	६॥।	तक	देवदर्शन करके पर्यटनको जाना, शौचनिवृत्ति
,,	६॥।	से	७।	तक	भजन श्रवण, विद्वानोंके प्रवचन श्रवण
,,	७।	से	८	तक	प्रवचन
,,	८	से	८॥	तक	सामाजिक वार्तालाप
,,	८॥	से	९।	तक	करणानुयोग स्वाध्याय
,,	९।	से	१०॥।	तक	शुद्धि, संभावित आहार, वसतिका पहुंचना, विश्राम
,,	१०॥।	से	११॥	तक	आध्यात्मिक स्वाध्याय
,,	११॥	से	१२॥	तक	सामायिक
,,	१२॥	से	१	तक	पत्र लेखन
,,	१	से	२	तक	संस्कृत लेखन
,,	२	से	३	तक	इङ्गलिश लेखन
,,	३	से	३॥।	तक	हिन्दी लेखन
,,	३॥।	से	४।	तक	पाठन
,,	४।	से	५	तक	शङ्का समाधान
,,	५	से	५॥	तक	चरित्र चारित्र स्वाध्याय
,,	५॥	से	६॥	तक	सेवा, पर्यटन, पत्रावलोकन
,,	६॥	से	७॥	तक	सामायिक
,,	७॥	से	८।	तक	आध्यात्मिक पाठ
,,	८।	से	८॥।	तक	भजन श्रवण, विद्वानोंके प्रवचनश्रवण
,,	८॥।	से	९॥	तक	प्रवचन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सायं ६।। से ६।।। तक वार्ता
,, ६।।। से ४ तक विश्राम, चिन्तवन, शयन

२१ मई १९५७

उपवासमें वह ताकत है कि आत्माके बहते हुए परिणामोंको ठीक कर देता है। मानवका समय समय पर उपवास करते रहना कर्तव्य होना चाहिए। आहार लाभ न भौतिक लाभ है न आत्म लाभ है। परिणामोंकी उज्ज्वलता आत्म लाभ है। परिणामोंकी उज्ज्वलताके अर्थ जो भी कर सको कर डालो।

ब्रह्मचर्य महान् व्रत है। आत्माकी शक्तिका नाम वीर्य है और शरीर की शक्ति रूप मूल धातुका नाम भी वीर्य है। आत्मवीर्यको बढ़ावो। देह वीर्यके नष्ट होने पर आत्मवीर्य भी खिग जाता है। अतः लौकिक और अलौकि ब्रह्मचर्यके संरक्षण, पालनमें, अपना सब कुछ न्योछावर कर दो।

जगत् असार है और है इन्द्रजाल जैसा। सब कुछ यह दृश्य पर्याय है। यह अपना नहीं, केवल अपनेकी अपने आपमें बनाई जा सकती है। वस्तुस्वरूपसे विपरीत बुद्धि विनाशके लिये है।

आत्माका वह अनेकान्त तत्त्व, अद्वैत तत्त्व जहां कि गुण पर्याय आदि का कोई भेद ही दृष्ट नहीं होता, अनुभवमें आने पर आत्मा कृतकृत्य हो जाता है।

आत्माका वह वैभव जो अन्तः सदा प्रकाशमान होकर भी मोहमें समझ में नहीं आता है, विदित होने पर आत्मा अपनेको सर्व सम्पन्न अनुभव करने लगता है।

"मान न मान मैं तेरा महिमान" यह जबर्दस्ती चल नहीं सकती। जगतके पदार्थ तुमसे अत्यन्त भिन्न हैं बिना तुम उनके महिमान बनना चाहते हो। अरे यह तो होगा नहीं कभी, हां, होगा इस कुमतिका फलोपभोग।

२२ मई १९५७

निर्मल श्रद्धा और चारित्र बिना जीवन जीवनहीं क्या है?

यह जीव स्वयं सुखी है, कृतकृत्य है परन्तु केवल विकल्पोंसे जमाने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मरका भार समझ रक्खा है। ऐसी भी अवस्थामें यदि भार भी है तो मात्र विकल्पका। मेरे पर केवल विकल्पका ही भार है अन्य किसी पदार्थका नहीं इस प्रतीतिके होने पर विकल्पका भी भार दूर किया जा सकता है। किन्तु जिस समझमें अन्य पदार्थका भार बस रहा है वहां कुछ भी भार हटाया नहीं जा सकता।

आत्मन्! तुम्हें अब क्या करना है! शीघ्र हितपन्थ सोचो। समय गुजर रहा है, फिर अवसर न मिलेगा प्रायः मिला भी अवसर तब भी करना तो यही है जो आज जाना है।

किसी भी अन्यकी परिणतिसें मेरा कुछ नहीं बनता है। मैं ही अपने दुःखमें दोषी हूं। मेरे दुःखका दोष किसी अन्य पर आ ही नहीं सकता चाहे वह किसी भी प्रकारसें दुःख हुआ हो।

दुःख निजके आनन्द गुणकी परिणति है। जब दुःख होता है तब वही आनन्दशक्ति तो इस आकुलताके रूपमें विकसित हुई समझो। इस कामको दूसरा कोई कैसें कर देगा।

इन सर्व क्लेशोंको प्यारे तू ही स्वयं मेट सकता है। एक स्वभावदृष्टि कर और सहज आनन्दमय बन।

२३ मई १६५७

प्राकृतिक सुविधाका उपयोग करो।

देखना और बोलना ये दो कार्य कभी रागके प्रबल कारण बन जाते हैं। परन्तु आत्मन्! हैरान मत होओ। क्या तू समझ नहीं रहा है कि आंखोंको बन्द करनेके लिये दो दो पलक लगे हैं और बोलको बन्द करनेके लिये २ ओंठ लगे हैं।

देखो तो राम! अन्य इन्द्रियोंमें ऐसे ढक्कन नहीं मिलते हैं। कारण कि उन इन्द्रियोंकी परेशानी एक तो अधिक नहीं है और यदि अधिक भी होती तो आंख और मुख इन दोनोंकी करतूतकी सहायतासे वह होती है।

मुख बन्द कर, आंख बन्द कर और सुमर निज आत्मदेवको।

परकी ओर उपयोग देना सो संसारकी वृद्धि करना है। और अपनी ओर उपयोग होना ही संसारका छेद होना है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निजकी सर्व पर्यायोंका स्रोत, सर्व परिणमनोंका मूल निज चैतन्य ही ब्रह्मा है इस ब्रह्मदेवकी शरणमें पहुंचो !

निजकी सर्व पर्यायोंका धारक व पालक निज चैतन्य ही विष्णु है, इस विष्णुदेवकी शरणमें पहूंचो।

निजकी पर्यायोंका संहारक, परिवर्तक निज चैतन्य ही शङ्कर है इस शङ्करदेवकी शरणमें पहुंचो।

सर्वत्र यह निज चैतन्य स्वतःसिद्ध है इस सिद्धदेवकी शरणमें पहुंचो।

राग द्वेष मोह आदि अरियोंका विनाशक यही निज चैतन्य है इस अरिहंतदेवकी शरणमें पहुंचो।

२४ मई १९५७

कहींसे कुछ नहीं मिलना है। मात्र विकल्पकी हैरानी ही है परके विषयके विकल्प करनेसे। सूत न कपास कोलीसे लठ्ठमलठ्ठा।

जब किसी भी परविषयक विकल्प न हो और न हो विकल्पात्मक रूपसे स्वका भी ज्ञान, वहां क्या मिलता है इसकी तो कोई उपमा ही नहीं है।

आत्मन्! सत्य व्यवहार करो यह व्यवहार आत्मबलका साधक है।

जब व्यवहारमें उपयोग मलिन बनाया तो उलझा हुआ यह उपयोग आत्मबलके लिये प्रयोजक कैसे हो सकता है?

आत्मबलके लिये, साम्यरस स्वादके लिये आत्माको अत्यन्त निःशल्य होना चाहिये। मायापूर्ण व्यवहार करने वाला अभिप्राय एक बड़ी शल्य है। इस शल्यकी आकुलतामें शान्ति समताका आत्मबल प्रकट हो यह कभी संभव नहीं हो सकता।

जो लोग माया करते हैं वे किसी भौतिक लाभके लिये ही तो करते हैं। बता किस भौतिकसे तुझे लाभ होना है या कौनसा भौतिक तेरा साथी रहेगा।

विकल्प एक महान् शत्रु है। विकल्पका विनाश किसी प्रकार हो जावे वही उद्यमकरना बुद्धिमानी है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२५ मई १९५८

शरीर मलका पिण्ड है । मोहियोंको यह मलपिण्ड ही सुहावना लगता । इस शरीरके सब अवयवोंमें भी मुख याने सूरत उन्हें अधिक सुहावना लगता सो अधिक प्रकारके मल भी इस मुखमें ही मिलेंगे । कर्णमें कर्णमल, नेत्रमें नेत्रमल, नाकमें नाकमल, मुखमें थूकखलार और पसीना तो अल्प आयासमें आता रहता है । इसके अतिरिक्त हाड़ मास मज्जा रुधिर आदि मल जसे सर्वत्र हैं शरीरमें वैसे मुखमें भी हैं ।

जिनकी बुद्धि आत्माकी ओर अभिमुख नहीं है, उन्हें कैसे शरीरसे उपेक्षा होगी ।

जिसे जो अपना मानता है उसकी ओर वह झुकता ही है ।

जिसने शरीरको, वर्तमान परिणमनको जाना माना, कैसे वह शरीरसे उपेक्षित हो सकता है ?

जिसने निज ध्रुव आत्माको ही आत्मा माना है, कैसे वह आत्म-प्रतीतिसे विचलित होकर परमें आसक्त हो सकता है ।

आत्मन् ! आत्माका आत्मा ही है और वही स्वयंका शरण है ।

प्रभो ! तुम कितनी ही पर्यायोंसे परिणमते रहो किन्तु दृष्टि पर्यायकी न बनाने दो फिर कुछ बुरा नहीं है, हो भी बुरा तो वह सब टल जावेगा ।

२६ मई १९५७

रे मन ! खुश रहो । रे आत्मन् प्रसन्न रहो । रे इन्द्रियो ! आकुलित मत होओ । रे यश ! जहां चाहे लीला करो ।

उक्त सब काम एक विधिमें मिल जाते हैं । वह विधान है स्वभावदृष्टि जिसके प्रतापसे पाप रुक जाते हैं और उक्त सब काम होने लगते हैं ।

परकी आशा छोड़ो, विषयसे मुख मोड़ो, जड़से ममता तोड़ो, भेद विज्ञान मोड़ो, स्वभावदृष्टि जोड़ो ।

हे निज नाथ ! जान तो गया मैं । अब चाहे छुप छुप जावो, कहीं जावो, कुछ करो । परन्तु, जान गया मैं सब कुछ तेरा राज । अब तुम्हारे छिपनेकी चाल न चलेगी । छुपते रहो, कितने दिन अब छुपते हो व हो लो बुरे और हमें करलो बुरे कितने दिन और करते हो । आखिर, हमारा तुम्हारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

मामला रहेगा अन्तमें एक ही ।

हे कृपालु तुम्हारा विरद हो ऐसा है कि उत्थान करे, तभी तो तुम्हारा नाम ब्रह्म है । फिर क्या ब्रह्मत्वका ख्याल न करोगे ?

हे धर्मिन्! तुम स्वयं धर्ममय हो जो परिणति अपने इस स्रोतको देखले वह धन्य है ।

हे सहज! तुम सहज हो फिर अनादिकालसे अब तक क्यों असहजसे बने चले आये । खैर जब दर्शन दिये तभी भला ।

२७ मई १९५७

सत्यतासे रहना आत्मबलका बीज है और आत्मबल सत्यताका बीज है ।

आत्मबली शाश्वत आनन्दका पात्र है । विषयोन्मुख कायर क्लेशके ही पात्र हैं ।

मनुष्य भवका सदुपयोग कर लो । नहीं तो, देखा ना, कितने प्रकारके संसारमें जीव हैं इन जैसे ही दुःखमें समय गुजारना होगा ।

किसी भी पर वस्तुका ध्यान रखना, करना अपना ही नुकसान है । इस नुकसानमें रह कर अनादिकालसे तो दुःख भोगते आये और अब भी यही करोगे तो यही फल है । प्रकृतिका नियम तो सब पर एकसा रहेगा । कोई तुम अनोखे तो हो ही नहीं । जो जैसा करेगा तैसा भरेगा ।

अन्यायकी बातको हृदयमें थोड़े समयको भी स्थान न दो । अन्यायका विचार अन्यायका कारण है । सच बात तो यह है कि परकी ओरका उपयोग परके एकत्वकी बुद्धि, परकी अभिलाषा बहुत भारी विपत्तियां हैं ।

इन विपत्तियोंसे बचना हो तो सदा अपने समीप रहो । ऐसे विचार करो जिससे परकी ओर बुद्धि न फंसे ।

जगतमें यही तो सब करते चले आये हैं, अपूर्व कार्य क्या किया । विषय शहद लपेटी तलवार है । इन विषयों से तत्त्व कुछ नहीं निकलता बल्कि अन्तमें गुण विकासकी ओरसे रीते ही रह जाना है । Version 1

सर्व पुरुषार्थ करके स्वयंको स्वयंमें प्रयुक्त करो ।

http://sahjanandvarnishastra.org/

२८ मई १९५७

आज श्री ला० जिनेश्वरदास जी सपत्नीक सहारनपुरसे देहरादून आये। दोनों मुमुक्षु एवं शान्त हैं। धर्मके प्रति इनकी गाढ श्रद्धा है।

जहां धर्म है, भेद विज्ञान है वहां शांति है। इन दोनों का आध्यात्मिक अध्ययन भी अच्छा है। जिनेश्वरदास जी ने ही स्वयं अपनी पत्नीको पढ़ाकर योग्य बनाया है। गृहस्थका कैसा आदर्श होना चाहिये इसके ये उदाहरण हैं।

जिस रूपसे भगवान जानते हैं उस रूपसे जाननहार रहो जितनी भी क्षयोपशम है उसके अनुकूल तो इससे तुम संसार सागरको पार कर जावोगे।

परमशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय और अशुद्धनिश्चयनय इन तीन का जो विषय है वह केवल ज्ञानी जानते हैं।

व्यवहारनयके विषयभूत संयोगको या सांयोगिक प्रभावकी बात लगाने को भगवान नहीं जाना करते हैं।

इसीसे तो यह बता दिया जाता है कि व्यवहार उसे कहते हैं जो वस्तु स्वरूपको तो न देखे किन्तु प्रयोजनवश अन्य सम्बन्ध या उपचारको देखे।

भाइयो ! व्यवहारनयसे विविध वार्तावोंका ज्ञान कर पश्चात् केवल निश्चयनयसे एकत्वको देखे तब तक जब तक कि विकल्पमात्र स्वयं नष्ट न हो जावे।

२९ मई १९५७

रे भैया ! कुमतिकी चाल छोड़ी नहीं जाती तुमसे। संसारमें साथी अन्य कोई नहीं है जिसका ध्यान करके तुम मलिन बनते जा रहे हो।

तुम्हारा शरण, तुम्हारा रक्षक, तुम्हारा मित्र, तुम्हारा गुरु, तुम्हारा पिता, तुम्हारा हितैषी एक मात्र स्वभाव प्रत्यय है।

स्वभावावलोकनके अतिरिक्त सर्व कुछ तेरा पतन है। अब ऐसा चित्त बनावो कि कुछ भी विकल्प तेरेमें अड्डा न जमावे।

एक अन्तमुहूर्तके शुद्ध उपयोगसे कोटि कोटि जन्मके पाप कट जाते हैं। सर्व विकल्प जालोंको छोड़कर एक मात्र निजोपयोगी रहकर आराममें हर जावो।

संसारमें रहना है तब तो इस बातकी उपेक्षा किये जावो क्योंकि इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उद्देश्यकी सिद्धि इस जिनोपदेशके न माननेसे ही होगी और, यदि सर्व विकल्प क्लेशोंसे मुक्त होनेकी इच्छा है तो यह माने बिना तुम्हारी बात ही न बनेगी, चाहे आज मानलो या कभी।

३० मई १९५७

क्या लिखें ?

क्या लिखूं ? कुछ न लिखो। क्यों ? इसलिये कि लिखना तुम्हारा कार्य नहीं है, यह कार्य विभावमें आये बिना नहीं होता। तो फिर लखिनी हाथमें क्यों लिये हूं ? यों कि तुमसें विभावसे हटा जाता नहीं। विभावसे हटा क्यों नहीं जाता ? इसलिये कि स्वभावकी ओर तेरा उपयोग थम रहा। तो ऐसी दशामें अब क्या करूं ? अच्छा, 'लख लो जो तुमसे बने। अब लिखनेको क्यों कहते हो ? इसलिये कि जब शुद्ध उपयोग नहीं जमता तो शुद्ध उपयोगके लिये किये जाने वाले उद्यमको न करोगे तो विषय कषायमें पड़ जावोगे।

लिखनेको क्या रखा सिवाय रोनेके। इसका समय रोने रोनेमें ही गया। जब अज्ञानान्धकार था तब पथ भ्रष्ट होकर रोया ही रोया। जब अन्तर्विवेक हुआ तब अपनी गलतियों पर रोता। अरे रोते ही रोते क्यों हो ? कुछ भी स्थिति हो, स्वभावको भी तो तेखो और स्वभावदृष्टि द्वारा प्रसन्न रहो।

अरे यह प्रसन्नता कब पाऊं। कब पाऊं ? काके उद्यम देख, जब न मिले तो रोकर आना।

हे निज ध्रुव चैतन्य महा प्रभो ? निरन्तर तो बसे रहो एक अन्तमुहूर्त फिर मैं तिरस्कार करूं तेरा तो तव न आना। तुम दिखाई तो देते हो और एक क्षण भी ठहरते हो नहीं, विराजमान होते हो नहीं इस कारण तिरस्कार हो जाता होगा इस तेरे प्रेमीके द्वारा। तेरे जाप जपने वाले इस अनुरक्त पर अब बीती हुई बात पर ध्यान देकर बदनाम मत होओ।

३१ मई १९५७

करनेको काम है शुद्धात्म भक्ति। प्रथम तो शुद्धात्मभक्ति है निजद्रव्य शुद्धात्मभक्ति। यदि इसमें न रहा जावे तो करो परमात्मभक्ति।

स्वभाव दृष्टि और भक्ति दो के अतिरिक्त अन्य कुछ ध्यानमें मत लावो। अन्यके उपयोगमें तुम्हें अन्तरङ्गमें मलीमसता ही मिलेगी। इसके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फलोंको तो अब तक चखते आये। ये फल तो कीट पशु होकर भी पा लेनेके अधिकारी थे। फिर मनुष्य होकर विशेष लाभ क्या लिया।

प्यारे! गर्वाओ मत। संकटमें तो पड़े हो और दूसरोंको भी संकटमें देख रहे हो फिर भी सावधान नहीं हुआ जाता। इस सम्बन्धमें तुम्हारी वह दशा है जैसी कि जानते हुए जंगलके बीच किसी वृक्ष पर चढ़ा हुआ मनुष्य जलते हुए जंगलको खेल मान कर हंस रहा है।

मत हंसो! यार दो दिनकी चांदनी देखकर।

मत रोओ मित्र अध्रुव अस्वभाव भावसे गुजर कर।

ॐ शाश्वतानन्दाय नमः, ॐ नमः सच्चिदानन्दाय। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ। ॐ नमः ॐ नमः ॐ नमः ॐ। ॐ नमः ॐ नमः ॐ नमः ॐ। ॐ नमः ॐ नमः ॐ नमः ॐ। ॐ नमः ॐ नमः ॐ नमः ॐ।

१ जून १९५७

ब्रह्मचर्यं परं दानम्, ब्रह्मचर्यं परं तपः, ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानम्, ब्रह्मचर्यं परं महः, ब्रह्मचर्यं परं मानम्, ब्रह्मचर्यं परं हितम्, ब्रह्मचर्यं परं स्थानम्, ब्रह्मचर्यं परं सुखम्, ब्रह्मचर्यं परं मानम्, ब्रह्मचर्यं परं बलम्, ब्रह्मचर्यं परं वित्तम्, ब्रह्मचर्यं परं फलम्, ब्रह्मचर्यं परं वीर्यं, ब्रह्मचर्यं परं धनम्, ब्रह्मचर्यं परं तेजः, ब्रह्मचर्यं परं यशः, ब्रह्मचर्यं परं सत्यम्, ब्रह्मचर्यं परं शिवम्, ब्रह्मचर्यं परं तत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परं व्रतम्, ब्रह्मचर्यं परं सत्त्वम्, ब्रह्मचर्यं परा ऋतम्, ब्रह्मचर्यं परा क्रान्तिः, ब्रह्मचर्यं परा हविः छविः, ब्रह्मचर्यं परा कीर्तिः, ब्रह्मचर्यं परं ऋतु, ब्रह्मचर्यं परा कान्तिः, ब्रह्मचर्यं परं श्रुतम्, ब्रह्मचर्यं परा भक्तिः, ब्रह्मचर्यं परं श्रुतम्, ब्रह्मचर्यं ध्यानम्, ब्रह्मचर्यं धृतम्, ब्रह्मचर्यं परं ज्योतिः, ब्रह्मचर्यं परं जपः, ब्रह्मचर्यं परं वृत्तम्, ब्रह्मचर्यं परं तपः, ब्रह्मचर्यं परं ब्रह्म, ब्रह्मचर्यं परं निधिः, ब्रह्मचर्यं परं रत्नः, ब्रह्मचर्यं परोविधिः, ब्रह्मचर्यं परं धाम, ब्रह्मचर्यं परो वृषः रतिः, ब्रह्मचर्यं परं सम्पत्, ब्रह्मचर्यं पराजतिः, ब्रह्मचर्यं परा शक्तिः, ब्रह्मचर्यं पराह्लादिः, ब्रह्मचर्यं परं शांति, ब्रह्मचर्यं परादमः, ब्रह्मचर्यं परानतिः, ब्रह्मचर्यं परः शमः, ब्रह्मचर्यं परं मन्त्रम्, ब्रह्मचर्यं परं रहः, ब्रह्मचर्यं परं व्रतम्, ब्रह्मचर्यं परं सुहृत्,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

ब्रह्मचर्यं परा सिद्धिः, ब्रह्मचर्यं परं पदम्, ब्रह्मचर्यं परो योगः, ब्रह्मचर्यं पर स्वचित्, ब्रह्मचर्यं परं शीलं, ब्रह्मचर्यं परो गुरु, ब्रह्मचर्यं परो देवः, ब्रह्मचर्यं परं शुचिः ब्रह्मचर्यं परो गुरु, परो जयः, ब्रह्मचर्यं परं क्षेमम्, परो गुणः, ब्रह्मचर्यं परं स्वास्थ्यं, परं वरं रुचिः, ब्रह्मचर्यं परं सद्म, ब्रह्मचर्यं परं दुर्गम्, ब्रह्मचर्यं परं सारम्, ब्रह्मचर्यं परं साम्यम्, ब्रह्मचर्यं परं श्रेयः, ब्रह्मचर्यं परं शौचम्, परं यज्ञम्, ऋद्धि भोगः।

२ जून १९५७

हे आत्मन् तुम्हारी रक्षा इस ही में है कि तुम अपने आपकी दृष्टि बनाये रहो। तुम्हें पता है कि इस समय तुम्हारा ज्ञान विकास नैमित्तिक हो रहा है, आज तो यह ज्ञान है कल यह साधन न रहा, असंज्ञी हो गये तब तुम्हारा क्या हाल होगा। कुछ तो अपना विचार करो, कुछ तो अपनी दया करो। पुण्यका उदय है तो इस उदयमें विष पान मत करो।

विषय और कषाय ये दो ही तो अहित हैं जिनके विषयमें मुसलिम भाई कहते हैं कि दो दैत्य दो कंधे पर बैठे रहते हैं।

स्नेह और भय ये दो ही संसारके नेता है जो जीवको खींचे हुए फिरते हैं जिनके विषयमें कुछ बन्धु कहते हैं कि दो पिशाच हर एक रूहके आगे पीछे रहते हैं।

आहार भय मैथुन और परिग्रह ये चारों संज्ञायें जीवके बन्धक हैं जिनके विषयमें उक्ति है कि चार पहरेदार जीवके चारों ओर पहरा देते रहते हैं।

जीव पर अभी महान् संकट छाया हुआ है जिसकी कुछ खबर न रख कर पुण्यके उदयमें बह कर मोही भटकता रहता है।

रे भाई पुण्यके उदयमें हर्ष मत मान अन्यथा अभी पापका उदय आते ही बुरे रोओगे।

रे भाई पापके उदयमें विषाद मत कर। यह अब नैमित्तिक है अभी नष्ट होने वाला है इसमें बह जानेका फल जरूर दुःखकी परम्परा बढ़ा देगा। संभलकर रहोगे तो ये नष्ट तो हो ही जावेगा। आगेकी परम्परा भी न बढ़ावेगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

३ जून १९५७

आज प्रात: ८ बजे हस्तिनापुरमें मुमुक्षु आश्रमका उद्घाटन हुआ और ८॥ बजे गुरुकुलके नवीन वर्षका प्रारम्भ समारोह हुआ।

लोक सब सुख चाहते हैं और इसके अर्थ उनके द्वारा दो प्रकारके आरम्भ किये देखे जाते हैं। (१)—शारीरिक उपचार भोजन आदि, (२) मानसिक उपचार। शारीरिक उपचार तो बहिरङ्गसे सम्बन्धित है और मानसिक उपचार अन्तरङ्गसे सम्बन्धित है। इस तरह अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दो प्रकारोंमें सुखका यत्न लोक करते हैं। बहिरङ्ग तो दिखाई देता है अतः उसके विषयमें अनेक बात स्पष्ट है किन्तु अन्तरङ्ग अदृश्य है अत: उसमें कुछ विवाद रहता। मूल बात यह है कि अन्त: एक तत्त्व ऐसा है जो कि चेतन है अतश्च शरीरसे भिन्न है। शरीर और चेतनसे इन दोके उपचार लोक करते हैं। सो सुखके लिये शरीरका उपचार तो सम्यक् उपाय है नहीं। अन्तरङ्गका भी उपचार मनस्तुष्टि मात्र रूप रह जाता है।

बहिरङ्ग उपचार तो अन्तरङ्ग उपाय करनेकी योग्यतामें आई हुई बाह्य बाधाको दूर करनेके प्रयोजनके अर्थ है। अब अन्तरंग उपचार पर ही विचार और प्रयत्न करना ही शेष रह गया।

आत्माका उपचार भोजनसे भी अधिक आवश्यक है। वह उपचार है ज्ञान और ध्यान। ज्ञान और ध्यानमें हमारा अधिक समय बीते ऐसा ही भाव और यत्न रहे।

आज जयपुरसे जैन पंचायतकी ओरसे चातुर्मास्य विषयक स्वीकृति लेनेके अर्थ तार आया। जयपुरके महानुभाव सुजन प्रकृतिके हैं। यहां ५ साल पहिले एक बार चातुर्मास्य हो चुका है। क्या होगा यह मुझे अभी विदित नहीं। आज शामको मवाना आये।

४ जून १९५७

संसारमें सर्वत्र दुख ही दुख है। एक दुखी अपने से धनी को देखकर अथवा प्रतिष्ठितको देखकर यह सुखी है ऐसी कल्पना करता है। उसका दुख उसके अनुकूल है हमसे भी अधिक है। ऐसा समझ नहीं पाता।

हे प्रियतम निज चैतन्य ! मेरे उपयोगमें सदा रहो जिसके प्रसादसे

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मैं विषय कषायोंके झंझटोंसे मुक्त हो जाऊं। दुःख केवल विषय कषाय हैं। इन्हें न करो और फिर देखो सर्व आनन्द ही आनन्द है।

क्लेश है भी क्या ? बतावो तो। जिसे रोज भोजन मिलता हो शीत उष्ण बाधा मिटाने योग्य वस्त्र जिसके पास हों फिर और पूछो कि भैया तुम्हें क्या दुःख है ? क्या बतायें जो वह कहेगा सो सब पागलपन है।

बना बनाकर क्लेश भोगते, इसे ही तो पागलपन कहते हैं। यह पागलपन, मोह ही तो है। इसलिये यह कहाले कि मोह ही पागलपन है।

लोकमें भी देखो श्रीरामचन्द्र जी मृत लक्ष्मणको ६ माह लिये फिरे इसे चाहे मोह कहलो चाहे पागलपन। मोह छोड़कर ही श्री रामचन्द्र जी सुखी।

आज शामको मवानासे चलकर मसूरी ग्राममें पहुंचे।

५ जून १९५७

आज प्रात: मेरठ पहुंचे। यहां श्री महावीर प्रसाद जी बेंकर्सकी धर्मकी ओर अच्छी लगन है इनके परिवारका भी धर्मकी ओर विशेष उपयोग है।

अपना स्वभाव अपना धर्म है। स्वभावकी दृष्टि करनेका नाम धर्म करना है।

अन्य सर्व पदार्थ तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं उनसे तुझे कुछ मिलेगा ही नहीं। पर पदार्थकी ओर झुककर जो अपना भाव बनाओगे वह भाव भी अध्रुव है और अशरण है। फिर वह विभाव भी नैमित्तिक होनेसे तेरे स्वभाव से विपरीत है। सर्व अहितोंसे आत्मबुद्धि छोड़ो और अपने उपयोगको अपने ध्रुव स्वभावमें जोड़ो।

ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः। सर्वत्र शंभूयात्।

६ जून १९५७

यथार्थ ज्ञान ही जीवका शरण है। यथार्थ ज्ञान होने पर अयथार्थ ज्ञान बनाये भी नहीं बनता। अयथार्थ ज्ञान भ्रम है। भ्रम ही दुःख है। दुःख मेटो याने भ्रम मेटो।

तुम्हें जगतमें करनेको क्या काम पड़ा है ? बतावो तुम किसी भी पर पदार्थका क्या कर सकते हो प्रदेश तो परका बना नहीं सकते। परका प्रदेश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो परमें स्वतः सिद्ध है। परका काल याने परिणमन भी तुम नहीं कर सकते क्योंकि परका परिणमन उस ही परकी शक्तिका विकास है। अन्य किसी की शक्तिके विकास रूपसे तुम नहीं परिणम सकते। परका भाव भी याने गुण भी तुम नहीं कर सकते। परके गुण उस ही परमें तन्मय हैं। गुण भी क्या हैं? जिन विशेषतावोंसे द्रव्य पहिचाना जावे उन विशेषतावोंको गुण कहते हैं। किसीके गुणोंको भी तू नहीं कर सकता।

अब बता तुझे जगतमें कौनसा काम करनेको पड़ा है? कर सकेगा क्या कुछ अन्य?

नहीं, तो फिर बता क्या कर सकता तू? मैं अपने भाव। तो भाव ऐसे बना जिसमें संकटका नाम न रहे। वह भाव है शुद्ध चैतन्यकी दृष्टि। यदि इसमें स्थिरता न रहे तो निष्फल सर्वथा शुद्ध सिद्ध भगवानका ध्यान कर।

७ जून १९५७

समस्त बाधा बस माननेकी है। पर वस्तुकी ओर झुके रहो इसके लिये कौन जबर्दस्ती करता है। अज्ञानसे तुम ही झुकते हो तब इससे रोक भी कौन सकता है।

हित तुम्हें अपने आपमें मिलेगा। परकी दृष्टि सर्वथा छोड़ो।

अहित, अकल्याण और दुःख भी होता है तो वह भी तुम हो में होता है किन्तु उसका रूपक परकी ओर दृष्टि किये हुए उपयोग रूप है।

जगतमें अन्यत्र कहां नाटक देखने जावोगे। नाटक तो तुम भी कर रहे हो। अन्यत्र नाटक देखना उन बालकोंके देखनेकी भांति है जो प्रथम नाटक में प्रविष्ट होते हैं और दूसरे बालकोंके नाटकको भी चित्तसे देखते हैं। यद्यपि यह जीव अनादिसे नाटक करता चला आया है तथापि इसे पूर्व भवों के नाटकोंका ज्ञान व विश्वास न होनेसे अपनेको नई दुनियांमें आया हुआ देखता है और इसी कारण अनेकोंके अनेक नाटकोंको भी हितकर, सुखकर समझकर देखता है।

अपना नाटक समाप्त करो।

८ जून १९५७

दुःखका कारण मोह है इसका अर्थ है दुःखका कारण दो या अनेक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंके सम्बन्ध माननेकी दृष्टि है। क्योंकि मोह हो या अनेक पदार्थोंके सम्बन्ध माननेकी दृष्टिको कहते हैं।

जब कहा जाय कि मोह छोड़ो तब यह भाव समझना कि दो या अनेक पदार्थोंके सम्बन्ध माननेकी दृष्टि छोड़ो।

यह सम्बन्ध दृष्टि कैसे छूट सकती है? यदि पदार्थ सम्बद्ध नहीं है तो उन्हें उस ही प्रकार असम्बद्ध ज्ञान जानेसे सम्बन्ध दृष्टि छूट सकती है।

पदार्थ सब अपने ही प्रदेश गुण पर्यायमें हैं। सर्व असम्बद्ध हैं।

बस पदार्थ जैसा है वैसा जान लो मोह छूट ही जाता है।

मोह तो ज्ञानसे ही छूटता है। मोह नष्ट होनेके बाद भी पूर्व बद्ध कर्मके उदयको निमित्त पाकर अवशिष्ट रागादि विकार आते हैं उन पर विजय पानेके लिये व्रत तप संयम आदिक उपाय भी किये जाते हैं। इनसे विकारके विजयमें सहायता मिलती है।

मोह सम्यग्ज्ञानसे ही दूर होता है। ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ शुद्धं-चिदस्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि।

६ जून १९५७

१— प्रत्येक द्रव्यके प्रदेश, गुण और पर्याय अवश्य होते हैं।

२—प्रत्येक द्रव्यके प्रदेश, गुण और पर्याय उसके उसमें ही होते हैं।

३—किसी एक पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ कर्ता कर्मभाव नहीं है।

४—जो परिणमे सो कर्ता, जो परिणमन हो सो कर्म ऐसा कर्ता कर्मभाव एक ही पदार्थमें होता है।

५—मलिन पर्याय परिणत द्रव्यका मलिन पर्याय परिणत द्रव्यके साथ मात्र निमित्त नैमित्तिक भाव है।

६—निमित्त नैमित्तिक भावका इतना तात्पर्य है कि परिणमने वाले पदार्थमें ऐसी विशेषता है कि वह किसी विशिष्ट पदार्थको निमित्त मात्र पाकर अपनी शक्तिसे विभाव परिणमन कर लेता है।

७—विभाव पर्याय किसी एक द्रव्यके प्रदेशमें होकर भी और उस द्रव्यकी शक्तिका परिणमन होकर भी तथा उस ही द्रव्यकी परिणत होकर भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुद्धनयसे वह विभाव परिणमन उस द्रव्यके नहीं है।

ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

१० जून १९५७

कोई भी आत्मा हो वह अन्य मेरेमें कुछ परिणमन नहीं करता। सारा जगत बड़ाई करे उससे मुझे कुछ नहीं मिलेगा। यदि मिलने की ही बात पूछो तो उसको आश्रय करके जो मलिन परिणाम बनाया वह मिला। यह लाभ है कि अलाभ या हानि सो विचार कर लो।

तुम्हें क्या होना! कुछ नहीं होना, जो होना हो सो होओ। हमें तो अज्ञान अन्धकार पसन्द नहीं था। यह अज्ञान दूर हो गया। वस्तु जिस प्रकार है उस प्रकार उसे समझ लिया। यह विवेक मेरे बना रहे इसके अतिरिक्त और कुछ होनेका मेरे ध्यान नहीं। यह विवेक कब तक रहे? जब तक कि विवेकमें से ही गुजरते हुएमें विवेक विकल्प छूटे।

कोई कुछ भी कहे वह अपने ही भावको उगल रहा है। किसीने किसीको न अब तक संभाला न आगे कभी संभाल सकेगा। यह सब तो मात्र भ्रमवश स्वच्छन्दजात कल्पना है।

किसीसे कुछ मुझे मिलना नहीं है जैसा विचार करता हूं, वैसा ही अनुभव करता हूं। जैसा अनुभव करता हूं उस ही के अनुरूप सुख या दुःख पाता हूं।

मैं अपने आप ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी पटकूं तो इसमें दूसरे की क्या खता। मैं अपने आप ही तो अपनी शक्तियोंसे परिणमता हूं, कैसा ही परिणमूं।

अपना सहाय अपना ही ज्ञान है। अपना सर्वस्व अपना ही विशुद्ध भाव है। यह नहीं तो कुछ भी नहीं।

११ जून १९५७

सर्व विकल्पोंसे अत्यन्त उपेक्षित होकर अल्प समय भी रह लिया जावे तब वह स्थिति अनन्त कर्मोंकी निर्जराका कारण होती है।

सबको भूलो, निजके प्रकाशमें रहो। रे प्रिय! यहां तेरा कोई नहीं है। कौन क्या मदद करेगा। सबसे विवेक होना रहना संसारकी आदत है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

रे प्रभु प्यारे ! तू अपने आप पर दया कर, अपनेको अब दुःखी न बना, अपने रामको मलिन न कर। विषय कषायके परिणाम ही शत्रु हैं। ये भीतर आकर तेरा बिगाड़ कर रहे हैं। बाहरके किसी पदार्थसे तेरा बिगाड़ सुधार नहीं होता। बाहरके विषयक सर्व विकल्प छोड़। सर्व ते मुख मोड़।

परचिन्ता मत कर। पर पर ही है, अनायास या अल्पायास्तः किसीका कुछ बनता हो बन जाय ? किन्तु किसीका कोई विकल्प लादे रहना बुद्धिमत्ता नहीं है।

तू एक स्वतन्त्र अखण्ड द्रव्य है। अपना परिणमन अपनेमें करता है। अपने आपसे बाहर तेरी कोई कला नहीं है। भ्रम भ्रममें रहकर अपनी जिन्दगी मत खो डाल।

१२ जून १९५७

आनन्द तेरा तुझमें ही है। किसी परकी ओर दृष्टि मत दे। यदि किसीभी परकी ओर चाहे वह चेतन हो या जड़, रूचि रही तो आनन्दसे हाथ धो बैठोगे।

कुछ अपना मत मान, फिर यदि क्लेश हो तो कहना। मैं आत्मा त्रिकाल अबाधित हूं। किसीभी परसे मेरेमें बाधा नहीं आती। बाधा आवे ही आवे तो वह मेरे अन्तरकी गलतीसे आती है।

कुछ नहीं चाहना ही सुखका मूल है। मैं अपना ही कर्ता हूं, मेरे द्वारा मैं ही किसी न किसी अवस्था रूपमें किया जाता हूं, मेरे ही परिणमनसे मैं किया जाता हूं, जो कुछ दिया जाता है मेरेमें मेरा काम उसका फल उस ही समय मैं ही पा लेता हूं।

परिणाममें चैतन्य गुण स्वरूप बसा हो वहां सब साधन हुआ समझो। जब निज स्वभावको प्रतीति नहीं होती तब विकल्प राक्षसोंका उपसर्ग फैला रहता है।

ज्ञानसे समझते हुए तथा बाह्यकी ओर न झुकनेका उत्साह रखते हुए भी यदि विभाव हो तब तो कह मैं क्या करूं उदयकी बलवन्ता है। खुद ही भावोंमें शिथिल हो जाय तब अन्यको दोष देना व्यर्थ है। Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१३ जून १९५७

इन्द्रिय दमन एक वह अद्भुत शस्त्र है जिसके बल पर मोह राग द्वेष पर विजय पाना आसान रहता है।

इन्द्रिय दमन एक वह अद्भुत गढ़ है जिसमें बसकर आत्मा अनेक शल्य पिशाचोंके आक्रमणसे बचा रहता है।

इन्द्रिय दमन एक वह अनुपम अमृत है जिसके परिणमनमय पानसे आत्मा अमर आनन्दका भागी हो जाता है।

इन्द्रिय दमन एक वह पुरुषार्थ है जिसके कारण यह आत्मा विषय कषायकी घाटीको पार कर निज आराममें पहुंच जाता है।

यह दोहा जो अनेक जगह शास्त्र सभाके मध्य व अन्तमें पढ़ा जाता है वह बड़े कामका है।

तप करते यौवन गयो द्रव्य गयो मुनिदान।
प्राण गये सन्यासमें तीनों गये न जान ॥

जवानी तो बीतती ही है और बीतने पर शीर्ण अवस्था मिलती है। तप करनेमें यदि कुछ भयकी चीज है तो यह हो सकती होगी कि शरीरशीर्ण न हो जावे सो शरीर तो शीर्ण होना ही है। यदि तप करते हुए में जवानी बीत गई, शरीर शीर्ण हो गया तो कुछ भी नहीं गया जानिये।

शरीर तो शीर्णस्वभावके कारण शीर्ण होता है। तपसे तो आत्मीय लाभ मिल ही जाता है।

१४ जून १९५७

मौन व्रत बहुत शक्ति बढ़ानेका उत्तम साधन है। इस व्रतमें शान्तिभी अधिक रहती है। अधिकसे अधिक मौन व्रत निभ सकता है अपनी परिस्थिति के अनुकूल तो इतना-प्रातः ॥।घंटा प्रवचन व ।। घंटा पाठन इसप्रकार १। घंटा दुपहर १। घंटा शङ्का समाधान व स्वाध्याय रूपमें पाठन इस प्रकार १।। घंटा ।।घंटा प्रमुख अथवा अन्य महान भावसे आवश्यकता होने पर वार्तालाप इस प्रकार कुल ३ घटे ही बोलकर शेष काल मौनसे रहा जा सकता है।

यह जगत तुम्हें क्या देगा? कुछ भी नहीं दे सकता। क्यों नहीं दे सकता? मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश हो ही नहीं सकता। क्यों नहीं हो सकता?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि मैं हूं। सभी सत् अपनेही चतुष्टयसे होते।

न मुझमें कुछ अन्य आ सकता है और न किसी अन्य द्रव्यकी चीज उससे बहार जा सकती है और न हो मेरी कोई चीज मेरेसे बाहर जा सकती है।

ऐसा स्वरूप है तब हमें अब क्या करना? कुछ नहीं करना, बस ऐसा स्वरूप जानते भी रहो जब तक तुम निर्विकल्प दशामें वर्तकर स्वरूप ज्ञाता न हो जावो।

आत्माका स्वरूप ध्रुव है उसका उपयोग आकुलताओंसे बचाता है। आकुलतासे बचने पर आत्म समृद्धिशाली होता है। इस समृद्धिसे परमात्मता प्रकट होती है।

परमात्मो हुए कि कृतकृत्य हुए।

ॐ नमः शुद्धाय, शुद्धिनिमित्ताय।

१५ जून १९५७

वस्तु स्वरूप जानने पर भी परोन्मुखवृत्ति हो जाती है ऐसे प्रसंगमें क्या कहा जावे जाना है अथवा नहीं।

जाना है तब विषय कषायकी ओर चित्त क्यों जाता। यदि नहीं जाना है तब वैसा बोल और विचार कैसे लेते। यह समस्या एक बड़ी समस्या है। चित्त लगकर चित्त हट हट जाता इतनी बात तो सही है किन्तु परकी ओर चित्त लगता ही क्यों है? इसका कारण अश्रद्धा तो नहीं है।

जिसे जो ज्ञान है वह प्रायः वैसी श्रद्धाको लिये होता। जानने पर भी वैसा कर नहीं पाते इसमें कारण पूर्वकी कृति है।

निरन्तर निजस्वभावका दर्शन, मनन करो जितना बन सके और फिर कुछ गुजरे, सबकी सम्हाल हो जावेगी।

आत्मन्! तू शुद्ध है, शुद्धका तात्पर्य परकी षट्कारक प्रक्रियासे परे है और निजकी षट्कारक प्रक्रियाके अभिप्रायसे परे है।

आत्मन्! तू एक है, एकका तात्पर्य अनेक पर पदार्थोंसे गुजर गुजरकर तू तू हो रहता है और अनेक निजकी पर्यायोंसे गुजर कर किसी भी पर्यायरूप तुम नहीं रहते सो पर्यायोंसे गुजर कर तू आगे बढ़ता ही चला जाने वाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक है।

१६ जून १९५७

हे निज प्रभो ! तुम स्वयं अनुपम अमित आनन्दके भण्डार हो फिर परकी आश करके प्रभुता क्यों खो रहे हो।

हे ज्ञान घन ! तुम स्वयं अनन्त ज्ञानके स्रोत हो फिर परके ज्ञान बढ़ानेकी और एतदर्थ परकी आश करके क्यों अज्ञान जड़से बन रहे हो।

आत्मन् ! तुम्हें कहीं कुछ नहीं करना। आराममें निष्कम्प निर्विकल्प बने रहो। यह बात वस्तु स्वरूपके जानने पर स्वयं हो जाती है। सो प्यारे वस्तु ज्ञानके उपयोगमें अभीक्ष्ण वर्तो।

तुम्हें परसे कुछ नहीं लेना, परसे कुछ नहीं चाहना। हिम्मत तो करो स्वतन्त्र स्वयं रमण करनेकी, सर्व निज शाश्वत आनन्दका प्रवाह पा जावोगे।

जब तक अपने आनन्द पानेकी हिम्मत नहीं करते हो पर पदार्थ सुख- दायक हितकारक मालूम होते रहेंगे और इस चक्करमें तुम कभी दुःखसे छूट न पावोगे।

हिम्मत करो, सब कुछ भूल जावो, अपने उपयोगमें बर्त जावो। देखो पर न मिले इसमें तुम्हारी सत्ता नहीं जाती, तुम्हारा परिणमन बन्द नहीं हो जाता। वस्तु स्वयं परिणमनशील है। वस्तुका वस्तुत्व समझो और प्रसन्न रहो, एतदर्थ निरपेक्ष रहो।

१७ जून १९५७

रे परेशानी दूर हट

आत्मन् ! तुम राग द्वेषादि विभावसे परेशान हो। परेशान मत होओ, बात सुनो। देखो यह आत्मा है संस्कारसे मलिन है इसके अभिमुख जो निमित्त उपस्थित होता है उसको प्रतिफल स्वरूप ये रागादिभाव झलकते ही हैं उनमें आत्मन् तुम क्या करोगे और जो रागके विरोधमें हो जायगा वह विधि पूर्वक हो ही लेगा।

सच जानो राग झलकनेके मामलेमें तो तुम ऐसे हो जैसे जड़ पर्दा पर फिल्मका फोटो झलकता है उस पर पर्दा क्या करे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा है। तुम्हारा आत्मा पर्दा पर कर्म विपाककी फिल्म आती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तुम क्या करो।

परन्तु हे आत्मन् विवश न होओ अधीर न होओ। रागादि विकार जिस गुण पर आते वह चेतन नहीं वहां वैसा होना पड़ता है क्या वश है किन्तु प्यारे तुम एक काम तो करही सकते हो। रागादि भावों को अपने स्वभावमात्रकी कलासे उठे हुए न मानों और सोचो ये रागादि हुए हैं निमित्त नमित्त सम्बन्धकर हुए हैं, औपाधिक है दूसरे क्षण रह नहीं सकते ये मिटते हैं। लो यह भाव मिट गया। मिटने वालेसे मेरा नाता नहीं, मैं तो इससे गुजरकर आगे भी रहता हूं!

१८ जून १९५७

रे उपयोग! रागादि आते हैं तो उन पर झलक करके हंस और हंस हंस कर उनमें न फंसकर उन्हें गुजार दे।

ये रागादि भाव जो कर्मोदयके विपाकसे उत्पन्न हुए हैं मेरे स्वभाव नहीं। मैं चिन्मात्र हूं। ये होते हैं होओ मैं जान रहा हूं। किन्तु दूसरे समय मेंही न रहने वाले इनसे अब कोहै कहे जरा रिश्ता तो जोड़ लो थोड़ी देरको अपना तो मानलो। बतावो प्यारे कैसे मान लूं जब इनकी कलई जान ली कि ये औपाधिक हैं दूसरे क्षण इनका नाम भी नहीं रहता मुझमें तो नव्य २ परिणमन चलता रहता एक समयको परिणमन होता है वह दूसरे समय नहीं ठहरता। इतनी बड़ी २ पोलें जो अज्ञानक प्रपापसे ढकी हुई थी, जान ली अब तुम्हीं बताओ मैं भ्रम कैसे कर डालूं कि येमेरे वैभव हैं, हित हैं आदि।

अब भ्रम होना कठिन है। जान लिया, मान लिया, छान लिया, ठान लिया। अब मैं बच्चा नहीं रहा। श्रीमत्कुन्द्रकुन्दाचार्य जैसे अध्यात्म गुरुवोंकी दुकानमें काम संभालनेमें चित्त जम रहा।

रागादि भावों! दूर हटो परकृत परिणाम। सहजानन्द रहें अभिराम।

१९ जून १९५७

प्रियतम चैतन्य! मेरे प्राणाधार! मैं यह परिणति तेरे आधार पर जीवित हूं। कुछ मैंने समझा है कि मैं जीवित दूसरे समय नहीं रह सकती और यह पूर्ण निर्णय हो गया है आपके दरबारमें। सो नाथ! मैं भी आप जैसे आधारकी महत्ता जानकर आपकी महत्ता धूलमें नहीं मिलाना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहती । मैं तो अब जीवन भिक्षा न मांगकर केवल यही चाहती कि मुझ परिणतिका रूप आप बदल दो ! परिणतिका वह रूपक हो जावे कि जिस मुझ के मरनेके बाद वैसीही परिणति अनन्तर उत्पन्न न हो और लगातार वैसी ही परिणतियां आपके अंगमें लिपटी रहा करती जावें । हमें इसीसे संतोष है कि कमसे कम आधे पढ़े लिखे लोग तो यह जानते रहेंगे कि इस चैतन्य महा प्रभू प्राणाधारकी रमणी वही है मरी नहीं ।

हे नाथ ! अब तो विमुख न होओ हम तुम एक हो घुल मिल जावें । देखो आदिमें भी तो ऐसाही था भले ही अज्ञानमें वह मान्यता इस घुलने मिलनेको पुष्ट करती थी । अब आगे स्वभाव और परिणतिका घुलना मिलना हो जावे ।

२८ जून १९५७

सच कहूं देव ! इस अन्तरात्माकी स्थितिके कालमें मेरे प्राणों पर संकट आ गया है । तुम्हारी रमणीमैं परिणति तो अनादिसे राज्य करती आई हूं । आगे भी आपका कर्मयुद्ध समाप्त होने पर आपमें समाकर एक भेद होकर अनन्त साम्राज्य भोगूंगी । परन्तु ये भेद विज्ञानके दिन मेरे लिये संकटके दिन हैं । मेरे राज्यमें इस बीचकी स्थितिने बड़ी बाधा उपस्थितकी है । कुछ खेद नहीं महाराज । आने दो संकट । इस संकटसे पार होकर फिर तो निष्कम्प राज्य करना है मुझे ।

यह मैं हूं आपकी परिणति रमणी ।

हे बुद्धे ! क्या करूं कहां जाऊं इसका शोक नहीं करना ।

यहीं रहो अपना ही काम करो कुछ गम होगा ही नहीं तुझे हे बुद्धे !

सचको जानो, अपने आप विकल्प छूट जायगा । क्योंकि सच निर्विकल्प होता है ।

प्रत्येक पदार्थको अकेलोको किसीको भी एकको जानो देखो जितना वह उतना ही उतनेमें कोई खेद हो ही नहीं सकता ।

ॐ शुद्धं चिदस्मिः ।

२१ जून १९५७

क्यों अनेक विकल्प हो जाते । जानेपनेमें तो रहते नहीं और समागम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में पड़ते हो।

कोई भी तुम्हारा रक्षक नहीं। तुमने मौनव्रत लिया है निभावो, निभाते जाओ।

लो आजसे मैंने दो माहको सुबह १॥ घंटे बोलना चौथे पहर १ घंटा बोलना और आवश्यक्ता अधिक होने पर कभी ३० मिनट बोलना इनके अतिरिक्त मेरे मौन है।

जीना तो अनादिसे लगा चला आया है, जीनेमें कोई सिद्धि नहीं, शान्ति नहीं। विषय प्रसङ्ग भी अनादिसे चला आ रहा है इस प्रसंगमें भी कोई सिद्धि नहीं, शान्ति नहीं। परके समागम मुझे क्या दे देंगे। किसी द्रव्य से किसी द्रव्यमें कुछ आता जाता तो है ही नहीं।

मुझे अपना काम करना है। वह हमारा काम ज्ञाता दृष्टा रहना हो है। विकल्प आते हैं कर्मके उदयवश वह निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धकी लीला है। मैं इसमें क्या करूं। कर्म उपार्जे उनका उदय आया। मेरा तो वश यही चल सकता है कि विकल्प भी जैसे हैं उन्हें भी जानता मात्र रहूं।

मैं चित्स्वरूप हूं विकल्प औपाधिक है। ये आये हैं अभी ही अभी चले जायेंगे मैं इन्हें छोड़ कर आगे बढ़ूंगा। विकल्पोंसे मैं क्या नाता जोड़ूं।

२२ जून १९५८

जीवन बिगड़ता है, ठोकरें लगती हैं, चेत होता है पीछे। यह है कुछ समझदारोंकी चर्या। जिनका पूर्वभवका जीवन भी उत्कृस्ट चर्याका रहा आया हो ऐसेही कोई बिरले सन्त जीवनमें प्रारम्भसे ही बड़े सावधान रहते हैं। उनकी अलौकिक प्रतिभा और चर्या पर साधारण लोगोंको आश्चर्य होने लगता है।

जिन्होंने निज आत्माको अपने हस्तगत (उपयोगगत) कर लिया उन्हें शान्ति ही है, पर द्रव्यसे विरत रहनेमें उन्हें कोई क्लेश उत्पन्न नहीं होता।

यह शरीर तो जला दिया जायगा, गाड़ दिया जायगा, पक्षियोंके द्वारा नोंच लिया जायगा, सड़ जायगा, गल जायगा, कुछ होगा, बरबाद हो जायगा। ऐसा हम देख भी तो रहे हैं अनेकोंका हाल! इसका भी एकाग्रता

http://sahjanandvarnishastra.org/

से जाने और इससे मैं जुदा हूं ऐसा अनुभव करे तो आत्मन तू पार हो जायगा।

बाह्य तो बाह्य हैं, उन्हें अपना माननेमें कुछ सिद्धि नहीं है वे तो अपने चतुष्टयसे हैं रहेंगे। संयोग वियोग तो क्षेत्रान्तरकी अवस्थितिकी बात है।

हे आत्मन तू अखण्ड केवल निजरूप ही है अपनेमें तू परिणमता रहता है। परिणमता रहता है कैसा भी परिणम लो। इसके अतिरिक्त तुझमें अन्य कुछ आना नहीं है। अब पन्थ देख ले, तुझे कैसा परिणमना है इसका विचार करले। परसे तो तेरी रस्सी ही कटी हुई है। अब अपने घरको सम्हालले।

२३ जून १९५७

मैं विवश नहीं हूं, अन्धेरेमें नहीं हूं किन्तु चरणानुयोगकी किसी बाड़का अतिक्रम करता हूं तो संक्लेशमें पड़ जाता हूं। चरणानुयोग भी महत्वकी की चीज है। द्रव्यानुयोग व चरणानुयोग दोनों पन्थोंसे गुजरकर हम अवाधित बने।

सर्व कुछ कर सकता हूं अपना सर्वकल्याण कर सकता हूं। चेतन हूं ना। इसीलिये मैं महान अलौकिक तत्व पा सकता हूं।

हे नाथ ! हे नित्य निरञ्जन निर्मल शुद्धात्मदेव ! तुम्हारी चर्चा तो करने लगा हूं। इससे यह बात तो कुछ निश्चितसी हो जाती है कि कुछ परिचय आपका पाया है। यह परिचय वृद्धिगत हो। मेरी यही आन्तरिक भावना है।

मैं जब चाहे किंकर्तव्य विमूढसो हो जाता हूं। इसका कारण है और वह यह है कि रास्ता तो जान लिया जो करना है जिससे शान्ति है और द्रव्यस्वरूप तो जान लिया है किन्तु पता नहीं जैसा जाना वैसाकर नहीं पाता, हो नहीं पाता। यही ठेस कभी किंकर्तव्यमूढ बना देती है। बताओ हम इसमें भी आनन्द मानते हैं। जो बर्तना हो बर्तो। मैं क्या करूं। जो होना है वह होता है।

२४ जून १९५७

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो होना है वह होता है। यह कैसे जाना क्योंकि सर्वज्ञ देवको सब

 http://www.jainkosh.org

ज्ञात है । यह बात ठीक है ? हां ठीक है तब सब सर्वज्ञदेवका स्वरूप तुम निरंतर जानते रहो । सर्वज्ञ वह है जो प्रत्येक द्रव्यका सर्व कुछ जानते हैं । वे सर्वको केवल केवल जानते हैं । किसीका किसीके साथ सम्बन्ध जोड़कर नहीं जानते जैसा सर्वज्ञ जानते हैं वैसा ही सत्य है ।

प्रत्येक द्रव्य स्वयंकी योग्यतासे परिणमता चला जाता है । कौन कैसे परिणमता चला जाता है यह बात परिणमने वाले द्रव्यमें है । निमित्त तो उपस्थित मात्र है वह तो अपने परिणमनका स्वामी है । उसे निमित्त पाकर अन्य द्रव्य अपने प्रकारमें परिणाम लेता है ।

अहो सर्व द्रव्य निश्चयसे स्वतन्त्र ही हैं ।

प्यारे ! तुम जानो देखो कुछ भी, प्रत्येकको केवल केवल जानो, क्यों कि हैं भी सभी निश्चयसे केवल केवल ।

प्यारे ! तुम भ्रमसे ही तो परेशान थे कुछ गुजरे, कुछ बनें । तुम अब भ्रममें न पड़ना, जानते रहना सच सच । अवश्य कल्याण होगा ।

२५ जून १९५७

किसी भी समय मैं अपने परिणमनको छोड़ अथवा अपने परिणमनको करता हुआ किसी परके परिणमन को नहीं करता ।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्का याथार्थ्य जानना सम्यग्दर्शनका मूल है ।

सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः का आद्य बीज उत्पाद व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सार है ।

मुझे किसीसे बोलनेकी आकांक्षा नहीं, कोई मेरी प्रशंसा करे इसकी कोई चाह नहीं । जान तो लिया सब । मैं बेशरम रहना चाहता हूं । कल्याणके लिये भीतर जो करते बने करूं । फिर बाह्यमें लोग जो कहते बने कहें कहना कहने वालोंकी चीज है उससे मुझे क्या ।

मैं अनादि अनंत अबाधित अन्तः प्रकाशमान चित्स्वभाव हूं ।

क्या करूं ऐसा कुछ परेशान न होओ । जगतके साक्षी बनो । लोगों की ओर दृष्टि न दो ।

Version 1

लोगोंमें वकायदे कीर्ति बनना भी तो हमारे भ्रमका, पतनका मार्ग हो

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता है । बाहर क्या गुजरती इसका विकल्प मत कर ।

चित्त शान्त नहीं बैठ पाता कुछ सोचनेको चाहिये ही चाहिये। लो सोचनेका काम एक बताये देते हैं —जो ये विकल्प उत्पन्न हुए हैं इनके अधिकारी कर्म हैं मैं तो इनका ज्ञाता द्रष्टा हूं ऐसा विचार करते जावो ।

२६ जून १९५७

किसी भी अन्यको प्रसन्न, खुश करनेका भाव करना मूर्खता है । किसी भी परको विषय बनाकर इष्ट अनिष्ट विकल्प करना मूर्खता है। और महामूर्खता है इन विभाव और विकल्पों रूप अपनेको समझकर मस्त रहना ।

जगतमें अनेक अनेक अर्थ हैं पर तेरे बापका उनमें क्या ! तेरे बापका कुछ नहीं, फिर तेरा क्या ? तेरा बाप है चित्स्वरूप और तू विकल्प बना रहा अपने बापका कुपूत ।

जीवकी कितने प्रकारकी अवस्थायें संसारमें हो रही उन्हें व्यञ्जन पर्याय की अपेक्षा देखो तो हैं १९७५००००००००० । अर्थपर्यायकी दृष्टिसे जीव की संसारमें अवस्थायें देखा ता हैं अनन्त ।

अब कुछ थोड़ा घूमने चलो और कुछ साक्षात् देखो । देखो ये हैं न कीड़े मकोड़े, ये लो ये हैं ना कुत्ता बिल्ली गधे, और चलो और देखो ये हैं न बैल घोड़े, लो ये सांप बिच्छू देखो, अरे मनुष्योंमें भी देखलो । तड़पते हुए दूसरोंसे सताये हुए, नोंचे खाये हुए, मरे हुए देखलो ना। ये हैं कुभावके ठाठ ।

मनुष्यभव एक ऐसा भव है कि यहांसे अपना काम संसारके दुःखोंसे छूटनेका बनालो ।

ॐ तत् सत्, ॐ शुद्धं चिदस्मि ब्रह्माहं तत्त्वमसि ।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ।

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।

२७ जून १९५७

संकट सहलो परन्तु अन्याय या पाप न विचारो ! संकटका दुःख संकटके काल तक कुछ दुःखोंमें है किन्तु अन्याय, पापों होने वाले मनोबलकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

अशक्ति चिरकाल तुम्हें कष्ट देगी।

कोई तुम्हें बुरा कहता है तो उसकी बात सहलो परन्तु तुम उसे या किसीको बुरा न बोलो। तुम तुम्हारा दुःख भेद विज्ञानसे त्वरित मिटा सकते हो किन्तु परको बुरा बोल जानेके कारण आने वाले अन्य संकट अथवा वह दुःखी हो रहा होगा इस ख्यालका संकट टालना कठिन होजायगा।

लो, चला सब झमेला अपने अपने द्रव्यके परिणमनमें। तुम भी आ जावो अपने ही द्रव्यके परिणमनमें।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ शुद्ध चिदस्मि।

निम्नांकित अवसरके अतिरिक्त सन् १९५७ तक २१ घन्टे मौन रहना और तीन घन्टेका प्रोग्राम रखना प्रायः ४५ मिनट प्रवचन, दुपहर ४५ मिनटशंका समाधान, रात्रि ४५ मिनट प्रवचन, प्रवचन परान्त १५-१५ मिनट चर्चावार्ता।

अवसर-(१) आहारोपरान्त श्रावकके गृहपर। घन्टा

(२) मध्यान्ह सामायिकसे पहले या बादमें गृहस्थ बन्धुवोंसे चर्चाको ॥ घंटा।

(३) गुरु जीके समक्ष।

(४) किसीसे कुछ अध्ययन करते समय।

(५) यत्नमें एक दिन।

(६) रोगादिसे अति त्रस्त मनुष्यको सान्त्वना व सम्बोधनके अर्थ। घंटा।

(७) विहारमें कहींसे जाते व कहीं पहुंचते समय। घण्टा।

२८ जून १९५७

आज ब० नन्दलालका स्वर्गवास हो गया। संसारमें जन्मके समय और मरणके समयके दुःखकी तुलना करने वाला अन्य दुःख नहीं ब० जी बाह्यमें तो अचेत रहे किन्तु अनुमान यही रहा कि अन्तरंगमें सावधान थे।

ऐसा ही तो सबको मरना है। जब मरना है, अकेले जाना है फिर समागमोंके करनेसे लाभ क्या और परिग्रहके संचयसे लाभ क्या।

Version 1

प्यारे! अब भी अपनेको असंग अनुभव कर। तू असंग ही है। चाहे

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ बने बिगड़े पर पदार्थका, उनसे तेरा सम्बन्ध अब भी नहीं है। तू इष्ट मानता तो अपनी मान्यतासे मानता है। मान्यता तेरी करतूत है किन्तु परका कुछ कर देना तेरी करतूत नहीं है।

अपनेको संभाल, अपनेको देख, अन्य लोग तुझे क्या कहते, तुझे क्या करते इसकी अत्यन्त उपेक्षा कर।

प्रभो! निज प्रभो! आत्म प्रभो! चैतन्य प्रभो! बसो, मत भगो।

मैं शक्ति, चैतन्य और आनन्द रूप ही हूं। मेरी शक्ति, मेरा ज्ञान दर्शन, मेरा सुख किसी बाह्य पदार्थसे आना नहीं है। अतः बाह्य किसी पदार्थ की कुछ मेरी आकांक्षा नहीं। मैं परिपूर्ण हूं स्वतः सिद्ध हूं कुछ कसर नहीं। स्वयंमें स्वयंका स्वयं अहार है।

६ जून १९५७

धर्मोत्साहमें अनाहार, अनोदर, शुद्धाहार, नीरसाहार, सात्त्विकाहारका निमित्त सम्बन्ध है। आहारमें रुचिकर पदार्थ न लेनेसे अन्य अन्य रुचियां भी कम हो जाती हैं। अहारमें रुचिकर पदार्थ लेनेसे चूंकि यहां रुचि बढ़ाई अतः रुचिकी बाढ़ टूट जाती है और तब अन्य रुचियां भी बढ़ने लगती हैं।

आहार विषयक वाञ्छायें घटावो। चिदानन्द निज आत्माका सात्त्विक आहार स्वभावावलम्बन करके तृप्त रहनेका यत्न करो।

जगतका सर्वसमागम अनित्य है और है भी आखिर वह सब पर। बाह्य अर्थोंसे तुम्हें क्या मिलेगा?

आज परिणामोंमें विशुद्धता संतोषजनक रही। ॐ शुद्धं चिदस्मिको अनेक बार जपो और इसके भावको सम्हाल कर उपयोगमें लावो।

क्या इसमें कुछ सन्देह है कि आत्मका जो परिणमन हो जाता है वह दूसरे क्षण नहीं रहता है। संदेह तो है नहीं ना। फिर इसकी पकड़ क्यों रखो। वर्तमान पर्यायका राग न करो।

द्रव्यमें जब भी हो रहती एक ही पर्याय। भूत तो अतीत हो गए उसका तो सत्त्व है नहीं। भविष्यकी पर्याय भविष्यमें बनेगी उसका भी अभी सत्त्व नहीं। इस समय तो केवल वह पर्याय है जिस रूप परिणाम रहे हो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

भविष्यका विधान बनाने वाला विधाता भी वर्तमान पर्याय है । वर्तमान पर्यायको संभालो, सब संभल गया । वर्तमान पर्यायकी संभाल यही है कि अविकार निज स्वभावका प्रत्यय और आलम्बन लो ।

३० जून १९५७

स्वभाव भावनाकी प्रसन्नता विलक्षण है । इसकी उपमाके योग्य सर्व विषयोंका सुख मिलकर भी नहीं हो सकता है ।

ॐ शुद्ध चिदस्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

निरपेक्षता धर्म है । निरपेक्ष स्वभाव है, निरपेक्ष महान है । निरपेक्ष पूज्य है, निरपेक्ष आदर्श है, निरपेक्ष अनुकरणीय है । निरपेक्षतामें सहज आनन्द है । निरपेक्षता ही संम्वर निर्जराका मुख्य हेतु है । निरपेक्षता ही योगियोंका मर्म है । निरपेक्षतामें निष्काम कर्म हो सकता है । निरपेक्षता संसार व्याधिकी परम औषधि है । निरपेक्षता सम्यक्त्वकी अविनाभाविनी है । निरपेक्षका नाम साधु है । निरपेक्षका नाम त्यागी है । परम निरपेक्ष परमात्मा है । निरपेक्षता ही सत्य है । निरपेक्षता मोक्ष मार्ग है ।

निरपेक्ष तो मैं स्वभावसे ही हूं । सापेक्षता तो विकारमें बन गई है । मैं स्वयं सिद्ध अखण्ड सत्त्व हूं । स्वयं उत्पादव्ययशक्ति सम्पन्न हूं । मैं परिणमता हूं स्वयं । सापेक्षमान्यतामें भी निरपेक्ष होकर परिणमता हूं । निरपेक्ष भावनायें भी निरपेक्ष परिणमता हूं । सापेक्षमान्यतामें परिणमन आकुलतामय होना पड़ता है । निरपेक्ष भावनामें परिणमन अनाकुल होना पड़ता है ।

क्या इष्ट है क्या करना है जल्दी निर्णय करलो ।

१ जुलाई १९५७

बन्धुवर ! मेरे प्रतिज्ञा रूपसे की हुई दशम प्रतिमामें आहारके अर्थ अनेक बन्धुवोंके विवाद हो जानेके कारण मैंने अभ्यास रूप क्षुल्लकव्रत कहकर भिक्षुकवृत्तिका संकल्प किया था । मन्त्र विधान व दीक्षाविधिसे क्षुल्लक-व्रत नहीं लिया । अतः मुझे क्षुल्लक न लिखा जाय । मैं अब भी इसके अभ्यासमें हूं, यदि उचित हो तो क्षुल्लक व्रताभ्यासी लिखा जा सकता है ।

Version 1

धर्म प्रेमी अनेक बन्धु मुझे कहते हैं कि आपको हम क्षुल्लक ही क्या

http://sahjanandvarnishastra.org/

इससे भी बड़े रूपमें देखते हैं, यह सब धर्म प्रेमी उन बन्धुवोंकी दृष्टि है। वैसे तो पहिली प्रतिमा ही इतने निर्मल भावकी स्थिति है कि दार्शनिक श्रावक को निराकुल और कृतकृत्यकी श्रद्धासे उत्पन्न आनन्दसे आनन्दित रहना चाहिये।

मैं अपनेको वहांसे बहुत दूर पाता हूं जहां जाना है। सत्य अपनेमें अनादिसे है उसका अवलम्बन करना शेष है। मनुष्य भवकी उपयोगिता इसीमें है कि आत्म स्वरूप निरख लिया जावे और उसका अवलम्बन किया जावे।

आत्मा भी द्रव्य है इस कारण निरन्तर परिणमनशील है। परिणमन योग्यतानुकूल निमित्त पाकर होता रहता है। जहां कालातिरिक्त कोई सद्भाव-रूप निमित्त नहीं होता वहां स्वभाव परिणमन होता है।

सत्यं शिवं सुन्दरम्।

२ जुलाई १९५७

हम सब एक एक चेतन पदार्थ हैं। इसका कार्य अनादिसे परिणमन करते चले जाना चला आया है व चला जायगा। वर्तमान पर्याय भी इसी आदतका एक रूपक है। यह भी कुछ ही क्षणों बाद विनष्ट हो जावेगा।

संसार सागर अथाह है। इसके बाद क्या हालत होगी इसका निर्णय सबकी अपनी अपनी करनी ही देती है।

दुनियामें देखो सैकड़ों आये चले गये, सब अपनी करामात दिखाये चले गये। इसी प्रवाहकी एक धारा हम सब हैं।

कर्तव्य अब यह है कि प्राप्त समागममें हर्ष न करो और न प्राप्त समागमका गर्व ही होने दें।

हम सबका असली रूप वह विशुद्ध है जिसका योगिजन ध्यान करते हैं। आत्म स्वरूपका जानना सबसे बड़ा भारी पुरुषार्थ और वैभव है।

सर्वस्व न्योछावर करके भी यदि आत्म प्रतीति बन जाय, बनी रहे तो वह अनुपम लाभ है। एतदर्थ जो बन सके कर डालना चाहिए।

धर्मके लिये ही जीवन है। धर्म सरलतामें है, धर्म कषायके त्यागमें है, धर्म सम्यग्दर्शनमें है। ॐ शुद्धं चिदस्मि
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३ जुलाई १९५७

आज मध्याह्निक सामायिकमें ध्यान निर्मल रहा । निष्पाप, निश्छल जीवन शान्तिका कारण बनता है । पाप मनकृत अधिक होते हैं । ज्ञान द्वारा अपनेको समझावो व्यर्थका पाप भार न ढोवो ।

कोई पुरुष बुरा है, उसकी बुराई पर दृष्टि क्यों गई, बुराई पर दृष्टि जानेसे यह रागी उपयोग बुरा हो गया, लो तुम बुरे बन गये । ज्ञेय जाननेमें भगवानकी होड़ न लगा । वे तो वीतराग हैं तू सराग है । (१) पहिली बात तो यह मान कि किसीकी बुराई पर दृष्टि न हो ।

कोई किसीकी निन्दा करता है उसके सुनने पर उपयोग जानेमें भी खुद की बुराई हो ही गई । और फिर यह बता कि दूसरेकी निन्दा सुननेसे तुझे मिल क्या जायगा, हानि तो बहुतसी साक्षात् है । (२) दूसरी बात यह मान कि किसीकी निन्दा सुननेका उपयोग न कर ।

४ जुलाई १९५७

आत्मा एक द्रव्य है, द्रव्य है इस नाते वह परिणमनशील है । जो परिणमनशील नहीं वह है हो नहीं । यह आत्मा अनादि से परिणमता चला आया है । वर्तमानमें ऐसी स्थिति है । इसे पूरा करके आगे बढ़ना है । प्राप्त समागम अपना कुछ नहीं है ।

यहांका सम्मान, अपमान अपना सन्मान, अपमान नहीं है ।

अपने स्वरूपको भूल जाना और विषयकषाय, आरम्भ, परिग्रहमें लग जाना अपना अपमान है और विकल्पोंको तोड़कर स्वाभिमुख होना अपना सन्मान है ।

यहां कुछ भी हो इससे आत्माका कुछ बिगड़ता नहीं है । परिणामोंकी निर्मलता बढ़े यही अपना उत्थान है, बड़प्पन है, सुख शान्ति है व आगे सुखी बने रहनेका यही मात्र एक उपाय है ।

५ जुलाई १९५७

अपना लाभ देखो, विषयकषायके उपयोगमें पतन ही है । विषयकषाय से अलग होओ । विषयकषाय रागवश होते हैं सो राग मेटनेका साक्षात् कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुद्धज्ञानोपयोग है। यदि राग नहीं मिट पाता सताता ही है तो प्यारे! राग की दिशा बदल दे। जैसा तू बनना चाहता है शुद्ध विकासमय वैसे जो बन चुके हैं उनके स्वरूपका ध्यान कर उनकी पूजा, उपासना कर इस दिशामें बढ़नेका जो प्रयत्न कर रहे हैं उनकी संगति, सेवा, प्रीति कर। शुद्ध विकास का जो यत्न बताते हैं ऐसे शास्त्रोंका अभ्यास, मनन कर।

देव—विषयकषायही तेरे महान् शत्रु हैं। यहांका दृश्य समागम तो मिट जावेगा। जिनके आश्रय अशुभोपयोग बना रहे हो वे पदार्थ भिन्न हैं और स्वयं उत्पादन व्यय वाले हैं।

किसी भी दशामें न कोई टिक सका और न कोई टिक सकेगा।

प्यारे! अपने परिणमन पर भी विश्वास न कर। यह भी मिटने वाली चीज है। कहीं ऐसा खट्टा न खा जाना कि मिटने वाला तो मिट कर रहेगा ही और तुम मिटने वाले की प्रीति करके चिरकालको दुःखका बीज बोलो।

आज उपवासका काल सधर्मध्यान व्यतीत हो रहा है। मौन व्रतसे मुझे निज लाभ मिलनेकी पूरी आशा है। विकल्प और दुर्भाव आते हैं उनको यहां ठहरनेको विशेष समय नहीं मिल पाता, यह भी मौनका प्रभाव मैं देख रहा हूं। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

६ जुलाई १९५७

आत्मा पर बड़ी विपदा छाई है। यह दुःखको सुख मानता है यह है इसकी मूढता है। यह समागम क्या साथ देगा, शरण होगा इसका ध्यान न रखकर इसकी तृष्णामें बसा है मोही।

आत्मा चेतन द्रव्य है, स्वयं परिपूर्ण है। दुःखी भी होता तो स्वयं पूरा होकर भी अधूरेकी मान्यतामें परसे सुखके भ्रमसे दुखी हो रहा है।

आत्मा सुखी स्वयं है। विषयभूत पदार्थोंसे सुख नहीं होता। आत्मा आनन्दमय है और स्वयं आनन्दमय। यह प्रति समय आनन्दकी बढ़वारीके लिये तैयार रहता है इसी कारण इसका नाम ब्रह्म है। आनन्दके लिये तैयार रहता, स्वयं यत्न होता किन्तु अज्ञानवश बाह्य पदार्थका आश्रय मान्यतामें कर लेनेसे आनन्दकी कमी हो जाती है उस कम आनन्दका नाम मोही लोगोंने सुख रख रक्खा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह सुख भी बाह्य पदार्थसे नहीं आया। बाह्य बाह्य है उसमें आनन्द भी नहीं। आनन्द आनन्द गुणकी पर्याय भी है। आत्मासे आनन्द होता है। एक बार कमर कसके मोक्ष मार्गमें तो चल। बार बारको मर्म वृत्तिकी इस बाह्य व्यवहार यत्नकी झंझट मिट जावेगी।

मैं सबसे जुदा, चैतन्यमात्र हूं इस स्वभावको और अपनी वर्तमान ज्ञानपर्यायको लगाकर द्रव्य, गुण पर्यायमें एक रूप हो जा। इसीके अर्थ योगियोंका तप है।

७ जुलाई १९५७

समग्रता, कार्यकी जननी है। उसमें एक तत्त्व तो उपादान होता है और शेष सब निमित्त कारण होते हैं।

उपयोगके अन्यत्र जानेसे क्या लाभ। हानि ही परोपयोगमें सब कुछ है।

सारा संसार भी प्रतिकूल प्रवर्तो उससे मेरी रंच भी हानि नहीं है। मैं ही स्वास्थ्यभावसे भ्रष्ट होकर अपना बिगाड़ करूं तो करूं। सारा संसार भी अनुकूल प्रवर्तो उससे मेरा रंच भी लाभ नहीं है। मैं ही परभावसे पृथक् होकर स्वास्थ्य भावमें बसूं और अपना सुधार करूं तो करूं।

हे सर्व जीवो तुम सब प्रतिकूल चलो तो चलकर अपना ही तुम काम कर रहे हो। तुम्हें क्या करना चाहिये यह प्रश्न तुमसे सम्बन्धित है तुम जानो। किन्तु तुम सबकी चेष्टासे मेरा कुछ परिणमन नहीं होता।

हे सर्व जीवो तुम सब प्रशंसा करके यश बढ़ावो तो यह क्रिया भी कर कर अपना ही तुम काम कर रहो उसमें लाभ व हानि दोनों तुम्हारी हैं। तुम्हें क्या करना चाहिये यह प्रश्न तुमसे सम्बन्धित है, तुम जाने। किन्तु तुम सबकी चेष्टासे मेरा कुछ परिणमन नहीं होता।

नित्य निरञ्जन निराबाध चिद्ब्रह्म आदि अनन्त अन्तः सदा प्रकाशमान है, उसकी शरण ही मेरा शरण है। इसीको लक्ष्य करके कथन वेदान्त में है, जैन सिद्धान्तमें है, अन्यत्र भी है। सर्व ओरसे इसे समझनेके लिये जैन सिद्धान्तने मुझे बल दिया और निःसंदिग्ध चिद्ब्रह्म को समझा। अब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसहीमें मेरा सर्वस्व लाभ है ।

८ जुलाई १९५७

मेरा अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न चल रहा है । निजस्वरूपका भान और उसमें स्थिरताका यत्न होना इससे बढ़कर तीन लोकमें वैभव नहीं । निज स्वरूपका परिचय और लक्ष्य हो जावे; इतनी बात हो गई तो मनुष्य जन्म सफल है । समागम, वैभवसे आत्माको कुछ नहीं मिलना । आत्माके पास ही वह चीज है जिसके मिलने पर पूर्ण तृप्ति हो जाती है ।

मैं आत्मा ज्ञान मात्र हूं, शरीरसे जुदा हूं, रागसे जुदा हूं इस प्रतीति पूर्वक शरीर परसे राग छोड़ देना । शरीरको पड़ोसी जानकर भोजन देना किन्तु उससे जुदा ही अपनी प्रतीति करना ।

सत्य मेरा मेरे लिये चैतन्य स्वभाव है । चैतन्य स्वभावका लक्ष्य सदा रहो । यह ज्ञान जब निज अविकार चैतन्य स्वभावका ज्ञान करता है यह ज्ञान आनन्दको प्रगट करता हुआ विकसित होता है ।

चैतन्यस्वभाव सो निश्चय धर्म, चैतन्य स्वभावका अवलम्बन सो व्यवहार धर्म, चैतन्य स्वभावके अवलम्बनके ध्येयसे की गई भक्ति, पूजा, सत्संग आदि सो उपचार धर्म है ।

सिद्ध प्रभुका अनन्त स्वभावविलास है । उनकी अनुपम स्थितिका वह स्थिति है जो चैतन्य स्वभावको आश्रय होने पर क्रम क्रमसे बढ़कर स्वयं हो जाती है । सिद्ध प्रभो जयवंत होओ, अरहन्त प्रभो जयवंत होओ । इसका अर्थ है कि अरहन्त सिद्धकी भक्तिरूप मेरा परिणाम जब तक निर्विकल्प न होऊं बना रहे ।

९ जुलाई १९५७

कल रात्रि करीब १० बजे चैतन्यस्वभावके आश्रयके लिये बहुत उमंग बढ़ी और इससे जगतके सब कार्य, धर्म प्रचार, साहित्य संग्रह आदि तुच्छ जान पड़े । इस परिणामसे जो आनन्द आया उसके कारण रात नींद न आई और मेरी भी यही इच्छा रही कि नींद न आवे । मैं एक समय भी स्वभाव लक्ष्यसे न गिरूं, परको ओर उपयोग तनिक भी न जावे । तत्त्व विज्ञानके विकल्प भी मत होओ, रागादिभावकी ओर भी उपयोग न जावे,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर पदार्थकी ओरकी तो बात ही क्या करना वह तो अत्यन्त भिन्न वस्तु है। जितनी दो स्वभावकी ओर उपयोग झुक रहा वह तो मेरा ज्ञान है बाकी उपयोग अज्ञान है। जो ज्ञान स्वभावकी ओर प्रवेश कर रहा है वह ज्ञान तो चेतन है बाकी ज्ञान अचेतन है इत्यादि विकल्पोंमें समय गया।

करीब १ बजे रातसे नींद आई होगी। नींद गहरी आई। ४। बजे प्रातः कुछ विकल्पों सहित नींद खुली, उन विकल्पोंकी अब याद नहीं है क्या थे।

श्री विनयकुमारजी पथिककी आन्तरिक निर्मलता जानकर मुझे उनके प्रति अधिक स्नेह जगा, इच्छा तो हुई कि इन्हें बुलाकर ५-७ मिनट पास बैठालूं किन्तु रात्रिके तब ११ बजे होंगे। मेरे मौन था और वह भी अपनी कथा व भजनोपदेश कहकर थक गये होंगे उन्हें भी आराम करना चाहिये इस भावसे न बुलाया।

विनयकुमारजी ब्राह्मण हैं और जैनधर्मके प्रति अटूट श्रद्धा है। किसी से द्वेष या मात्सर्य न करना इनका आदर्श गुण है। मेरी कामना हैं कि इन्हें अपने निर्विकल्प स्वभावके परिचयका अनुपम आनन्द प्राप्त हो।

१० जुलाई १९५७

आज उपहास किया, परिणामोंकी निर्मलताका एक साधन प्रवचन भी है। अध्यात्मविषयक बात भी प्रवचन योग्य तभी निकल पाती जब अपने आपमें कुछ निरखते परखते हुए बोला जावे। ऐसा उसमें खुदको महान् बल मिलता।

बिल्कुल मौन रखा जाय और आधा पौन घण्टा प्रवचन भी न किया जावे तो परिणामोंकी निर्मलताकी वृद्धिमें एक अन्तराय हो सकता है। अतः प्रतिदिन १ प्रवचन पौन घटेका कर ही देना चाहिये।

मैं अपने लिये ज्यादहसे ज्यादह मौन रख सकता हूं तो २१ घंटे। तीन घन्टे बोलना इस प्रकार रखा जा सकता है—

अतः ।।। घन्टा प्रवचन, पश्चात् ।। घन्टा पाठन, १। घण्टा
यदि आहार करुं तो आहारके पश्चात् । घंटा बोलना। घण्टा
यदि साथियोंके प्रोग्रामके लिये कुछ कहना हो तो । घंटा बोलना, । घंटा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसीने विशेष समय मांगा हो तो उनसे बोलनेको ॥ घंटा रखना, ॥ घंटा शङ्का समाधानके अर्थ, ।।। घण्टा बोलना— ।।। घण्टा

३ घण्टा

इस मौन व्रतसें लाभ रहा और लाभ होगा ऐसी आशा भी है।

आज उपवास तो सानन्द बीत रहा है किन्तु परिणामोंमें निर्मलताका भङ्ग हुआ। मनुष्य कल्याणार्थ बाह्य परिकरसें अत्यन्त दूर रहे। जो यह सोचले कि मैं तो दुनिया की दृष्टिमें मरा हुआ ही हूं। यश, बड़प्पन सब नष्ट होओ, कोई पूछने वाला भी न रहे। तो अपना अन्तः करम आगे सुरम बना सकता है।

११ जुलाई १९५७

निज ध्रुव स्वभावका लक्ष्य, आश्रय बना रहे इससे बढ़कर लोकमें न अन्य सुख है और न वैभव है।

हम अपने ज्ञानसें स्वका चेतन करें तो परमार्थसें वह ज्ञान चेतन है। परको या विकल्पको चेतने वाला ज्ञान परमार्थसें चेतन नहीं। जैसें आनन्द गुणके आनन्दके परिणमनकी अवस्था जगे तो वह आनन्द है, इष्ट अनिष्ठ विकल्प रूप से सुख और दुःख रूप परिणमे तो वह आनन्द नहीं!

रे प्यारे! तू चेतन बना रह, अचेत न होओ, अचेतन मत बन, जड़ मत बन।

अहो मैं किसी पर्याय रूपात्मक नहीं यह तो अभी नष्ट होती है, कोई पर्याय दूसरे क्षण भी तो परमार्थसे टिकती नहीं। मैं यह सब कुछ नहीं। मैं ज्ञानमात्र अपनेको अनुभव करूं उस समय जो सम्पूर्ण प्रदेशोंमें परम निराकुलता रूप अनुभव जो होता है उसे मैं विकल्पमें उठाऊं तो पीछे कह सकता हूं कि मैं कौन हूं। सदा रहने वाला सब पर्यायोंमेंसे गुजरता हुआ एक ज्ञायक स्वभाव हूं। यद्यपि मैं पर्याय शून्य कभी नहीं रहूंगा किन्तु पर्यायों का तो व्यय होता रहता है। मैं किसी पर्याय रूप नहीं।

ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ ॐ ॐ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि।

http://www.jainkosh.org

१२ जुलाई १६५७

एक एक करके सर्व द्रव्य स्वतन्त्र हैं। प्रत्येककी सत्ता स्वयं और परिपूर्ण है। कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यकी कृपासे नहीं है।

मैं सर्व अन्य द्रव्योंसे भिन्न हूं। मकानसे, धनसे, परिवारसे तो प्रकट जुदा हूं। शरीरसे भी जुदा हूं। आत्मामें जो रागादि है उससे जुदा हूं। किसी भी पदार्थके बारेमें जो विचार उठता है उस विचारसे भी जुदा हूं। किसी भी अन्य तत्वों पर जो ध्यान जमता है उससे भी जुदा हूं। अपने आत्मामें जो अन्य अनेक गुण हैं उसपर उपयोग लगाता हूं तो उस उपयोग से भी मैं जुदा हूं।

केवल निज चैतन्य सामान्य स्वभावके ही ज्ञानमें उपयोग लगाता हूं तो वह ज्ञान पर्याय सामान्य निर्विकल्प चैतन्यमें समानेके कारण निर्विकल्प ज्ञानोपयोग हो जाता है। वह ज्ञान चेतन है और उसका जो विषय है वह मैं हूं।

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ } ॐ तत्सत्

मैं यह ॐ द्वारा वाक्य, तत् रूपमें ध्येय, सत् रूप ॐ तत्सत् हूं।

आत्मन्! इतना धैर्य प्राप्त करो कि जगत किसी रूप परिणमे, कोई प्रतिकूल चले अथवा अनुकूल चले, कुछ भी किसीकी चेष्टा हो उस सबको पर समझकर उसपर लक्ष्य न रहे, ज्ञान भी जाय तो ज्ञाता द्रष्टा रहकर क्षोभ से परे हो जाओ।

१३ जुलाई १६५७

आज राजपुर (देहरादून) में वर्षायोग प्रतिक्रमण किया। राजपुरसे ८ मील चारों ओरका क्षेत्र सीमाबद्ध किया, केवल पूज्य श्री बड़े वर्णी जीका यदि समाधिकालकी शल्यसे हो या सूचना मिले तो वहां याकोहरमा जानेकी छूट रखी। ध्यानयोग बढ़ानेके लिये यह स्थान विशेष अच्छा रहेगा। राजते स्वयं स्वस्मिन् इति राजा। राज्ञ पुरम् इति राजपुरम्। जो स्वयं स्वयंमें शोभायमान हो, विराजमान हो, स्थित हो वह है राजा।

एकान्तका बड़ा महत्व है किन्तु इसके योग्य बनानेको विशिष्ट ज्ञान-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बल होना चाहिये।

कोई नहीं जानता इस अभिप्रायसे किया गया पाप विशिष्ट पाप बनता है। फिर यह सोचना तो गलत ही है कि कोई नहीं जानता। अनन्त सिद्ध तो जानते ही हैं। रे मूढ साधारण लोग जानेंगे उसका तो तुझे खौफ हो और अनन्त प्रभु जाने उसका कुछ खौफ न हो तो ये तेरी अतिधृष्टता है।

पापका अर्थ बुरा नहीं किन्तु अपेक्षा अन्यकी हो जानेसे बुरा अर्थ हो गया है।

पाप कहते हैं पाति रक्षति आत्मनं शुभात् पुण्यात् इति पुपापम्। जो शुभ से बचावे पुण्यसे बचावे उसे कहते हैं पाप। वह कार्य जो कल्याणसे दूर करे उसे भी पाप कहते हैं। इस अर्थसे लोकमें जिसे पुण्य कहते हैं वह भी पाप हो जाता है।

१४ जुलाई १९५७

यहां का स्थान शान्तिका वातावरण है। मौनव्रत अनेक संयमोंका साधन है, मौनव्रत भी एक संयम है। मौनमें यह इच्छा भी न हो कि ये हमारा यह अभिप्राय समझकर यह काम कर दें और न कोई संकेत हो तो मौनका फल मिलता है।

वास्तवमें मौनका अर्थ तो है मुनि संयम। मुनेर्भावः मौनम्। मुनिके मुनित्वको मौन कहते हैं। किन्तु मुनिके मुनित्वमें लोगोंको वचन न बोलना सुगमतया प्रतीत हुआ अतः मौनका अर्थ है रूढ़ हुआ मुंह न बोलना और मुंह न बोलनेके अतिचार माने जाने लगे संकेत करना आदि।

मौनका अर्थ ज्ञानोपयोग है मुनेरिदं मौनं मुनिका यह ज्ञान मौन कहलाता है। मुनि शब्द भी मनु अवबोधने धातुसे बना है जिससे मुनिका अर्थ होता है ज्ञानी। तब मौनका अर्थ होता है ज्ञानीका ज्ञान। ज्ञानीका ज्ञान यह है कि ज्ञानीके निज त्रिकाली ज्ञान सामान्य स्वभावको ओर ढला हुआ उपयोग। इस अर्थकी अपेक्षा यह ठीक है कि मौन बिना संसार सागर पार नहीं किया जा सकता। विकल्पके विकल्पोंका जनक निमित्त रूपसें बाह्य समागम है। बाह्य समागम छोड़कर यदि एकान्तमें बासकर निज चैतन्य स्वभावकी उपासनामें उपयोगको लगाया जावे तो इस आत्माका सदाके लिये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दुःख का मूल मिट जावे।

इस परिणाममें विभाव अधिक बस रहा है इसका हेतु है मलिनताकी योग्यता और बाह्य उसके अनुकूल समागम। मलिनताकी योग्यता मिटानेको है द्रव्यानुयोग और उस अनुकूल बाह्य समागम मिटानेको है चरणानुयोग। दोनोंका आश्रय लेकर आगे बढ़ो।

१५ जुलाई १९५७

सम्यक्, समीचीन, समरस और सुफलविपाक समाधिभाव है। समाधिभाव की सिद्धि करो। एतदर्थ जो बने उसे करो। एक बार भी सर्व विकल्प त्याग निज चैतन्य स्वभावकी भावना करले तो संसारके जन्म मरणके दुःखोंका अन्त होवेगा ही इसमें संदेह नहीं। एक बार भी समाधिभाव पा जाने पर फिर मिट भी जाय तथापि मिट जानेके अन्त होवेगा ही और समाधि-भाव पाकर दुःखोंसे मुक्त होवेगा ही।

हे सम्यग्दर्शन! जयवंत होओ। तेरे गुणके विकासके प्रभावसे आकुलता नागिनका विष दूर होता है।

हे सम्यग्ज्ञान जयवंत होओ तेरी ही तो सर्वत्र महिमा है। ज्ञानके प्रतापसे ही यह संसार जीता जाता। ज्ञानमें सम्यक् और मिथ्यापन स्वभावतः नहीं है। ज्ञान तो ज्ञान ही है। संसारसे छूटनेका सबसे पहिले पुरुषार्थ इस ज्ञानका होता। यदि ज्ञान पर औपचारिक ही मिथ्यापन न लगा होता कदाचित् साक्षात् मिथ्यापन होता तो बतावो फिर संसारसे छूटनेका उपाय कैसे बनता।

हे सम्यक् चारित्र! जयवन्त होओ। तेरी पूर्णता विना तो पूर्ण शुद्ध कहला ही नहीं सकता। तेरी पूर्णता जहां हो जाती है वहां फिर संयम, असंयम, संयमासंयमका विकल्प भी नहीं रहता। सहज शुद्धता, सहज संयम, सहज वर्तना रह जाती है।

हे शुद्ध स्वभाव जयवन्त होओ। तेरे ही अवलम्बन से, तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र होता है, बढ़ता है और पूर्ण होता है।

१६ जुलाई १९५७

Version 1

हे विज्ञान घन! हे आनन्द घन, हे परमपारिणामिक भावमय! तेरा

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहारा ही सत्य सहारा है। तेरी उपासना ही मेरे सहज आनन्दका उपाय है।

स्वाध्याय इस ही के अर्थ किया जाता अर्थात् स्वाध्याय सत्य शान्तिके अर्थ किया जाय याने स्वाध्याय सर्व दुःखोंसे मुक्ति पानेके लिये किया जाता है।

किन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करना चाहिए ? यदि समय हो तो जो भी ग्रन्थ तुम्हें दिखें सबका स्वाध्याय कर लो। किसी भी मतका कोई ग्रन्थ न छोड़ो। निष्पक्षतासे सबका मनन कर लो। तुम स्वयं जान लोगे कि किस स्वाध्यायसे हम अपनी शान्ति पा सकते हैं।

तुम ज्ञानमय हो ज्ञान ही तुम्हारा शरीर है, अपने स्वभावके रुचिया बनो उसकी ओर उन्मुख होओ, क्या होगा उसका तुम्हें क्या करना। जानना ही है तो देखो बतायें। इससे पहिले एक बात बतादें, जाननेकी जो इच्छा है वह स्वभावके उन्मुख नहीं होने देगी। अब सुन लो और फिर भूल जावो, जानोगे तुम बिना रुकावटके सब कुछ।

तुम आनन्दमय हो, अपने आनन्द स्वभावकी ओर ढलो। आनन्द तो तुम्हारे लिये तैयार ही बैठा है। तुम उसकी ओर देखते नहीं हो और आनन्दको ठुकराते हो।

ॐ सच्चिदानन्दाय नमः, ॐ तत्सत्, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१७ जुलाई १९५७

सत्य सत्य ही रहता। असत्यको सत्य मानना और सत्यको असत्य मानना ये मोहियोंकी कल्पनामात्र है।

मूर्ख, आलसी, दुराचारी, कृतघ्न, ईर्ष्यालु व निन्दनशील पुरुषोंका समागम दुःखकारी होता है।

श्रीमज्जिनन्ददेवकी आज्ञा है कि कषाय भाव न आने दो। सबसे बड़ी विपत्ति कषाय भावोंका आना है। जगतके अन्य पदार्थ किसी भांति परिणमे वह विपत्ति नहीं है, उससे तुम्हारा क्या परिणमन होगा। कषायें तो तत्काल ही तुम्हें संक्लेश, विकल्प आदिके कुफल दे चले जाते और आगेकी कषायों को निमन्त्रण दे जाते।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि कषायको साक्षात् नहीं जीत सकते तो भेद विज्ञानका शरण लो किन्तु कषायकी छायामें कभी शरण न मानना। कषायसे भयंकर अन्य विपत्ति नहीं।

भेदविज्ञानके शरणका सरल उपाय यह है—कि देखो, आत्माके अनेक गुणोंमें ज्ञान और चारित्र भी गुण हैं। कषायें चारित्रगुणका विकार है, उन्हें ज्ञान स्वीकार कर लेता है तो आपत्ति होती है। ज्ञानगुण स्वतन्त्र है, कषायके परिणमनसे उपयोग नहीं परिणमता, उपयोगके परिणमनसे कषाय नहीं परिणमती। कषाय चारित्रगुणकी पर्याय है, उपयोग ज्ञानगुणकी पर्याय है। चारित्र गुणका जो परिणमन होता है होने दो, तुम ज्ञानगुणका यथार्थ उपयोग करो। कषायें होती हैं उनके ज्ञाता द्रष्टा हो जाओ।

ये कषायें कर्मोदयके विपाकवश उत्पन्न हुई हैं, मेरे स्वभाव नहीं है। यह तो मैं टङ्कोत्कीर्णवत् निश्चल एक ज्ञायक स्वभावमय हूं।

१८ जुलाई १९५७

इन्द्रिय विषय विपत्तिका मूल है। है तो स्वयं विपत्ति किन्तु मोहमें उस समय मोहीको विपत्ति नहीं मालूम होती किन्तु उत्तरकालमें वो वह कह उठता है कि इन्द्रिय विषय सेवनसे मेरी यह विपत्ति हुई है।

सर्व विषयोंमें भयंकर विषय स्पर्शन इन्द्रियका है। स्पर्शन इन्द्रियके विषयोंमें भी भयंकर विषय उपस्थका है याने मैथुन विषय सर्व विषयोंमें भयंकर विषय है। इस विषयके सेवनसे शरीर, वचन और मन तीनोंकी बरबादी होती है, जो होता है उस सर्वस्वकी बरबादी हो जाती है, लौकिक सुख खाने, पीने, निरोग रहनेके नष्ट हो जाते हैं। लोकप्रतिष्ठा, इज्जत, यश, कीर्ति, कान्ति, प्रताप भी नष्ट हो जाते हैं।

जिस मनुष्यको अपना कल्याण करना है उसे ब्रह्मचर्यव्रत पूरा पालन करना चाहिये। यदि ब्रह्मचर्यव्रत मनसे सध गया तब तो त्याग है, सन्यास है, साधुता है, मोक्ष मार्ग है। यदि ब्रह्मचर्यकी सिद्धि नहीं है तब तो गृहत्याग, तप, उपवास, व्रत, विद्वत्ता, वक्तृत्व आदि सब व्यर्थ हैं।

१९ जुलाई १९५७

Version 1

आनन्दके लिये जीवको प्रयास नहीं करना है, क्योंकि जीव आनन्दमय

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो स्वयं ही है। केवल यथार्थ बात जान लेनी है ताकि दुःखमें सुखकी भ्रान्ति मिट जावे। यह उपाय ज्ञान व ध्यान द्वारा साध्य है। शरीरकी क्रियाका फल तो शरीरमें तत्काल होता है और चेतनकी क्रियाका फल चेतनमें तत्काल होता है।

जिस वस्तुमें क्रिया होती है उस क्रियाका फल उस वस्तुमें उस रूपसे परिणम जाता है वह उसी समय हो जाता है। आत्माके जो जब उपयोग होता है उसका फल उस आत्मामें उस प्रकारकी जानकारी हो जाना और उस योग्यताके अनुकूल सुख दुःखका संवेदन हो जाना है वह उसी समय हो जाता है।

आजके भावको निमित्तमात्र करके बन्धको प्राप्त हुए देवायु देवगति आदि प्रकृतियोंका भविष्यमें जो उदय आवेगा उस भविष्यकालमें जो भाव होगा वह आजकी क्रियाका फल नहीं है। वह तो जिस समय होगा उस ही समयके उपयोगका फल है। उस कालमें कर्मोदयको निमित्तमात्र पाकर उस कालकी योग्यताके अनुकूल नवीन भावका आविर्भाव होगा।

चूंकि उस नवीन भावका निमित्त है उस कालका कर्मोदय। और, वह कर्म जो कि उदयमें आया है वह बहुत समय पहिलेसे सत्त्वमें है। कर्मोंका सत्त्व बन्धके बिना नहीं होता है। उस कर्मका बन्ध आजके भावको निमित्त पाकर हुआ है। इस निमित्त परम्पराके सम्बन्धकी दृष्टि कर ऐसा लोक व्यवहार हो गया है कि आज किये तप व्रतका फल आगे स्वर्गमें मिलेगा।

ॐ सत्त्वहितङ्कराय सत्स्वरूपाय स्वस्ति।

२० जुलाई १६५७

उपाधिवश जैसा स्फटिक या सुवर्ण नानारूप परिणमता है, तैसे कर्म उपाधिवश आत्मा नाना रूप परिणमता है, जैसे उपाधिवश हुई सुवर्णकी नाना अवस्थावोंमें शुद्ध स्वर्णके पारखी अशुद्ध सोनाको सोना शब्दसे न कहकर चांदी है, तांबा है, मिट्टी है, पत्थर है आदि शब्दसे व्यवहार करते हैं, वैसे उपाधिवश हुई आत्माकी, भावमन (मन) अहङ्कार, बुद्धि आदि नाना अवस्थावोंमें शुद्ध आत्माके पारखी उस विकृत आत्माको आत्मा शब्दसे न कह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

कर जीव, प्राणी, जन्तु, मन, बुद्धि आदि शब्दोंसे व्यवहार करते हैं।

जैसे अशुद्ध स्वर्णमें भी स्वर्णका जैसा स्वरूप है उस स्वरूप दृष्टिसे वह शुद्ध स्वर्ण अब भी है, वैसे अशुद्ध आत्मामें भी आत्माका जैसा सहज स्वरूप है उस स्वरूप दृष्टिसे वह शुद्ध आत्मतत्त्व अब भी है।

जैसे विवक्षावश शुद्ध स्वर्णत्वको सुवर्ण कहकर उसे अशुद्ध नहीं कहा जा सकता वैसे अभिप्रायवश शुद्ध आत्मतत्त्वको आत्मा कहकर आत्माको अशुद्ध नहीं कहा जा सकता है।

जैसे शुद्ध स्वर्णत्वसे अशुद्धस्वर्णत्वकी भेदविवक्षा करके यह कहा जाता है कि सुवर्णपाषाण आदि ही तप्त किये जाते हैं सुवर्ण नहीं, वैसे आत्मद्रव्यसे अशुद्ध आत्माकी भेद विवक्षा करके यह कहा जाता है कि जीव, मन आदि ही दुःखी होते हैं, आत्मा दुःखी नहीं होता है।

२१ जुलाई १९५८

मनको बुद्धिमें लीन करो, बुद्धिको आत्मामें लीन करो, आत्माको परमात्मामें लीन करो। यह बात उत्तम है। किन्तु इस पर यह विचारना है कि मन, बुद्धि, आत्मा व परमात्मा ये अलग अलग चार चीज हैं अथवा एक चीजकी ये चार लीलायें हैं।

यदि उक्त चार बिलकुल अलग अलग चीज हैं तो इनमेंसे कोई भी किसी अन्यमें लीन नहीं हो सकता है। क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें लीन नहीं हो सकता। कदाचित् दो द्रव्य समान अवस्थाके कारण पथक पहिचान में न आवें तब भी वे अलग अलग ही हैं चाहे क्षेत्रावगाह भी क्यों न हो जावे। यह वैज्ञानिक नियम भी है अतः ये चार सवर्था स्वतन्त्र एक एक वस्तु नहीं हैं।

यदि उक्त चार चीज एक द्रव्यकी लीलायें हैं तो वह एक कौन है व लीलायें कैसे होती हैं? वह एक वस्तु चेतन है जिसे आत्मा कहते हैं। उक्त चार चीजोंमें जो आत्मा शब्द आया है उस आत्मासे मतलब निर्विकल्प समाधिस्थ आत्मासे है।

तब उक्त चारों की परस्पर लीनताका शुद्ध तात्पर्य यह हुआ कि क्षोभको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
विवेकमें लीन करो विवेकको योगमें लीन करो और योगको सर्वज्ञत्वमें लीन करो।

कर्म उपाधिके निमित्तसे आत्माकी मन (भावमन) रूप अवस्था होती है। कर्म उपाधिकी शिथिलता होनेसे आत्माकी बुद्धिरूप अवस्था होती है। कर्म उपाधिके अत्यन्त शिथिल होनेसे योग (समाधि) रूप अवस्था होती है। कर्म उपाधिके नष्ट होनेसे सर्वज्ञत्वकी अवस्था होती है।

२२ जुलाई १९५७

द्रव्यमें नवीन अवस्था होने पर पूर्व अवस्था उसही द्रव्यमें लीन हो जाती है क्योंकि पूर्व अवस्था द्रव्यसे बाहर कहीं जाती तो है नहीं और उस द्रव्यमें भी विकसित है नहीं अतः वह द्रव्यमें लीन कही जाती जिसका सीधा अर्थ यह भी कह सकते हैं पूर्व अवस्था तो रूप परिणमा हुआ द्रव्य अब इस नवीन अवस्था रूपसे परिणम गया है।

इसी न्यायके अनुसार भावमन याने मन अथवा क्षोभरूप परिणमा हुआ आत्मा ज्ञान बल से बुद्धि याने विवेक रूप परिणम जाता है और विवेक, बुद्धि रूप परिणमा हुआ आत्मज्ञान बलसे योग रूप अर्थात् निर्विकल्प समाधि रूप परिणम जाता है व अन्तमें निर्विकल्प समाधिरूप परिणमा हुआ आत्मा परमात्मारूप परिणम जाता है।

उक्त उन्नतिके अर्थ पुरुषार्थ एक ही किस्मका है—वह है निज चैतन्य स्वभावका आश्रय। यह आश्रय आरम्भ अर्जन व फलरूपमें तीन प्रकारका होता है (१) चैतन्यस्वभावकी रुचि, (२) चैतन्यस्वभावका उपयोग (३) चैतन्य स्वभावके अनुकूल परिणमन।

चैतन्यस्वभावकी रुचिके अर्थ चैतन्य स्वभावमय आत्मा व इसके समागममें लगे हुए शरीर, कर्म एवं औपाधिक प्रभाव रूप रागद्वेषादिक इनका स्वरूप और अन्तर जानना होगा। इस स्वरूप और अन्तरको समझते हुए ही किसी समय चैतन्य स्वभावमय आत्माका स्वरूप ज्ञानमें प्रकट भास जाता है उसी समय चैतन्य स्वभावका निःशङ्क विश्वास और सत्यरुचि प्रकट हो जाती है।

इसके पश्चात् चैतन्यस्वभावका ही उपयोग बनाये रहनेमें यह महात्मा
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निरंतर उद्युक्त रहता है। कदाचित् अन्य विषयमें उपयोग चला जाय तब भी चैतन्य स्वभावकी प्रतीति और रुचिसे च्युत नहीं होता जिससे वह यथा शीघ्र चैतन्य स्वभावका उपयोग (ज्ञानवृत्ति) करने लगता है।

२३ जुलाई १९५७

चैतन्यस्वभावके निरन्तर उपयोगसे चेतन निर्विकल्प समाधिकी ओर जाता है तथा बार बारके इस पुरुषार्थसे यथा शीघ्र निर्विकल्प समाधिस्थ हो जाता है। यह निर्विकल्प समाधि पहिले तो कुछ बार हो होकर छूटती है फिर होती है किन्तु अन्तमें उचित लम्बे समय तक निर्विकल्प समाधि होने पर चेतनका चैतन्य स्वभावके अनुकूल परिणमन हो जाता है। इस ही को परमात्म-अवस्था कहते हैं।

संसार असार है नानाक्लेश पूर्ण है। इस असार संसारमें भ्रमण करते हुए सुयोगसे आज मानवजन्म पाया है जिसमें मन अन्य गतियोंके सर्व जीवोंसे श्रेष्ठ होता है। अब अपना विवेक प्रकट करें। अन्यथा बिना पता बिना सीमाके कीट, वृक्ष आदि जैसें भी कुत्सित योनियोंमें भ्रमण कर दुःखी रहना पड़ेगा।

हमें ज्ञानबलके द्वारा उत्तरोत्तर उन्नत कलाओंसे गुजर कर परमात्म-अवस्था प्राप्त करना चाहिये।

इस योग्य ज्ञान प्राप्त करनेके लिये निम्नांकित विषयों पर अधिकार पा लेना चाहिये: —

(१) वस्तु स्वरूप, (२) आत्मस्वरूप, (३) कर्म स्वरूप, (४) आत्म लीलायें, (५) कर्म लीलायें, (६) सामान्य दृष्टि, (७) विशेष दृष्टि, (८) स्वरूप स्वतन्त्रता, (९) निमित्त नैमित्तिक भाव, (१०) निरंशको अंश रूपोंमें बताने के प्रयोजन और अभिप्राय, और (११) परमात्म अवस्थाका स्वरूप।

हमारे पूर्वज महर्षि बड़ी तपस्यावोंके बल पर अनुभव प्राप्त करके सार तत्त्व और उन्नतिके उपायोंको बता गये हैं वे उनके ही प्रणीत ग्रन्थोंमें लिखित हैं। हम उनके उपयोग करनेमें प्रमादी न रहें। उन्हें जानकर व उन उपायों पर चलकर हम दुःखोंसे छुटकारा पालें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२४ जुलाई १९५७

समय निकलने पर यह कल्पना होती कि समय जाना ही नहीं गया। अब तक अनन्तकाल बीत गया है वह ऐसा लगता कि जाना ही नहीं गया। इस भवके इतने वर्ष गुजर गये वह ऐसा ही लगता कि जाना ही नहीं गया। तो जिस आयुकी उम्मीदकी जा रही है वह क्या व्यतीत नहीं होगी। वह क्या ऐसा न लगेगा कि जाना ही न गया। जो बात हम औरोंकी देखते हैं अन्त वाली, क्या उससे हम कभी बच सकते हैं।

सत्य निज स्वरूप जानो, उसमें ही मग्न रहो। अच्छा क्या कहलाता है, अच्छा कैसे होता है, सब यह अपने आप हो जायगा। तुम अन्य विकल्प न करो। विकल्पोंसे काम कुछ न सरेगा। निर्विकल्प परम समाधि इस ही सीधे काममें है कि आत्मस्वरूप जानो और ऐसा ही लखते रहो।

संसार टेढ़ा काम है उसे तो मोहियोंने सीधा मान लिया है। निजभान, निजज्ञान, निज आनन्द स्वयं स्वरूप भी है फिर भी बड़ा टेढ़ा मालूम होता है मोहियोंको।

कुछ न करना तो कठिन दीखता और अनहोनी करना सरल दीखता। देखो तो कितना अन्धेर है।

२५ जुलाई १९५७

पक्षोंको छोड़कर निज कक्षामें रहो।

शिक्षा पाकर शिक्षाकी दीक्षा लो।

परकी भिक्षा छोड़कर आत्माकी रक्षा करो।

लक्ष ग्रन्थोंको लक्ष्यभूत निजतत्त्वकी दृष्टिकी दक्षता प्राप्त करो।

२६ जुलाई १९५७

ब्राह्म मुहूर्तमें बुद्धिकी स्वच्छता रहती है। अतः ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेमें कभी प्रमाद किसी भी मनुष्यको नहीं करना चाहिये।

छोड़नेकी चीज ५ हैं–१ मिथ्यात्व, २ क्रोध, ३ मान, ४ माया और ५ लोभ।

पर पदार्थमें आत्मबुद्धि करना व परको अपना मानना मिथ्यात्व है। चाहे कितना भी बड़ा विज्ञान हो जाय, यदि वस्तुकी स्वतन्त्रताकी प्रतीति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं है तो आकुलताका अभाव होना असम्भव है। क्योंकि, परका परके आधीन परिणमन माननेकी बुद्धिमें, इस संयोगाधीन दृष्टिमें आयोग स्वसे च्युत रहेगा ही और आनन्दमय स्वसे च्युत रहनेकी दशामें आनन्दका कैसे उचित विकास हो सकता है।

http://www.jainkosh.org

क्रोध गुस्साको कहते हैं, गुस्सेमें मनुष्य अपना सर्व कुछ गुण खो बैठता है मानों गुस्सेकी आगमें गुण भुन जाते हैं।

मान घमण्डको कहते हैं, दूसरोंको तुच्छ मानते हुए अपनेको बड़ा समझना घमण्ड है। घमण्डमें भी जीवकी सुध बुध बिगड़ जाती है। सबको बड़ा समझते हुए अपनेको बड़ा समझना गर्वमें शामिल नहीं है, उसे तो गौरव कहते हैं।

माया छल, कपटको कहते हैं। मनमें अन्य बात है, वचनमें अन्य बात है, करनेमें अन्य बात है वह सब छल है। परिग्रही जीव विषय कषायके संकल्पसे ऐसा करता है।

लोभ लालच व तृष्णाको कहते हैं। लोभ पर पदार्थके विषयमें होता है। उक्त पांचों कुतत्व हुये हैं।

२७ जुलाई १९५७

तत्त्वज्ञानही सार तत्त्व है। यही मोक्ष मार्ग है। यह तत्त्वज्ञान जब होगा होलेगा, पहिले तत्त्वज्ञानकी भक्तिमें ५ पापोंका त्याग तो कर ही देना चाहिये। पांच पापोंके त्याग बिना तत्त्वज्ञानकी पात्रता नहीं होती। पर जीवोंकी हिंसावों का संकल्प रखने वाला जीव समस्त पर पदार्थोंसे भिन्न निज शुद्ध आत्मतत्त्व की दृष्टिका कैसे पात्र हो सकता है।

असत्य अहित घटनावोंके बनानेके अभिप्राय जालमें उलझा हुआ जीव निज सरल स्वभावका ज्ञाता कैसे हो सकता है।

परधन हरनेकी धुन रखने वाला जीव निज वैभवकी कैसे कद्र कर सकता है।

पराधीन परस्त्रीसंगमकी वासना वाले हृदयमें स्वाधीन सहज तत्त्वका वास कैसे हो सकता है।

अत्यन्त भिन्न समस्त पर पदार्थोंका सत्यस्वरूप न समझकर उनकी ओर

Version 1

आकर्षित रहने वाला जीव अपना निज शुद्धात्मतत्त्वको कैसे उपलब्धि कर सकता है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अतः ज्ञान विशिष्ट हो अथवा न हो, पांच पापोंके त्यागको प्रत्येक मन वाले जीवको कर ही देना चाहिये।

२८ जुलाई १९५७

मेरा ज्ञान मुझसे प्रकट हुआ यह बात पूर्ण सत्य है। मैं ज्ञान स्वभाव हूं, ज्ञान स्वभावका ही विकास होना है। वह ज्ञान स्वभावसे ही होता है। यदि कहो कि बाह्य प्रयत्न बिना कैसे विकास होगा। तो भाई क्यों भ्रम और श्रम करते हो, बाह्य प्रयत्नको चिकीर्षा ज्ञान विकासमें बाधक है।

२९ जुलाई १९५७

यह आत्मा असहाय पक्षीकी तरह फड़ फड़ाता है। कब तक ? जब तक यह निज निर्विकल्प चैतन्य स्वभावका आश्रय नहीं करता।

निज स्वभावका आश्रय करके बने उपयोगमें प्रति पहिले ऐसा लोग मानेंगे कि यह तो ज्ञानकी कंजूसी हुई, जो ज्ञान विकास था उसकी ही अवहेलना कर दी। किन्तु इस केन्द्रीकरण विधानमें उद्योग रहा तो सहज ही ऐसे व इतने ज्ञानका विकास हो जाता है जो यहांके माने हुए ऊंचेसे ऊंचे प्रयत्न, परिश्रम, युक्तिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता।

रुको, यह तो बतावो कि तुझे ज्ञान बढ़ाना है कि शान्ति पाना है। ज्ञान बढ़ जाता है इस दृष्टिको रखकर केन्द्रीकरणका यत्न करोगे तो यह यत्न होगा नहीं। अभिप्राय साफ करलो, सब इच्छायें मिटा लो फिर यत्न करो शान्ति मिलेगी, अन्य लाभकी चर्चा ही मत करो।

आत्मा शाश्वत है, अनाद्यनन्त, शिवमय, अयोनिज, सनातन, परम आनन्दका स्रोत है।

जैसे आत्मा ज्ञानके आंशिक विकासमें अथवा जिसको ज्ञेयरूप निमित्त करके विकास हुआ है उस पदार्थके रागमें अटक कर ज्ञानव विकासका घात करता है—

वैसे आत्मा अपने परिपूर्ण आनन्द स्वभावको भूलकर आंशिक या विकृत आनन्द विकासमें अथवा जिस पदार्थको विषय बनाकर आनन्द गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का विकास किया उस पदार्थमें अटकर आनन्द गुणके विकासका घात करता है।

३० जुलाई १९५७

आत्मा आनन्दमय है। आनन्दके लिये परकी आशा मत करो सर्व आशावोंका परित्याग कर विश्राम किया जावे तो वहां सहज आनन्द प्रकट होता है। वह स्वाधीन है, आत्मीय है अतः इसके भोगमें कभी परसे बाधा की संभावना नहीं। यदि यह खुद ही अपने वैभवको बरबाद करे तो उसका इलाज किसीके वशका नहीं।

कुछ विवेक कर और अपना आनन्द भोग।

जगतकी ओर कुछ नहीं देखना है, तू स्वतन्त्र है, ज्ञानानन्दरस निर्भर है। एक यथार्थ विवेक कर और सदाको सुखी होहु।

हे प्रिय निष्क्रिय! संसारके दुःखोंसे बचनेका उपाय बना लेनेको मनुष्यभव आता है। इसका लाभ उठा सके तो उठा।

रे चेतन! तू सत्य माननेमें तभी तो चेतन है जब चेतन को चेते। अन्य सब जड़ पदार्थ तो सर्वथा अचेतन है हीं किन्तु तेरे लिये अन्य चेतन भी अचेतन हैं क्योंकि वे तुझे चेतते नहीं हैं। रागादि भाव भी अचेतन हैं क्योंकि उनमें तो किसीको चेतनेकी शक्ति नहीं है। इन सबसे प्रीति छोड़कर एक निज ध्रुव चैतन्य स्वभावको चेत, मान, तेरा बेड़ा पार हो जायगा। यही चैतन्य स्वभाव ब्रह्मका तुरीयवाद है! यही चैतन्य परमात्मा है जिसके बारेमें यह बात प्रसिद्ध है कि परमात्मा घट घटमें रहता है। चिच्चमत्कारमात्र निज परमात्माको चेत।

३१ जुलाई १९५७

सर्वजीव चैतन्यभाव करि समान हैं-इस दृष्टिके होने पर परम समता प्रकट हो जाती है।

प्यारे! परमें तो तेरी कुछ करनी होती नहीं है सो कुछ करना शेष रहा ही नहीं अब तो निछक्के हो, लो, अब अपना एक काम करते रहो-सब जीव चैतन्यभाव करि समान हैं सो सबमें चैतन्य देखते रहो। सामायिक चारित्रकी अमोघताका यह प्रथय मूल उपाय है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रे आत्मन् ! अपूर्णतामें अपना जाना हुआ मार्ग सही है और हमारा कदम सही है इसके निर्णयके लिये और जो आत्ममार्गमें कर्मोदयवश भाव की विपदायें आती हैं उनके परिहारके लिये गुरुशरण आवश्यक है।

जो बिना गुरुके ही अपनी मनजची वृत्तिके अनुसार चलते हैं वह बाह्यमें यथार्थ भी हो तो भी अन्तरमें विनय तप न होनेसे अपने लिये भारभूत होते हैं।

किसीको बड़ा मानकर अपनी वृत्ति बनानेमें कषायों पर विजय पानेमें सुगमता रहती है।

यह मोहका ही परिणाम है कि प्राचीन श्रुत कथावोंके आधार पर जिन बातोंसे अपनी महत्ता लोकके लिये समझ ली उनका तो अनुकरण होने लगता है किन्तु भाव, वीर्य, आदिकी समताका कुछ हिसाब नहीं देखा जाता।

अविकारी, अविहारी, अप्रहारी, उद्धारी, सर्व परिहारी, निज चैतन्य स्वभावकी अभेदभक्ति परम शरण है।

१ अगस्त १९५७

हे आत्मन् तू तो चैतन्य मात्र है, परके विकल्पोंको करके क्या कुछ स्वरूपसे अधिक बन जावेगा। परसे ज्ञान व आनन्दकी आशा करके अपनेको गुणोंमें भी अधूरा समझता है। जो अधूरा है वह असत् है, है ही कुछ नहीं। अपने सत्य पर विश्वास न करके क्या सत्यज्ञान आनन्द कभी भी पा सकता है।

हे आत्मन् ! तू ज्ञानमय है अपने पूर्ण स्वभावको देख, अपने स्वभाव का लक्ष्य कभी न छोड़। यहां अन्य कोई सहाय नहीं और तेरी अन्य करतूत भी तेरी सहाय नहीं। स्वभाव दृष्टि, स्वभाववलम्बन यह तेरेको सहाय है, रहेगा।

प्रिय श्रेय ! तू अपने परिपूर्ण ज्ञान स्वभावकी दृष्टि छोड़कर यदि इस ही स्वभावके आंशिक विकास रूप किसी पदार्थके जाननेमें उस पदार्थमें राग करके अटक जायगा अथवा जो ज्ञान विकास हुआ है इतना ही यह सब मैं हूं इस प्रकारकी प्रतीति करके अंशको ही सर्व स्वयं समझकर अपनी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खबर छोड़ देगा तो उसके फलमें आगेका विकास रुक जायगा, कम हो जायगा, और सम्भव है कम होकर इतना कम हो जाय कि कुछ इन्द्रिया-वरणोंका क्षयोपशम भी कम होजाय फिर तो विकलमथ स्थावर जन्मोंमें रहकर सड़ते रहना होगा ।

रे प्रिय ! मन तेरा कुछ नहीं है, चाहे तो मनके आश्रय बिना, तू ज्ञाता बना रहे । यह कलकी बात नहीं कहते, आजकी ही बात बताते हैं ।

२ अगस्त १६५७

खोटे भाव होना ही विपत्ति है, अन्य पदार्थका कुछ भी परिणमन करना विपत्ति नहीं है ।

आत्मा पर असर आत्माके भावका ही होता है, किसी अन्य पदार्थका नहीं होता । हां, आत्माके कुछ भाव ऐसे होते हैं कि वे परको निमित्तमात्र पाकर बन पाते हैं ।

किसी भी परकी कैसी ही परिणति हो, तुम अपने मुक्ति पथसे विचलित न होओ । तुम अपने पवित्र कर्तव्यसे विचलित हुए तो इसका फल तुम्हें ही भोगना होगा ।

मनुष्य जन्म और उसमें भी इतने ज्ञानका विकास जो कि भेदविज्ञान में समर्थ है, पाकर यदि प्रमाद किया तो प्यारे ! इस अथाह संसार सागरमें गोते ही खाते रहना होगा ।

संसारके सब प्राणी स्वतन्त्र हैं, सबका अपना अपना भवितव्य है, किसीके तुम पालक नहीं हो फिर किसीके प्रति विरोधभाव रखनेका तुम्हें अधिकार ही नहीं । यदि किसीके प्रति विरोध रखते हो तो यह भाव तुम्हें संसार सागरमें गोते लगवावेगा ।

तुम किसीको भी अपने पास इस तरह न रखो कि उसे या तुम्हें यह लगने लगे कि यह अब तेरे सहारे पर है ।

कुछ भी विकल्प करना अपना घात है इसलिये बाह्य योग ऐसा बनाओ कि विकल्पोंके होने को अवकाश न मिले ।

प्रिय निज भगवान्! तुम अधिकसे अधिक काल तक दृष्टिमें रहो ताकि हित ही हित हो ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अकार्य मन करो झूठका अवसर ही न आवेगा ब्रह्मचर्यका अखण्ड रक्षण करो, तृष्णाका प्रवेश न होने दो।

३ अगस्त १९५७

आज उपवासमें अधिक आत्मलाभ देख रहा हूं। कल ११ बजे दिन से ७ बजे सुबह तकके लिये ४४ घण्टेका मौन भी सानन्द चल रहा है। आज यह प्रोग्राम अपनी अहोरात्रचर्याका बनाया है, इसके अनुसार भाद्रपद सुदी ४ तक चलना है--

प्रातः	४॥	से	५॥ बजे	तक	सामायिक
	५॥	से	७।	तक	देववन्दना, पर्यटन, शुद्धि
	७।	से	८॥	तक	प्रवचन, पाठन, वार्ता
	८॥	से	९।	तक	चरणानुयोगका स्वाध्याय
	९।	से	१०	तक	अध्यात्म शास्त्रका स्वाध्याय
	१०	से	११॥	तक	शुद्धि, चर्या, विश्राम (यदि चर्या की तो)
	११॥	से	१२॥	तक	सामायिक
	१२॥	से	१॥	तक	पत्र, डायरी या निबन्ध या संशोधन हिन्दी लेखन
	१॥	से	२।	तक	समयसार एक्सपोजीशन इंगलिश लेखन
	२।	से	३	तक	समयसारभाष्य संस्कृत लेखन
	३	से	३॥	तक	करणानुयोग स्वाध्याय
	३॥	से	४॥	तक	पाठन, तत्त्वचर्चा
	४॥	से	५।	तक	न्यायशास्त्र–स्वाध्याय
	५।	से	६	तक	नवीन भाषा साहित्याभ्यास
	६	से	६॥	तक	पर्यटनादि
	६॥	से	७॥	तक	सामायिक
	७॥	से	८॥	तक	अध्यात्म पाठ
	८॥	से	९॥	तक	भजन, व्याख्यान श्रवण, प्रवचन
	९॥	से	४॥	तक	विश्राम, ध्यान, शयन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन भी हो सकता है।

४ अगस्त १९५७

हे आत्मन्! तू है, अतः निरन्तर परिणमता रहता है। अब बता तू चाहता क्या है? परकी ओर झुककर तू अपना परिणमन ही तो चाहता होगा। परिणमन तो तेरा द्रव्यत्व नामका स्वभाव है। तू सदा परिणमता रहेगा यह तेरा अनादि कालीन बरदान है। विश्रामसे रह।

हे आत्मन्! तू सुख ही तो चाहता है। देख परकी ओर झुककर तुम मानते हो कि मैं सुखी हो गया, वस्तुतः तो इस चेष्टासे सुख में बहुमात्रकी कमी हो गई। सुख तो तेरा स्वभाव है, स्वभावकी ओर, सुखपिण्डकी ओर झुककर तो अनुभव कर तेरा अपरिमित आनन्द तुझमें अभी प्रकट होता है।

हे आत्मन् तू यह चाहता होगा कि लोगोंके समझमें मैं अच्छा कहलाऊं? क्यों ऐसा चाहते हो, लोग तेरे विधाता हैं क्या? लोगों ने कुछ तुझे वायदा कर रक्खा है क्या? क्या कुछ प्रमुखों ने जबान देदी है क्या कि हम तेरे मरने पर तेरे साथ चलेंगे? ऐसा कुछ है तो नहीं है ना। फिर ऐसी इच्छा करनेकी मूर्खता छोड़, क्योंकि इस इच्छासे तुझे तो कुछ नहीं मिलेगा उल्टा लोगोंका दास बनकर परिश्रम ही परिश्रम उठावेगा।

हे आत्मन्! तूने परका सहारा क्यों तक रक्खा है? क्या यह सोचता है कि मेरा बड़प्पन इन लोगोंकी मेहरबानीसे है? तो क्या तुझे तीन लोकके स्थानोंका परिचय नहीं है क्या सबने तुझे बड़प्पन दे रखा है। यदि कुछ बड़प्पन भी लौकिक है तो वह तेरे सदाचार रहते हुए है, कि दुराचार रहते हुए? सदाचार रहते हुए — तो सदाचारको ही बड़प्पनका कारण समझ। निज शुद्ध परमब्रह्मकी प्रतीतिकर उसकी उपासना कर, उसमें अभेद वृत्तिकर। यही निश्चयसे महत्त्वका उपाय है।

५ अगस्त १९५७

अपनी पूर्व पूर्वकी अवस्थावोंका ख्याल तो कर। जैसे इस ही जन्मकी लो, पहिले इतना ज्ञान कहां था। साधारणसे ज्ञानमें कोई सन्मान अनपमान की अवधि थी तो वह कितनी सी। तू वाह्य सम्बन्धके लिये अपनेको उतना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही समझ ले। और अपने लिये जो कुछ अधिक पाया है उसका गुप्त रहकर खूब उपयोग करले।

यह सारा जगत इन्द्र जालसा है, क्षण क्षणमें प्रत्येक पदार्थ परिणमन बदलते रहते हैं। कोई भी परिणमन दूसरे समय भी नहीं ठहरता है। यह स्थूल दृष्टिसे प्रतिभास होता है कि अमुक परिणमन इतने दिनों रहा समान अथवा कुछ समान परिणमती हुई अनेक परिणतियोंको एक सा दिखना स्थूल दृष्टि है।

सच पूछो तो यहां सम्बन्ध करने लायक कुछ है ही नहीं। जो कुछ मिलता है वह अन्य है, अत्यन्त भिन्न है, क्षणस्थायि है, बाह्य स्थित है। प्रत्येक अन्यका परिणमन उस अन्यके लिये ही है। मेरा परिणमन मेरे लिये ही है।

सर्व धर्मोंके ग्रन्थोंको देख लो जो प्राचीन चले आये हैं सबमें इसी बात को जोर है कि वस्तु स्वरूपको यथार्थ जानो। वस्तुका यथार्थ स्वरूप क्या है यह खुद ही जानना चाहे, जाने तो जान लेगा। अन्य कोई जानकर किसीको सौंप दे ऐसी बात यहां नहीं चलती।

हम किसके हैं, कौन हमारा साथी है, खूब विचार लो। यदि कुछ तुम्हारा नहीं और न कोई साथी भी है तो अबकुचले ढंगसे कल्याणपथमें प्रवृत्ति न करके पूर्ण साहसके साथ अपनेमें अपनेको प्रतिष्ठित कर सहज स्वतन्त्र धर्मका अपूर्व लाभ लो। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

६ अगस्त १९५७

मोह मार्गका ही एक उद्देश्य सदैव रहना सर्व विघ्नबाधावोंके विनाश का उपाय है। हमें परभावसे मुक्त होना है निज सहज ज्ञान आनन्दके अनुभव ही रहना है। मुझे क्या प्रयोजन है धन वैभव जड़ पदार्थोंके संग्रह से? मुझे क्या प्रयोजन है आगे देवाङ्गनाओंके भी मिलनसे? मेरा क्या प्रयोजन सधेगा सरस उत्तम भोजनसे?।

मुझे तो आखिर सर्वविविक्त निज एकत्वमें रत होना है, अब मुझे न चाहिये जड़ पदार्थ, अबसे ही मुझे न चाहिये मित्रादि संचित समागम, अबसे ही मुझे न चाहिये सरस भोजन।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

मेरा काम साधेगा मेरा ज्ञान मन्त्री। मेरा पूरा पड़ेगा मेरी आत्मदृष्टि मे। जगतके बाह्य पदार्थ मेरे कुछ भी तो नहीं हैं। बिलकुल तो पृथक् द्रव्य हैं, उनका काम उनमें हो रहा है। उनसे तुम्हें क्या और तुमसे उन्हें क्या ?

तुमने कई बार कठिन बीमारी, उपद्रव, उपसर्गके समय सोचा था कि अबके जिन्दा रहूं तो खूब धर्म करना है, वह धर्म क्या करना था सो अब तो पूरा मौका है मन भर धर्मकर, कसर रंच भी न रख। शायद तू यह सोचेगा कि शरीर अशक्त है कैसे पूरा धर्म किया जाय तो सुन उत्साह सहित देहविषयक बाह्य चारित्र भी परख, किन्तु उसकी कमी कदाचित् हो तो तू उत्साह हीन मत हो अन्तरङ्ग धर्मसे च्युत न हो। आत्म दृष्टि अधिकसे अधिक बनाकर खूब धर्मका पालन कर। अन्तरङ्ग ज्ञानस्वभावको निरख। अपने वैभवको देख देख संतुष्ट निरन्तर रहा करो। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

७ अगस्त १६५७

श्री मज्जिनेन्द्रदेवकी जिनस्वरूपताका ध्यान विषयकषायरूपी मलको दूर कर स्वच्छ आनन्दकी उज्ज्वलता प्रकट करता है।

आत्माके केवल शरणभूत दो ही हैं-(१) निज स्वभाव, (२) परमेष्ठी। निज स्वभावका आश्रय तो निश्चयशरण है। परमेष्ठीका ध्यान व्यवहार शरण है।

आत्माके केवल विपत्ति दो ही हैं-(१) अध्यवसान भाव, (२) बाह्य परिकर। अध्यवसान भाव मोह, राग व द्वेषको कहते हैं यह भाव तो निश्चय विपत्ति है। बाह्य परिकरमें कर्म शरीर और बन्धु मित्रादि चेतन व धन मकान आदि अचेतन आ गये, ये सब व्यवहार विपत्ति हैं।

पर पदार्थ अपनेसे तो अत्यन्त भिन्न है उसका कुछ भी अंश मुझमें कभी नहीं आ सकता और न पर वस्तुके कारण सुख होता है प्रत्युत जितना पर वस्तुकी ओर आकर्षण है उतनी आनन्दमें बाधा है परन्तु मोही प्राणीके चित्तमें, उपयोगमें कोई न कोई पर पदार्थ बसा रहता है अथवा यों कहो कि मोहीका उपयोग किसी भी परपदार्थको विषयकर उलझा रहता है, यह बड़ा कष्ट है।

Version 1

सदा वस्तु स्वरूपकी यथार्थ प्रतीति रखे और उपयोगको निर्मल रखे

http://sahjanandvarnishastra.org/

याने किसी भी पर पदार्थको उपयोगमें न बसाये अपने ज्ञानस्वभावको ही विषय बनावे। यह बड़ी हिम्मतका काम है।

८ अगस्त १९५७

ब्रह्मचर्य एक महान् तप है यह जितना कठिन माना जाता है उतना ही सरल है। जिनकी निर्मल ज्ञानदृष्टि नहीं है पर्यायबुद्धि आपतित होनेसे अति कठिन मालूम होती है। जिनके निर्मल ज्ञानदृष्टिका आविर्भाव हो चुका है उन्हें आत्मीय आनन्दका स्वाद होनेसे ब्रह्मचर्य साधन अतिसरल है।

ब्रह्मचर्यके विरुद्ध प्रवृत्तिमें कितने संकट हैं—

(१) जिसके प्रति विषयेच्छा हो उसका चित्तमें बसाव बनाकर और प्रसन्न करनेकी इच्छा कर आकुलित होना होता है।

(२) पर वस्तुका समागम स्वाधीन तो है नहीं सो उस पर जीवका मिलाप करनेके लिये बड़े संकट, श्रम करता है।

(३) कदाचित् उस परका समागम हो जावे तो उसे अपने अनुकूल करनेको मन वचन कायकी चेष्टा करनी पड़ती है जिसमें भय और उद्वेगका समावेश रहता है।

(४) कदाचित् सर्व अनुकूलता हो जाय (और प्रायः ऐसा इसलिये हो जाता है क्योंकि ऐसे ही तो बहुधा जब अन्य जीव भी तो मलीन हैं) तो आजन्म पराधीनताका दुःख सहना होता है।

(५) और, मिलता क्या है, कुछ नहीं, हानि ही सर्वस्व है, मन वचन कायकी हानि तो प्रत्यक्ष है।

तत्त्वज्ञान होने हर उक्त सब संकट दूर हो जाते हैं।

९ अगस्त १९५७

जीवत्व जीवके स्वरूपको कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपके कारण ही बना रहता है, अन्य द्रव्यकी अपेक्षा, संयोग या शरणसे नहीं। जीव भी जीवत्वके कारण बना रहता है अथवा जीवित रहता है। आहार, राजादिक, मकान व्यवस्था, धन वैभव आदिके कारण जीव नहीं जीता है। अपने मर्म तक उपयोग जावे तो जैसा सत्य स्वरूप देखा वैसा किया जा सकता है। और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

उस कालमें जो मैला, जो व्यर्थकी चीज, जो विग्रहका मूल पीछे पड़ रहा है वह सब समाप्त हो जाता है।

प्रिय ! तू केवल अपनेमें विराम ले, केवल हो जायगा। अथवा केवली हो जायगा। केवलीका अर्थ है कि आत्मनि वलं यस्य स केवली, अपने आपकी आत्मामें पूर्णबल जिसके प्रकट हो गया वह केवली है।

जैसे परदेहमें रुचि करके कामी पुरुष अपने देहके वीर्यको खो देता है और उसीमें आनन्द मानता है। वैसे मोही जीव परवस्तुवोंमें रुचि करके अपने आपके आत्माके वीर्यको खो देता है और उसीमें आनन्द मानता है।

जैसे परदेहकी रुचि छोड़कर सदाचारी कोई पुरुष अपने वीर्यका रक्षण करता है और इसके कारण स्वस्थ (तन्दुरुस्त) होकर रोगोंको नष्टकर आनन्द युक्त होता है। वैसे परवस्तुकी रुचि छोड़कर तत्त्वज्ञानी कोई पुरुष अपनी आत्मशक्तिका विकास करता है और इसके कारण स्वस्थ (आत्मस्थ) होकर कर्म रोगको नष्ट करके सत्य आनन्दमग्न हो जाता है।

१० अगस्त १९५७

तत्त्वज्ञान होने पर भी जो राग शेष रहता है, जब तक चलता है उस रागका प्रयोग धर्म एवं धर्मात्मावों पर होता है। व्यवहार धर्मका महत्व प्राय: इसी बुनियाद पर टिका है।

करोड़ों वर्ष पूर्व श्रावण शुक्ल १५ को जो एक धर्मिसंकट और धर्मि-रक्षणकी घटना घटी थी वह उस समय इतनी आश्चर्यकारक और व्यापक बनी कि उसका स्मरण दिवस अब तक चला आ रहा है। वह है ७०० मुनियोंका दुष्टों द्वारा बाढ़में घेर कर बाढका जलाना और श्री विष्णुकुमार मुनिवर द्वारा बड़े ही आश्चर्यकारक पद्धतिसे उनकी रक्षा करना। यह सर्व कथा रक्षाबन्धन कथासे जान लेनी चाहिए।

यह जीवन अनित्य है, देह या तो भस्म किया जायगा या गाढ़ दिया जाया या पड़ा पड़ा सड़ जायगा। मन, वाणी और उसके साधन भी अनित्य हैं। इन सबका सदुपयोग करना परसेवामें इन्हें लगाना खुदकी प्रसन्नताका भी कारण रहेगा।

Version 1

तनका कंजूस, मनका कंजूस, धनका कंजूस व वचनका कंजूस ये चार

http://sahjanandvarnishastra.org/

कंजूस होते हैं। उनकी कंजूसी उन्हें बरबाद कर देती है।

तनकी कंजूसी शरीरसे परसेवा न करना है।

मनकी कंजूसी मनमें अनिष्ट चिन्तवन करना है।

धनकी कंजूसी धनको धर्म कार्यमें न लगाना है।

वचनकी कंजूसी हितकारी प्रिय वचन न बोल सकना है।

इनकी कंजूसी नष्ट करके उदार बनो, आनन्द होगा।

११ अगस्त १९५७

धर्म मार्ग पर अत्यन्त दृढ रहो। धर्म भीतर करना है। भावकी सम्हाल मात्र है। किसी प्राणीका दुःख करना ही मत सोचो। सर्व प्राणी कुछ कामके समागममें हैं। कोई चाहे तो भी सदा क्या विशेष चिरकाल तक भी संयोग नहीं रहता। कदाचित् ऐसा हो जाय कि जिस स्थानसे एक मोक्ष गया, उसी स्थानसे, दूसरा जिसके प्रति पहिले अनुराग रहा आया, वह मोक्ष चला जावे इस प्रसङ्गमें दोनोंके आत्मप्रदेश एक स्थान पर हो गये किन्तु इससे क्या वहां तो अत्यन्त वीतराग हैं। एकके ज्ञेय जैसे अन्य सब हैं वैसे ही वह है। किसी भी प्राणीका अनिष्ट न सोचो।

कोई ऐसा काम ही न करो जिसके लिये झूठ बोलना पड़े चुगली निन्दा करना तो महामूर्खताका काम है। इससे मिलता तो कुछ भी नहीं प्रत्युत चुगल और निन्दकको इस लोक व परलोक उभयत्र दुःख, संकट उठाने पड़ते हैं।

चोरी करनेका प्रयोजन ही क्या ? चोरीका समूल त्याग करो। कर्मका जैसा उदय है वैसा बाह्य समागम मिलता, तुम्हारा काम ज्ञान, विवेक द्वारा संतुष्ट रहनेका है, तुम अपना काम करो। संकट सहो किन्तु आत्मोचित कार्य से कभी न हटो।

कुशील तो बिपदाकी साक्षात् खान है और फिर शरीर जिसमेंसे नाक लार बहती है, मल घिष्ठा निकलता है, मूत्र पसीना बहता है और फिर नारी शरीर जिसको वे स्वयं संकट समझती है—रज स्राव होता है ऐसे अपवित्र शरीर की प्रीतिमें क्या रखा उसमें तो पूरे ३६ होओ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

परिग्रहका भी सर्व ममत्व छोड़ो। धर्म ही सत्य शरण है।

http://www.jainkosh.org

१२ अगस्त १९५७

बाह्य परिग्रह छोड़कर करना क्या है ? आत्मस्वरूपमें स्थिरता ।

प्रिय आत्मन् ! एक आत्माको जानो । आत्मा एक ज्ञायक स्वभाव है । वह ज्ञाता मात्र है । किसी पर पदार्थकी किसी परिणतिका कर्ता आत्मा नहीं है । प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतासे परिणमते हैं । बाह्य वे पदार्थ भी जो किसी पदार्थकी परिणतिमें निमित्त पड़ते हैं । केवल स्वयंका परिणमन करते हुए रहते हैं, इससे अधिक अन्य कुछ याने किसी अन्य द्रव्यमें कोई व्यापार कर नहीं सकते । सत्ताका स्वरूप ही ऐसा है । इसमें अन्य कोई क्या करे ।

व्यवस्था सर्वत्र स्वयं है । कोई बनाता नहीं है । तुम्हें बाह्य व्यवस्थासे क्या मिलेगा । अपनी व्यवस्थामें लगो ।

ठूंठको मनुष्य जाननेसे वह ठूंठ मनुष्य नहीं हो जाता है और मनुष्य को ठूंठ जाननेसे मनुष्य ठूंठ नहीं हो जाता है । जानने वाला यथार्थ जाने या अयथार्थ, इसका फल जानने वालेको है । अन्यथा जाननेसे ज्ञेय नहीं बदल जाता है ।

हे प्रभो ! हे निजनाथ ! कहीं कुछ नहीं है मेरा, तेरी दृष्टिसे ही सहज आनन्द विकसित होता है । सत्य आनन्दका सिवाय ध्रुव आत्मतत्त्वके उपयोग के अन्य कुछ उपाय है ही नहीं यह निश्चित है ।

सर्व पदार्थोंका परिणमन जो होता है वह उनकी योग्यतासे होता है तू अन्य किसीका कर्ता नहीं है । सर्व विकल्प छोड़कर निज आत्मतत्त्वकी दृष्टि में रह ।

१३ अगस्त १९५७

आज श्री कृष्णचन्द जी देहरादूनके यहां आहार हुआ । धर्मके सिद्धान्तों से बिलकुल अनभिज्ञ होकर भी जो अभी २७ दिन अध्ययन किया है, उससे इनमें बहुत धर्मज्ञानकी प्रतिभा हुई है । रईस वर्गको इनका इस विषयमें अनुकरण करना चाहिये ।

मोहके त्यागको धर्म कहते हैं, मोक्षमार्ग कहते हैं । मोहके त्यागमें सर्व संकट नष्ट हो जाते हैं । मोह ही महान् संकट है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्येक पदार्थ बिलकुल स्वतन्त्र है, क्योंकि सत् है। प्रत्येक सत् स्वयं सिद्ध होते हैं। पदार्थकी क्रिया उस ही पदार्थमें होती है।

अहो जरा भी तो सम्बन्ध नहीं आत्माका पुस्तकसे, शास्त्रसे, लोगोंसे, द्रव्यसे, शरीरसे। यह मोही स्वयं स्वसे च्युत होकर उन पदार्थोंका उपयोग करता है और अपनी सत्ता भूलकर उन ही पदार्थोंसे अपना सुख, हित व प्राण समझता है।

जीवका जीवत्व पारिणामिक भाव है। इसे आहार न मिले तो कहीं जीवत्व नष्ट नहीं हो जाता है। सम्यग्ज्ञानके अभावमें जीवकी कल्पना बन जाती है कि अमुक पदार्थ बिना गुजारा नहीं हो सकता।

अच्छा तुम्हीं सोचो पहिलेके भावोंमें तो इस चीज बिना गुजारा तो हो गया था अथवा उस चीजका संयोग न मिला तो गुजारा तो कर ही लोगे अथवा देख तो रहे हो अनेक मनुष्योंका उस चीज बिना भी तो गुजारा हो रहा है।

सर्व बिकल्प जालोंकी उधेड़ बुन छोड़ो। सर्वसे विरति पाकर अपने एक आत्मतत्त्वमें लीन होनेकी धुन बढालो। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१४ अगस्त १९५७

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, किसीकी परिणतिसे कोई अन्य नहीं परिणमता। जगतका समागम नश्वर है। किसी वस्तुमें अन्तरंगसे मोह न करना और अपने पाये हुए ज्ञान, कला, चातुर्य वैभवको न कुछ जानकर व अपने स्वभावको प्रभु जैसा जान कर परभावमें अहं बुद्धि न आने देना कल्याणका मार्ग है।

अपने आत्मामें कुभाव न आने देना ही सत्य पुरुषार्थ है, और अभीक्ष्ण सहज शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि रखना उससे भी बड़ा पुरुषार्थ है।

जीवका इस लोकमें कभी भी कहीं भी कोई सहाय नहीं, अपनी भावना निर्मल बना लेवे यह ही चतुराईका कार्य है।

मैं आत्मा चिन्मात्र हूं, स्वभावतः प्रतिभासमात्र हूं। यह मैं केवल अपना ही कार्य करता हूं। अपने परिणमनके अतिरिक्त अन्य कुछ मैं नहीं करता। सर्व पदार्थ भी अपने अपने परिणमनको करते हैं कोई किसी अन्यका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणमन नहीं करता। मैं स्वभावतः प्रतिभास स्वरूप हूं अतः सर्व कुछ मेरे ज्ञानमें आता है, मैं उन सबका ज्ञातामात्र हूं, अधिकारी या कर्ता बिलकुल नहीं हूं।

बाह्यमें सब कुछ है यह मैंने बाह्यमें नहीं जाना, किन्तु अन्तर ज्ञान स्वभावकी उस समयकी वर्तमान पर्यायमें जाना। मेरे लिये बाह्यकी प्रधानता नहीं है। मैं मेरे में गुप्त हो जाऊं। यहां "मैं" से मतलब वर्तमान पर्याय और "मेरे" से मतलब ध्रुव चैतन्यभाव है।

शान्तिका प्रयास सब जीवोंके है; किन्तु जिनका स्वभावके अनुरूप प्रयास है वे शान्ति पानेमें सफल हो जाते हैं और जिनका प्रयास स्वभावके विपरीत है वे सर्वत्र अशान्ति ही प्राप्त करते हैं। ॐ "शुद्धं चिदस्मि"

१५ अगस्त १९५७

आज भारतवर्षके इस युगकी स्वतन्त्रताका दिन है। स्वतन्त्रताका आज अर्थ इतना रह गया है कि हम कह सकें कि भारतवर्षसे बाहरके देशों में रहने वालों के शासनमें हम नहीं है।

यदि वास्तविक स्वतन्त्रता होती तो आज यहां पुलिस विभागकी आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति भी इसी तत्वका समर्थन करती है। स्वर्गसे ऊपर वैकुण्ठमें अर्थात् नव ग्रैवेयक, अनुदिश और अनुत्तरोंमें सर्व देव अहमिन्द्र हैं अतः वहां कभी कोई गड़बड़ी, कषायविशेष व क्लेश नहीं होता।

ऐसी स्वतन्त्रता यहां आना असंभव है फिर भी जो वर्तमान स्वतन्त्रता है वह हमारी धार्मिक वृत्तिमें आ सकने वाली अनेक बाधावोंके निवारणके लिये कुछ काम आ रही है।

वास्तविक स्वतन्त्रता तो आत्मतन्त्रता है। यह सम्यग्ज्ञान होने पर ही हो सकता है।

प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है, सत् अधूरा नहीं होता। प्रत्येक वस्तु परिपूर्ण है। उसमें अन्य कोई क्या करेगा। एक पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ रंच सम्बन्ध नहीं है। अत्यन्त भिन्न पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध देखना ही तो व्यामोह है।

पदार्थोंको निरपेक्ष अपनी अपनी सत्तामात्र जैसे कि वे हैं, देखना

Version 1

विवेक है, सत्य सुखार्थी है।
http://sahjanandvarnishastra.org/

निज निरञ्जन निर्दोष परमात्मतत्त्वकी भावना ही हमारे कल्याणकी जननी है।

ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१६ अगस्त १९५७

भेदविज्ञान भी एक बुद्धिकी कला है और यह भी आबालगोपाल सबके होती है।

दूसरे के मकानोंको अपने न मानना, दूसरे के धन वैभवको अपने न मानना यह भेदविज्ञान भी प्रायः सभी मोहियोंके रहता है, किन्तु मौका मिले तो उन सब मकानों, धन वैभवको हथयाले, अपनाले यह संस्कार साथ बसा हुआ है।

कुटुम्ब अपना नहीं है, देह भी अपना नहीं है यह भेदवार्ता भी प्रायः सभी में प्रचलित है।

किन्तु यह भेदविज्ञान जो आत्मा और दशा से सम्बन्धित रखता है अप्रचलित है और दुस्तर है—आत्मा ध्रुव एकस्वरूप है उसकी प्रतिसमय कोई न कोई दशा रहती ही है। जो भी दशा होती है वह उस ही समयके लिये होती है दूसरे समय वह दशा नहीं रहती है। दूसरे समय दूसरी दशा होती है। इस तरह प्रति समय दशायें बदलती रहती हैं। ये आत्माकी दशायें यद्यपि आत्मामें उस काल तन्मय हैं तथापि ज्ञानमें वह सामर्थ्य है कि उनमें उस समय भी आत्मा और इन दशावोंमें भेदविज्ञान करले। आत्मा नित्य है, आत्म परिणति अनित्य है। इसमें भी जो राग द्वेष परिणति है वह उपाधि प्रभव है। इन दोनोंका (आत्मा और आस्रवका) भेदविज्ञान एक अपूर्व सत्य क्रान्तिका मूल मन्त्र है।

सत्यम् शिवं सुन्दरम् तत्त्व उसी भेदविज्ञानसे उपलब्ध होता है। इस भेदविज्ञानके बिना अन्य प्रकारसे धर्मके नाम पर कष्ट सहनेमें धर्मका अचूक फल आत्मानुभव प्राप्त नहीं हो सकता। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१७ अगस्त १९५७

आज चित्त (उपयोग) चाहता है कि शीघ्र वह क्षय हो जब आत्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मलीन हो जावे। परम कल्याण, परम आनन्दके लिये सब कुछ छोड़ना ही पड़ेगा। जिस बातके छोड़े ही शान्ति मिल सकती है उसे चाहना अपनी भूलको लम्बी कर लेना है। आत्माकी शान्ति आत्मामें ही मिलेगी। आत्मा का सत्य आत्मामें ही मिलेगा।

मोही जीवका परिचित क्षेत्र जितना भी होता है उतनेमेंही वह मस्त बेहोश रहता है। प्रिय आत्मन्! आज तू यहां है और कल मरण कर यहांसे ४–५ राजू दूर जाकर किसी स्थानमें जन्म लिया तो बता अब यह स्थान क्या तेरे लिये सब कुछ है।

मैं ज्ञानस्वभाव हूं। स्वभावतः एक स्वरूप हूं, ज्ञानस्वभावकी ज्ञान-पर्याय अपने स्रोत ज्ञानस्वभावको ही चेते तो इससे बढ़कर दुनियामें कोई वैभव नहीं है।

ज्ञानपर्याय ज्ञानगुणको जाने इसमें निर्विकल्प परमसमाधिका अमोघ अवसर मिलता है।

ज्ञान, एक ज्योति है जो निजब्रह्मकी सामान्य ज्योतिसे अपनी ज्योति को मिला देती है।

ज्ञान एक वह रत्न है जिसके पाने पर गरीबीका कभी अनुभव ही नहीं होता। ज्ञान सब पदार्थोंको जुदा देखता है। ज्ञानकी दृष्टिमें यह ज्ञानी सदा निजसे धनिक है। उसमें गरीबीका प्रश्न ही नहीं है।

१८ अगस्त १९५७

मैं ध्रुव चैतन्यस्वरूप हूं, रागादिक औपाधिक परिणमन है। रागादिक मैं नहीं हूं, क्योंकि रागादिक औपाधिक परिणमन हैं किन्तु मैं निरुपाधि चैतन्यस्वभाव हूं।

रागादिक मैं नहीं हूं, क्योंकि रागादिक क्षणस्थायी हैं, विनश्वर हैं किन्तु मैं ध्रुव हूं, अविनाशी हूं।

१९ अगस्त १९५७

मोहका अर्थ अज्ञान है, अज्ञानका अर्थ कुज्ञान है, अज्ञानका अर्थ वस्तुस्वरूपसे विपरीत ज्ञान है। वस्तुस्वरूपसे विपरीत ज्ञानका अभाव वस्तु-स्वरूपके यथार्थ ज्ञान बिना नहीं हो सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुस्वरूपके यथार्थज्ञानसे वस्तुस्वरूपसे विपरीत ज्ञानका अभाव हो जाता है अर्थात् कुज्ञानका अभाव हो जाता है अर्थात् अज्ञानका अभाव हो जाता है अर्थात् मोहका अभाव हो जाता है।

परमात्मभक्ति मोहके दूर करनेमें समर्थ नहीं है किन्तु अन्य विकल्पों, विषयकषायोंके अभावमें निमित्त होती है।

यथार्थ ज्ञान वाले आत्माको परमात्मभक्ति यथार्थ ढंगकी होती है तो अज्ञानी आत्माकी परमात्मभक्ति पर्यायबुद्धिके पोषणकी ढंगकी होती है।

यथार्थ ज्ञानमें अपने पुरुषार्थको लगा देना सत्य व्यवसाय है।

२० अगस्त १६५७

आत्मन्! जितनी पर्याय तेरे स्वभावके उपयोगमें लगती हैं उतनी तो धन्य है और तेरे स्वभावसे बाह्य अन्य भावोंमें जितनी पर्याय लगती हैं वे सर्व तेरे घातके लिये पीछे पड़ी हुई हैं।

पर्यायमात्रका व्यामोह आत्माका बैरी है! जितना भी दुःख है वह सब व्यामोहमात्रका है। व्यामोहके अतिरिक्त और भ्रम भी क्या है।

आत्मन्! तेरा स्वभाव तो ब्रह्म स्वभाव है सिद्ध, प्रभु, भगवानका स्वरूप है, इस महान् उत्तम तत्त्वका घात तुम स्वयं उद्दण्ड होकर कर रहे हो।

तुम्हारी उद्दण्डताका फल तुम ही भोगते जाते हो। अन्य कोई शरण नहीं हो सकता।

२१ अगस्त १६५७

आत्माका स्वभाव चैतन्य है उसका दो प्रकारका परिणमन है जानना और अपना प्रतिभास करना है। इस स्वच्छताके कारण उपाधिवश रागादि परिणाम होते हैं वह जाननेकी एक उल्टी कला है। ये मेरे भले हैं इनसे मुझे सुख होता है आदि जानना रागका रूप है। चैतन्यके इस पद्धतिसे परिणमनेको राग कहते हैं। ये मेरे सुखके बाधक हैं ऐसे ज्ञान करके परिणमनेको द्वेष कहते हैं। ज्ञाता द्रष्टा बने रहना यह तो चैतन्यके विकासकी स्थिरता है और ज्ञाता द्रष्टा रूप, न रहकर राग द्वेष पद्धतिसे परिणमना चैतन्यके विकासकी अस्थिरता है। इस स्थिरताको कहते हैं चारित्र और अस्थिरताको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहते हैं चारित्रका विपरीत परिणमन। स्थिरता अस्थिरता चेतनेके कामको नहीं कहते, इसलिये चारित्रशक्तिको जड़ कहते हैं।

चैतन्य स्वभावको आत्मासे पूर्ण अभेद एक रूप मानकर फिर सर्व विकासोंका निर्णय करने पर सब शक्ति सब पर्यायें जैसें आत्माके सिद्ध होते हैं वैसे सब स्वभाव व सब पर्यायें चैतन्यमें सिद्ध हो लेते हैं।

२२ अगस्त १९५७

स्वभाव दृष्टि रूप उपयोग नहीं रहता यही एक विपदा है इतनी विपदा मिटालो और फिर बतावो कि विपदा रही कुछ या नहीं रही। याने स्वभाव दृष्टि होने पर विपदा रंच भी रहती ही नहीं।

धर्मके नाम पर भी किसीं पर या परभावमें उपयोग रहता है तो वह धर्म नहीं। धर्म प्रथम तो आत्मस्वभावको कहते हैं और फिर आत्मस्वभावके विकासको भी धर्म कहते हैं। किन्तु, जो शुभोपयोगरूप अथवा अशुभोपयोग रूप विकास है वह धर्म नहीं है। धर्म मार्ग पर चलते हुए जीवोंको बीच बीच शुभोपयोग चलता है अतः उसे व्यवहार धर्म कहते हैं।

अशुभोपयोग भी बीच बीच किन्हीं सम्यग्दृष्टियोंके होता रहता है परन्तु अशुभोपयोगके बाद ही शुद्धोपयोगकी योग्यता नहीं रहती। शुद्धोपयोगसे पहिले शुभोपयोग ही रह सकता है। शुभोपयोगके बाद ही शुद्धोपयोग रह सकता है अतः अशुभोपयोगको व्यवहार धर्म नहीं कहा जा सकता।

२३ अगस्त १९५७

श्री महावीर प्रसाद जो बैंकर्स मेरठ और इनकी पत्नी फूलमाला देवी ये दोनों जिस प्रकार अन्तरंगसे ज्ञान रुचि रखते हैं वह गृहस्थोंके लिये आदरणीय है, अनुकरणीय है।

अध्यात्मकत्व की इनके बड़ी रुचि रहती है, केवल २ वर्षमें करणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन दोनों अनुयोगोंका इतना ज्ञान कर लेना प्रभावना की चीज है।

जिस समय जहां जिस प्रकारसे जिसका जो परिणमन होना है उस समय वहां उस प्रकारसे उसका वह परिणमन होता ही है। इस आशय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में ५ बातों पर प्रकाश डाला है उनमें किसी एकको दूर कर देनेसे विडम्बना हो जाती है।

वीतरागता ही हमारी रक्षिका या सच्ची माता है। उत्कृष्ट ज्ञान वैभव इसी माताके प्रसादसे मिलता है, परमानन्द रूप अमृतका पान यही माता कराती है। कल्पनाओंके गर्तों में गिरनेसे यही माता बचाती है। चिपके हुए कर्म पंकको यही माता धोती है। दिव्य अतिशयके अलंकारोंकी शोभा यही माता कराती है। भववनमें भटकते हुएको यही माता ज्ञान रथ में बेठाकर प्रभुताके प्रासाद में आराम दिलाती है।

२४ अगस्त १९५७

जिसके मनमें जो है वह वही गाता है। कितनी भी किसीसे मित्रता हो, कोई किसीके इच्छा, अभिप्रायसे नहीं चलता। यह वस्तु तत्वका मर्म है प्रत्येक पदार्थ स्वयं बदलता है। कोई भी बदल दो पदार्थोंको मिलकर नहीं होती। अतः कभी भी कुछ भी परिणमन देखकर क्षोभ नहीं करना चाहिये।

चित्तका गंभीर व उदार बना रहना तो शान्तिका बीज है और चित्त की अनुदारता, चञ्चलता अशान्तिका बीज है।

चित्तकी गंभीरता तत्त्वज्ञानीके सहज हो जाती है। बाह्य पदार्थमें आत्मबुद्धि व आत्मीयताकी बुद्धि होने पर चित्तका चञ्चलता होना निश्चित ही है। इसका मुख्य कारण यह है कि बाह्य पदार्थ अपनी इच्छाके अनुकूल नहीं परिणमता और बाह्य पदार्थ में आत्मबुद्धि होनेसे बाह्यका कुछ परिणमनकी चाह चित्त में होती है।

समस्त दुःख बाह्य पदार्थ में आत्मबुद्धिका है। हे श्रेय जड़ वस्तु तू नहीं है, देह तू नहीं है, कर्म तू नहीं है। राग तू नहीं है, अपूर्ण ज्ञान तू नहीं है, पूर्ण प्रकाश भी तू नहीं है, किन्तु पूर्ण प्रकाशका स्रोत तू है। जड़ वस्तु पुद्गल कि वह पुद्गलकी प्रकृतिके उपादान में हुआ सो प्राकृतिक है। देह पुद्गल कर्मकी प्रकृतिके उदयके निमित्तसे हुआ अतः प्राकृतिक है और जड़ वर्गणावोंकी उपादान में हुआ अतः प्राकृतिक है। कर्म कर्म वर्गणावोंकी प्रकृतिके उपादान में हुआ तथा प्रकृतिको बनाता हुआ उत्पन्न हुआ सो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राकृतिक है। अपूर्ण ज्ञान प्रकृतिके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है अतः प्राकृतिक है।

२५ अगस्त १९५७

आत्माका पूर्ण विकास प्राकृतिक नहीं किन्तु नैसर्गिक है। तथापि वह शुद्ध दशा ही सही, दशारूप होने से वह भी आत्मा नहीं है। आत्मा त्रैकालिक अपरिणामी तत्त्व है। परम निश्चय दृष्टि से देखा गया ध्रुव निरपेक्ष आत्मस्वभाव ही सत्य शरण है। इस ही परम ब्रह्मकी उपासना ही धर्म है, शान्तिका अमोघ पुरुषार्थ है।

इस निज परमस्वभाव की दृष्टि के बिना ही यह जगजाल ही बना रहा, इन्द्रियजाल बना रहा।

हे शुद्ध चैतन्यः तुम निरन्तर दृष्टिमें बसे ही रहो, अनाथ पर्यायको नाथ मिल जायगा। नाथ की छायामें यह अनाथ सनाथ हो जायगा। नाथ के मिलनेमें यह नाथके अनुरूप हो फलेगा।

हे जिनेन्द्र देव! तुम समय समय पर हृदय में बसते रहो जिस चैतन्य स्वरूप में बसकर तुम परम अविकार हुए हो, जब वह चैतन्यस्वरूप इस उपयोग में न हो तो इस गद्दोको खाली न रहने दीजियो आप विराजे रहियो।

हे परम गुरो! आपका सत्संग मिलो, मैं नहीं जान पा रहा हूं परमगुरु कहां मिलेंगे। किन्तु यह नोति है कि जिसके हृदयोंमें जो बसता है वह मिल जाता है। इस नीतिका मानभङ्ग नहीं होना चाहिये।

२६ अगस्त १९५७

संसार असार है। देह संसार है, वह असार है। मिथ्यात्व, राग, द्वेष संसार है वह असार है। यह संसार दुःख करि पूर्ण है। यहां कोई भी स्थान, कोई भी पदार्थ रमणके योग्य नहीं है। इसका मुख्य हेतु यह है कि कोई किसी अन्यमें रम ही नहीं सकता।

हे विभाव तुम औपाधिक हो, तुम रह तो सकते हो नहीं, इस ज्ञानानन्दसागरको क्यों गंदला कर रहे हो।

क्या किसी ने कोई प्राणी ऐसा देखा कि जिसका कभी क्षय होगा ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं । यह तो आगेकी बात है। क्या किसीने कोई ऐसा प्राणी देखा जो काल के प्रारम्भसे ही जीवित है।

वर्तमान विभाव क्या कोई परम चतुराई है ? परम चतुराई है विभाव से दृष्टि हटाकर स्वभावमें स्थित करना।

२७ अगस्त १९५७

आत्मा कहो या ब्रह्म कहो दोनों एक ही बात है। आत्मामें स्वभाव स्वभावरूपसे निरन्तर अन्तः प्रकाशमान है। विभावकालमें विभाव परिणमन होते हुए भी जिसको आधार पाकर विभाव परिणमन हुआ वह तो स्वभाव है और जिसका निमित्त पाकर विभाव परिणमन हुआ वह कर्म है तथा जिसको विषय बनाकर विभाव परिणमन हुआ वह सब प्रकट भिन्न जड़ पदार्थ है।

विभावमें यद्यपि स्वभाव अत्यन्त तिरोभूत हो जाता है फिर भी विभाव की शिथिलतामें तत्त्व ज्ञानी जीव विभाव होते हुए भी विभावसे अत्यन्त उपेक्षित होकर स्वभावमें दृष्टि खचित कर सकते हैं। यह आत्माकी वह अपूर्व महिमा है कि जिसके बिन आत्माका उद्धार ही नहीं हो सकता था।

२८ अगस्त १९५७

इस असार संसारमें दुर्लभ नरजन्मको पाकर किसी भी प्रकार हो, सम्यग्ज्ञान पा लेना ही सर्वोत्कृष्ट अनुपम व्यापार है।

जैसे कोई परस्त्री प्रेमकर और उसे कोई जूते लाठी आदि मारे तो जब तक मामला समझमें नहीं आया तब तक ता भले ही कुछ लोग कहें कि मत मारो इस पर दया करो, किन्तु ज्योंही कोई बता देवे कि इसने परस्त्री प्रेम किया है तो वे ही कहने लगेंगे कि इसने यह पाप किया है तो जूते लाठी लगना उचित ही है, यह दयाका पात्र नहीं है। यदि उस पर सच्ची दया करनी है तो ऐसा ज्ञान दिया जावे कि वह परस्त्रीसेवन त्यागी बन जावे।

वैसे ही कोई विषयोंमें प्रेम करे और उसे इष्ट वियोग, अनिष्टसंयोग धनक्षति आदि उपद्रव हों तो जब तक तथ्य समझमें नहीं आया तब तक भले ही विषय प्रेमी [illegible] कहें कि इसे [illegible] करा दो, अनिष्टसंयोग हटा दो धनका उपाय लगा दो, यह दयाका पात्र है, किन्तु ज्यों ही तथ्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

समझमें आजाय कि सिद्ध सदृश चैतन्यस्वभावमय है इस आत्माने अत्यन्ताभाव वाले पर पदार्थोंमें हितबुद्धिकी है ऐसा घोरमिथ्यात्व व असंयमका पाप किया है तो ये सब उपद्रव, आकुलतामें आना उचित ही हैं, यह दयाका पात्र नहीं है। यदि उस पर सच्ची दया करनी है तो ऐसा ज्ञान दिया जावे कि वह पर्यायबुद्धि त्याग देवे अपनी प्रभुताको पहिचान लेवे।

गत ३५ दिनोंमें मैं कुछ न लिख सका इसका कारण दशलक्षणके प्रोग्राम और बाहरसे आये हुये धर्मिपुरुषोंका सहवास है जिस कारण लेखनके बजाय अन्य धार्मिक प्रोग्राम विशेष रूपसे चले।

३ अक्टूबर १९५७

आजके दिन प्राप्तव्य शिक्षायें—

परस्त्रीहरणमात्रके दोषसे रावणका ऐसा विनाश हुआ इससे सिद्ध है कि परस्त्रीसेवन तो महापाप है। इस व्यसन वाला सम्यग्ज्ञानका पात्र नहीं होता।

अन्यायका कार्य देख भ्रातृभक्त विभीषण भी निःसंकोच भाईसे अलग हो गया और अलग हो गया इतना ही नहीं किन्तु उस अन्यायके विनाशमें सहयोगी भी हुआ इससे यह दृष्टि बनाना चाहिये कि अन्यायमें कभी हाथ न बटावे चाहे कितना भी किसीका स्नेह हो।

श्री रामके वंशके हों अथवा रावणके वंशके हों उन्होंने बड़े बड़े वैभव पाये और कुछ भी हाथ न रहा। संसारकी यह स्थिति देख किसी भी वैभव की रुचि न करना इसमें संतोष मिलेगा और मोक्षका मार्ग मिलेगा।

रामचन्द्रजी सीताके लिये नहीं लड़े किन्तु न्यायके लिये लड़े इसका सबूत यह है कि रावणको जीत सीताको घर लाने पर कुछ माह बाद जब किसीने दृष्टान्त सीताका दिया तब सीताको रामने ही बनमें छुड़वा दिया। इससे यह सीख मिलती है कि हमेशा न्यायके लिये अपने जीवनको मानो। न्यायमें ही कुटुम्बका पक्ष हो।

राम, लक्ष्मण, सीता ये तीनों बड़े पुण्याधिकारी जीव थे किन्तु इनके पुण्यसे इन्हें जीवनमें कितनी विपदा उठानी पड़ी यह सबको ही विदित है। इस कारण भैया न पाप चाहो, न पुण्य चाहो किन्तु निर्विकार परमब्रह्मकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपासनारूप धर्म करो। इस धर्मसेवनसे सदाके लिये सर्वक्लेश मिट जावेंगे। आखिर रामचन्द्र जी ने इस धर्मकी ही तो आराधना की।

४ अक्टूबर १९५७

इस जगत्में किसी परविषय विकल्प करके मौज मानना एक खतरा है, यह सब रौद्रध्यान है। रौद्रध्यान आर्तध्यानसे भी भयङ्कर है।

अपने स्वभावकी प्रतीति कर उसमें ही स्थित होना याने स्वयंको शुद्ध चैतन्यभाव अनुभव करना एक सार पुरुषार्थ है।

नाथ! तेरे स्वरूप, दर्शन ज्ञानमयके ध्यानमें निरन्तर उपयोग रहो। इससे चिगे कि आपत्ति ही आपत्ति है। आपत्तिका अर्थ है आ समन्तात् पत्तिः आपत्तिः। चारों ओरसे बाहरसे जो आवे सो आपत्ति है। आत्मामें बाह्य पदार्थ तो कभी आता नहीं है, निमित्त नैमित्तिकभावके हेतु एक क्षेत्रावगाह हुए कर्म और शरीरको बाहरसे आये हुए कह सकते सो वह आपत्ति ही तो है। कर्मके निमित्तसे आत्मामें जो रागादि आते हैं वह तो आत्मामें आये और बाह्यके निमित्तसे आये अतः आपत्ति ही तो हैं।

वास्तवमें आपत्ति राग द्वेष मोह भाव है। यह जैसें मिटे उस उपाय का नाम मोक्ष धर्म है। इनके मिट जानेका नाम मोक्ष है। इनके बननेका नाम संसार है।

प्रभो और जो चाहे कुछ हो किन्तु आपकी रूचि रूप परिणाम मेरा नष्ट न हो क्योंकि आपको भूला तो फिर सर्वत्र अन्धेरा ही अन्धेरा है।

सत्य प्रभुताके उपयोगमें रहने पर कदाचित् विपदा भी आवो तो भी आकुलता नहीं रहती फिर विपदाने क्या बिगाड़ा।

५ अक्टूबर १९५७

विकल्पोंका न रहना ही समाधि है, परमयोग है, परमपुरुषार्थ है, धर्म है। एतदर्थ निःसङ्गता अधिक उपयोगी है। पूर्णनिःसङ्गता न बने तो अत्यल्पसङ्गता रहे।

अभी जो मुमुक्षुसत्सङ्गकी चर्चा हो रही है और उसका उद्घाटन भी पूर्णिमाको होने वाला है। उसमें भी कम लोग रहें पर रहे कल्याणार्थी बुद्धिमान। बहुसमागम तो चाहिये ही नहीं। अल्पसमागम धर्मध्यान वार्ता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

चर्चाके योग्य चाहिये। आडम्बरका मुख धोका है।

दृश्यमान जगत क्या है ? सब क्षणिक है इनके लिये निज ध्रुवस्वभाव का घात करना कहां तक उचित है विचार करो।

कार्य उसे कहते हैं जो किया जाय, मैं केवल अपना ही परिणमन करता हूं अन्य कुछ नहीं करता हूं। यदि अन्य पदार्थके कर्तव्यकी ही मिथ्या धारणा समाप्त हो जाय तो भी आत्मा अपने स्वभाव दृष्टि रूप अमृतका पान कर सकता है।

जगतमें शरणभूत तत्त्व दो ही हैं-एक निज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि और दूसरे देव गुरुभक्ति।

आत्मन् ! यथार्थ ज्ञान करो फिर तो तुम प्रभु ही हो, जिन भी हो, कृतकृत्य अन्तरङ्गमें हो गये।

बाहरकी ओर दृष्टि देकर बिगाड़ ही होता है, अन्दरकी दृष्टिसे सत्य लाभ ही होता। दृष्टिके सिवाय और तुम करते ही क्या हो। परकी ओरसे कोई आशङ्का नहीं है। बस तत्त्व यह है, दृष्टि संभालो।

६ अक्टूबर १६५७

जगतमें समय समय पर शुद्ध आत्माओंका आविर्भाव हुआ और समय समय पर अपना प्रभाव जमा जानेकी चेष्टा करने वाला आत्मावोंका भी अवतार हुआ। इसी लिये यह सोच सकना बड़ा कठिन हो गया है कि कौन हमारा सत्य देव है। फिर भी यह समस्या तो सुलझाना ही है। कैसे यह समस्या सुलझे ? इसके लिये न चिन्ता करो, न परका मुख देखो। सर्व विकल्प छोड़ विश्रामसे रहो। इस सत्य विश्रामके पश्चात् सत्य अनुभव होगा और सत्य अनुभवके पश्चात् देवस्वरूपकी समस्या अपने आप सुलझ जावेगी।

आत्माके प्रकाशमें बुद्धि काम करती है इस वाक्यसे कितने ही लोग आत्मा और बुद्धिको पृथक् द्रव्य मानते हैं और फिर बुद्धिके द्वारा पृथक् आत्मतत्त्वकी भावना करते हैं। यदि बुद्धि एक पृथक् चीज है तो बुद्धि भी अविनाशी वस्तु हो गई, हां परिणमन उसका जैसा चाहे मानो, तब बुद्धिका ही संसार व बुद्धिका मोक्ष समझना चाहिये।

Version 1

इस सम्बन्धमें बात यह है कि बुद्धि ज्ञानका विभाव परिणमन है,

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्यग्ज्ञानके बलसे अन्तमें बुद्धि परिणमनका व्यय होकर शुद्ध ज्ञानरूप परिणमन चलता है। ज्ञान गुण आत्माका अभिन्न स्वभाव है। गुण गुणी भेदसे ज्ञानको संसार मोक्ष कहिए गुण गुणी अभेदमें आत्माका संसार मोक्ष कहिये।

७ अक्टूबर १९५७

मिथ्याबुद्धि, पर्यायबुद्धि, भ्रमबुद्धिमें आकुलता होना उचित है, नीति है। यदि मिथ्यात्वमें भी अनाकुलता होने लगती तो धर्मका नाश हो जाता है। जैसे ज्ञानी लोग ज्ञानबलसे अनाकुल रहकर धर्मकी रक्षा करते हैं धर्म की महिमा बढ़ाते हैं। मोही जीव भी अज्ञानसे आकुलित होकर धर्मकी रक्षा कर रहे हैं इन्होंने धर्मका स्वरूप यथार्थ रूपसे रहने दिया है, उस स्वरूपमें बिगाड़ नहीं किया है। ये मोही भी इस प्रकार धर्मकी महिमा बढ़ा रहे हैं।

ज्ञानी जीवोंने धर्म परिणत अपना रूप प्रकट करके धर्मकी महिमा बढाई है। मोही जीवोंने भी अधर्म परिणत अपना पर्याय प्रकट करके धर्मकी महिमा बढाई है।

ज्ञानी जीव ज्ञान एवं तप बलसे देव, देवेन्द्र पद पाकर या परम विकास रूप आनन्दमय निर्वाण पद पाकर धर्मकी महिमा बढाते हैं। अज्ञानी जीव विषयकषायकी वासनासे नरक, तिर्यञ्च भव पाते हुए अधर्मका फल बताकर धर्मकी महिमा बढाते हैं।

अहो, देखो, सभी जीव पोजेटिव या निगेटिव किसी भी रूपमें धर्मकी ही महिमा बढ़ा रहे हैं।

सर्वज्ञ देव सर्व पदार्थोंके जाननेमें दर्पणकी तरह है। जैसे कोई दर्पण ऐसा है कि जिसमें छोटीसे छोटी चीज भी बड़ी रूपमें स्पष्ट मालूम होती है। इसी प्रकार सर्वज्ञ देवके ज्ञानमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु आत्मा इत्यादि भी स्पष्ट झलकते हैं। जैसे एक्सरा आदि कई दर्पण जाति ऐसी हैं कि जिनमें अन्तरित गुप्त हड्डी वगैरह भी स्पष्ट झलक जाती है इसी प्रकार सर्वज्ञ देवके ज्ञानमें कालान्तरित पर्यायें सर्वज्ञ देवके ज्ञानमें झलकते हैं। जैसे कई दर्पण (कांच) ऐसे होते हैं कि जिसमें दूर वर्ती पदार्थ साफ झलक जाते हैं उसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

प्रकार सर्वज्ञ देवके ज्ञानमें दूरवर्ती पदार्थ भी स्पष्ट झलकते हैं। सामान्य दर्पणमें सामान्य तौरसे।

८ अक्टूबर १९५७

आज मुमुक्षुसत्सङ्गका उद्घाटन श्री फतेहलाल जी संघी जयपुर निवासी रिटायर्ड ट्रेजरी आफीसरके हस्तसे हुआ। इन बन्धुवोंकी भावना विहार आवास सर्वत्र साथ रहकर धर्मसाधनकी है। आज चार मुमुक्षुसत्सङ्गमें प्रविष्ट हुए, (१) फतेहलाल जी संघी, (२) नर्मदाप्रसाद जी, (३) जिनेश्वरप्रसादजी सराफ, (४) रूपचन्द जी माजरा मिल वाले।

इस सत्संगका उद्देश्य सात्त्विक रीतिसे भोजन कर शेष समयको यथा संभव धर्म ध्यानमें बितानेका है।

प्रोग्राममें सत्संगी धार्मिक कार्यक्रम निम्नलिखित प्रकारसे रखे जानेका इन सबका विचार है—

।।। घण्टा	कीर्तन व द्रव्यानुयोगका स्वाध्याय
१।। घण्टा	मौन पूर्वक स्वाध्याय व सामायिक
।।। घण्टा	प्रवचन
।।। घण्टा	करणानुयोग स्वाध्याय
१।। घण्टा	मौन पूर्वक सामायिक व लेखन
१।। घण्टा	पठन पाठन
।।। घण्टा	चरणानुयोग स्वाध्याय
।।। घण्टा	चर्चा समाधान
१।। घण्टा	मौन पूर्वक सामायिक व स्वाध्याय
।।। घण्टा	प्रथमानुयोगका व आधुनिक अध्यात्म पुस्तकका स्वाध्याय
१।। घण्टा	प्रवचन सहित सभाका प्रोग्राम

९ अक्टूबर १९५७

बाह्य परिग्रह १० हैं वे इस प्रकार भी हैं—१ खेत, २ मकान, ३ धन, ४ धान्य, ५ वर्तन, ६ वस्त्र, ७ द्विपद, ८ चतुष्पद, ९ सवारी, १० आसन।

परिग्रहका परिमाण गृहस्थका आभूषण है, संतोषका मूल है। परिग्रह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के परिमाण बिना मनुष्यकी आशा बिना तला गड्ढे के सदृश है। जैसे कल्पना किया जावे कि कोई ऐसा गड्ढा है जिसका कि तला नहीं है, उसमें कितना भी कूड़ा डाला जावे उस कूड़ेसे क्या पूरा पड़ता है, क्या कभी वह गड्ढा भरा जा सकता है ? कभी नहीं। इसी तरह कितना भी धन संग्रहमें आ जाय तो भी क्या आशाकी पूर्ति हो सकती है ! यदि गड्ढेका तला है तो वह कुछ कूड़ेसे जरूर पूरा भर जायगा। इसी तरह यदि आशामें परिमाणका तला है तो वह आशा भी कुछ संग्रहके पश्चात् पूरा भरा जा सकता है। ऐसी बात बनानेके लिये परिग्रहका परिमाण अवश्य किया जाना चाहिये।

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ।
ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॥

१० अक्टूबर १९५७

जब हृदयमें मलिनता होती है तो किसी भी प्रकारके विषयोंमें प्रवृत्ति करनेकी चेष्टा होती है। हृदयमें मलिनता न हो तो विषयोंमें यत्न कौन करे। विषयोंके प्रसंगमें जो भी जीवको दुःख है वह विषयोंके बाह्य याने बाह्य पदार्थके कारण नहीं है, किन्तु विषयोंमें राग है उस रागभावके कारणसे दुःख है।

दुःख मेटनेके लिये बाह्य अर्थोंका संयोग वियोगका परिश्रम मोही उठाता है और तत्त्वज्ञानकी ओर दृष्टिका पुरुषार्थ ज्ञानी करता है।

तत्त्वज्ञानसे ही क्लेश मिटता है, क्योंकि तत्त्वके अज्ञानके कारण उत्पन्न हुए मोहसे ही क्लेश होता है।

क्लेशका कारण मिटनेसे क्लेश भी समाप्त हो जाता है। क्लेशका कारण मोह, मोहका कारण तत्त्वका अज्ञान। तत्त्वका अज्ञान तत्त्वज्ञानसे ही समाप्त होता है।

तत्त्वका अज्ञान ज्ञानशक्तिकी विपरीत विभाव पर्याय है और तत्त्वका ज्ञान ज्ञानशक्तिकी सम्यक् विभाव पर्याय है। किसी भी शक्तिकी पर्यायका व्यय उस ही शक्तिकी नवीन पर्याय प्रकट होनेसे होता है। अतः तत्त्वका अज्ञान भी तत्त्व ज्ञानके बलसे प्रकट होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

११ अक्टूबर १९५७

जैसे धान्यका ऊपरी छिलका जब तक दूर नहीं होता तब तक चावल का लाली रूप मल दूर नहीं हो सकता। वैसे बाह्य परिग्रह जब तक दूर नहीं होता तब तक आत्माका रागादि मल दूर नहीं हो सकता।

यहां वह प्रश्न उपस्थित होता है कि रागादि दूर हुए बिना बाह्य परिग्रह भी तो नहीं छोड़ा जाता फिर उक्त नियम कैसे सत्य बने ? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो ऐसा ही होता है कि रागादि शिथिल हुए बिना बाह्य परिग्रह नहीं छूटता किन्तु फिर रागादिका बिलकुल अभाव बाह्य परिग्रह के त्याग बिना नहीं हो सकता।

बाह्य परिग्रह छूटनेका कारण रागादिकी हीनता है और रागादिके सर्वथा अभाव होनेका कारण बाह्य परिग्रहका त्याग है। यह सब निमित्त नैमित्तिक भावका तथ्य है।

रागादि कितना हीन होने पर बाह्य परिग्रह छोड़ा जाता है इसका कुछ व्यावहारिक रूप नहीं है, अतः जब भी विवेक जगे बाह्य परिग्रहसे निवृत्त होनेका यत्न कर लेना चाहिये।

१२ अक्टूबर १९५७

काय, वचन और मन इन तीनोंके व्यापारको बन्द करके सहज विश्राम में रमे जाने पर जो विशुद्ध आनन्द प्रकट होता है वह पुण्यकी अनेक अनुकूलतावोंमें भी असंभव है।

जीवनका उत्तरार्द्ध तो धर्मपथमें लगना ही चाहिये देखो तो सरकार की सर्विस करने वालोंको सरकार अन्तमें कितनी शोभाके साथ रिटायर कर देती है। उसका भी तात्पर्य यह है अब शेष समय धर्म साधनमें बितावो। पहिले समयमें तो यह आम रिवाज सा था कि अवस्था व अवसर पाकर लोग अपने पुत्र आदि अधिकारीको सर्वदत्ति देकर अर्थात् सर्वस्व संभलवाकर साधु हो जाते थे। यदि यह कहा जाय कि उस समयका जमाना भला था व शक्ति भी उत्तम थी सो ऐसा किया जा सकता। किन्तु, आज जमाना भी भला नहीं है व शक्ति भी कम है तो कैसे निश्चिन्तताका वह पथ अपना लिया जावे ? तो भैया ! वैसा नहीं किया जा सकता तो मध्यममार्गसे तो चला ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जा सकता है। अर्थात्—रिटायर लोग अपनी पेन्शनसे अपनी आजीविका समझकर निश्चित होकर धर्मसाधन व सत्संगमें लगे। व्यापारी आदि अन्य बन्धु क्या करें? तो भैया सरकारने भी उनकी यह मददकी है कि इनकम-टैक्ससे छुटकारा पानेके लिये सबका अलग अलग रजिष्ट्रेशन करवा दिया है सो अपनी नियत आमदनीके जरियेसे प्राप्त धनका व्यय दान करें और निश्चिन्ताके साथ धर्मसाधन व सत्संगमें लगें। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१३ अक्टूबर १९५७

जिस ज्ञान पर, जिस सुख पर संसारी जन इतराया करते हैं वह है तो कितना पराधीन और व्याकुलतापूर्ण किन्तु इसकी ओर ध्यान न जाकर उसमें ही संसारी जन बड़प्पन व हित समझता है। यह सब पर्याय बुद्धिका माहात्म्य है।

पर दृष्टि न रहेगी तो मृत्युका भी भय न रहेगा। मरनेका भय मरने वालेका नहीं होता है किन्तु वे पर पदार्थ यहीं पड़े रह जाते हैं, छूट जाते हैं जिनका मोह वश संग्रह किया और जो अति प्रिय लग रहे हैं, इनके वियोग की कल्पनासे ही दिल घबड़ा जाता है। यह कारण है मृत्युके समय मानसिक वेदना होनेका।

यदि जीवन भर शान्ति चाहते हो, मरणके समय भी शान्ति चाहते हो, मरणके बाद भी शान्ति चाहते हो तो पर पदार्थोंसे भिन्न अपनेको समझो, पर पदार्थमें हित बुद्धि छोड़ो, परसे विभक्त अपने गुणमें एकत्वरूपसे परिणत निज आत्मतत्त्वकी दृष्टि करो।

प्रिय आत्मन्! तुम अकेले ही घूमते घामते यहां आ पहुंचे। अब तुम्हें किसने बहकाया है जो तुम अपने इस अकेलेपनकी दृष्टि न करके अपने आनन्द वैभवका घात कर रहे हो।

हे कल्याण मूर्ते! तुम स्वयं कल्याणकी मूर्ति हो। कल्याण, मंगल, सुख कहीं बाहरसे नहीं आना है, केवल तुम अपने सहजस्वभावको समझ लो, मान लो, तो सर्व कुछ सार यहीं प्रकट हो लेगा।

१४ अक्टूबर १९५७

Report any errors at vikasnd@gmail.com
भूलों पर भूल लम्बी होती चली जाती है किन्तु उनका प्रतीकार सत्य

http://www.jainkosh.org

का आग्रह करके नहीं करता है। भूलके आदरमें कहीं भूलोंका अन्त हो सकता है? भूलोंका अनादर करे और सत्स्वभावका आदर करे उससे सत्पथ पाया जा सकता है।

सबसे बड़ी तबाही तो यह है कि हम कहना जानते हैं करना नहीं जानते। कदाचित् कोई धर्मवृत्ति करे भी तो अदृढ़ होकर या संशयित होकर करते हैं यह है दूसरी तबाही। कदाचित् असंदिग्ध होकर भी कोई धर्मवृत्ति करे तो उनमें भी कई ऐसे हैं कि उपादानमें मलिनताका उपशम होनेके कारण निमित्त पाकर उपशान्त कषायको भी उखाड़ लेते हैं यह है तीसरी तबाही।

जिसकी सचाई सचाईमें आ जाय तो वह लोकोत्तम हो जाता है।

सत्यता केवल वचनकी घटनानुरूप बोलनेकी वृत्तिको हो नहीं कहते हैं। सर्व सदाचार और सत्य श्रद्धानके साथ हित मित प्रिय वचन भी हों तो उसे सत्यता कहते हैं।

खुदकी सचाई मात्र वचनोंकी व्यवहार सत्यता सचाई नहीं कही जा सकती।

१५ अक्टूबर १९५७

मन वचन कायकी खोटी क्रिया न होने देना भी महती तपस्या है। मनमें कामका विकार, यशकी चाह न हो, वचन मर्मभेदी व अहितकर न हो, कायसे कामचेष्टा या चिढ़ानेकी चेष्टा न हो तो यह स्थिति भी उत्तम फल को देने वाली होती है।

बात कम करना, पुरुषार्थ अधिक करना स्वयंको लाभप्रद है। पुरुषार्थ का अर्थ है पुरुषका अर्थ अर्थात् जिस वृत्तिसे आत्माके शुद्ध विकासका प्रयोजन सधे उसे पुरुषार्थ कहते हैं।

श्रद्धान, ज्ञान, आचरण सम्यक् बने इसीमें पुरुषके अर्थकी सिद्धि है।

वीतराग महर्षियोंकी कृपाका बदला देना सामर्थ्यसे बाहर है। जिन्होंने ज्ञानाञ्जनकी सलाईसे अज्ञान अन्धकारसे अन्धोंके ज्ञानचक्षु खोले हैं उनके इस महोपकारका कोई ऐसा बदला ही नहीं है कि उन्हें दिया जा सके या उनके नाम पर ही कुछ किया जा सके।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हम लोग अति कमजोर पुरुष हैं, निमित्त जुटने पर विषयकषायके भाव आ धमक सकते हैं, आधमक जाते हैं, इस महती विपत्तिसे बचनेके लिये उन निमत्तोंका समागम हटा देना चाहिये।

१६ अक्टूबर १९५७

क्षयोपशममें सर्वघाती स्पर्द्धकों उदयाभावी क्षय व उपशम रहता है। यहां भी प्रति समय उदय तो चलता है किन्तु ऐसी निर्मलता है कि वह उदयाभावी क्षय बन जाता है।

उदयमें आकर भी रस न दे उसे उदयाभावीक्षय कहते हैं। इसका भाव है कि जब रस न दिया तो अन्य हीन रस रूप हो गया।

क्षयोपशम २ प्रकारसे होता है—ज्ञानावरणका क्षयोपशम तो अन्य ढंगका है, चारित्र मोहनीयका क्षयोपशम अन्य ढंगका है। व्यापी नियम यह है कि देशघाती प्रकृतिका क्षयोपशम और प्रकारसे है सर्व घाती प्रकृतीका क्षयोपशम और प्रकारका है।

ज्ञानावरणका क्षयोपशम—जैसे मतिज्ञानावरणका क्षयोपशम है तो उसका भाव है कि मतिज्ञानावरणमें जो सर्वघाती स्पर्द्धक हैं उनमेंसे जो वर्तमान उदयमें आ रहे हैं याने जो ठीक काल पाकर खिरनेको हैं उनका बिना रस दिये खिर जाना और जो आगामी कालमें उदयमें आवेंगे उनका उपशम हो तथा मतिज्ञानावरणमें जो देशघाती स्पर्द्धक हैं उनका उदय रहे इस स्थिति को मतिज्ञानावरणका क्षयोपशम कहते हैं।

चारित्र मोहनीयका क्षयोपशम—जैसे अप्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशम है तो उसका भाव है कि अप्रत्याख्यानावरणमें जो वर्तमानमें उदय आ रहे हैं याने काल पाकर खिरनेको हैं उनका तो उदयाभावी क्षय याने बिना रस दिये खिर जाना तथा जो आगामी कालमें उदयमें आवेंगे उनका उपशम तथा प्रत्याख्यानावरणका उदय रहना इसको अप्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशम कहते हैं।

१७ अक्टूबर १९५७

आज पं० ज्ञानचन्द्र जी "स्वतन्त्र" सूरतसे आये। आप निष्कपट एवं सात्विक जीवी पुरुष हैं। जो अपना सदाचार रखेगा उससे वही सुखी होगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

-धर्म कर्ममें बढ़ना एक चित्त होकर ! फिर धर्म परिणामके विरुद्ध मन वचन कायका कोई चेष्टा नहीं करना ।

यदि कुछ धर्मवृत्ति और कुछ विकारकी चेष्टा ऐसा ही ढर्रा चला तो उससे लाभकी आशा नहीं है । ऐसा अवसर अधिक संभव है कि रही सही "ज्ञानविशेषता" व पुण्योदयजन्य "चलती" नष्ट हो जाय ।

यदि वर्तमान आत्मविभव तिरोभूत हो जाय तो फिर वही अन्धकार सामने आयगा जिसमें कुछ उपाय नहीं चलता । वह अन्धेर न आवे इसका उपाय तो यही है कि प्राप्त तन मन वचन धनका उपयोग विषयकषायोंमें न किया जावे और धर्मानुरागमें इनका सदुपयोग हो ।

वे जीव धन्य हैं जो आत्मज्ञानके अतिरिक्त अन्य कार्य बुद्धिमें धारण नहीं करते हैं, आत्मतत्त्वकी बातके अतिरिक्त अन्य बात बोलनेकी रुचि नहीं करते हैं; निश्चल आत्मतत्त्वके प्रतीक कायकी गंभीर मुद्रासे विलक्षण शरीर की चेष्टा नहीं करते हैं और स्वपरके ज्ञान व समतासाधनके अतिरिक्त अन्य कार्योंमें धन व्यय नहीं करते हैं तथा न ंच भी धनकी तृष्णा व संग्रह बुद्धि रखते हैं ।

१८ अक्टूबर १९५७

आज ४२ वर्ष बाह्य जीवनके व्यतीत कर डाले, कितना लाभ रहा ।

स्वयं चलती फिरती दिखने वाली शक्लें क्या हैं ? माया है, असमान जातीय द्रव्यपर्याय है । चेतन व कर्मके निमित्त नैमित्तिक बन्धके कारण हुए नोकर्मके बन्ध समेत तीनकी पर्याय है । चेतन, कर्म व नोकर्म इन तीन की पर्याय यह स्थूल दृश्यमान है तो, परन्तु वस्तुतः चेतन द्रव्यकी पर्याय चेतनके प्रदेशोंमें है, कर्मकी पर्याय कर्मके परमाणुवोंमें है, नोकर्मकी पर्याय नोकर्मके परमाणुओंमें है । वह सब एक पिण्ड बन्धरूप हो रहा है अतः वह स्थूल दृश्यमान तीनको पर्याय कही जाती है ।

उन तीनोंमें से कर्म व नोकर्म तो पुद्गल द्रव्य ही हैं और चेतन जीव द्रव्य है, अतः यह पर्याय चेतन और पुद्गल इन दो द्रव्योंकी कही जाती है ये दो द्रव्य समान जाति के नहीं हैं । पुद्गल अजीव है और चेतन जीव है । इस कारण यह पर्याय असमान जाती द्रव्य पर्याय कहीय जाती है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव रहित पिण्ड मेज कुर्सी चांदी सोना आदि जो कुछ है वह सब समान जातीय द्रव्य पर्याय है। पुद्गल द्रव्योंसे वह सब रचित है। अतः है तो समान जातीय द्रव्य पर्याय, परन्तु मुझसे अत्यन्त विजातीय है।

उक्त दोनों पर्यायें मैं नहीं हूं, मैं ध्रुव टङ्कोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावमय हूं। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

१६ अक्टूबर १६५७

दुःख सबको अपने अपने अपराधसे है। कोई कल्पना करे कि अमुकने ऐसा अपराध किया जिससे मुझे दुःख पहुंचा, तो यह बड़ी मूर्खता है पूर्ण विकार है।

मोही परके प्रति अपना स्वामित्व विचारता है उसे वस्तु स्वरूपकी खबर नहीं। स्वतन्त्र सत्ताकी समझ बिना ऐसी मूढ़तायें हो जाती हैं।

चाहे किसीसे कितना भी राग हो, परन्तु स्वामित्व अंशमात्र भी नहीं हो सकता ?

इस ही मर्मके बोध बिना ही तो संयोगाधीन दृष्टि हो जाती है। इतना मर्म वस्तुका पाले तो संसारके क्लेश समाप्त हो जाते हैं।

प्रिय आत्मन् ! जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा ही सत्य समझो इसमें तेरे आनन्द ही आनन्द रहेगा।

अब तो समझ, जो भी दुःख तुझे होता है वह तेरे अपराधसे ही होता है। तू वस्तु स्वरूपके विरुद्ध कल्पना करता है इसीसे आकुलता बढ़ती है।

निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिंलेश निदान।

प्रियतम, सर्वबल्लभ, स्वभावतः स्वशम, निज चैतन्य प्रभो ! अब जो हो सो हो, किन्तु केवल तुम एक मेरी प्रतीतिसे अलग न होओ।

ॐ शुद्धं चिदस्मि।

२० अक्टूबर १६५७

नेत्रेन्द्रिय जन्य ज्ञानसे पहिले जो अन्तर्मुख चित्प्रकाश है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं और नेत्र इन्द्रियको छोड़कर अन्य इन्द्रिय व मनसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानसे पहिले जो अन्तर्मुख चित्प्रकाश है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते हैं। दर्शनके ये भेद उपचारसे है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

यह अन्तमुँख चित्प्रकाश ज्ञान उत्पन्न करनेके लिये प्रयत्न रूप है, अतः चाक्षुषज्ञानके उत्पन्न होनेके लिये प्रयत्न रूप जो अन्तमुँख चित्प्रकाश है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनकी बात समझना।

एक साथकी बातें शतावधानी नहीं जानता, क्रम क्रमसे बोलने वालों का १०० का बात सुनकर फिर क्रमसे बताना यह काम रहता है।

प्रतिभाशील पुरुष अभ्यस्त अनेक मामलोंमें एक साथ कुछ कुछ सुन कर पूरा निर्णय समझ लेते हैं।

लोभीके धनका पता तब चलता है जब चोर लूट लेंजाते हैं। क्योंकि ऐसें प्रसंग पर लोभी अपना धन सब अपने आप बताने लगता है।

निर्लोभीके धनका पता तब चलता है जब वह दान देता है व परोपकार करता है।

२१ अक्टूबर १६५७

गृहस्थजनोंमें अनेक ऐसे भी हैं जो कि धर्म मार्गमें, ज्ञान मार्गमें तो लगे हैं किन्तु स्वाध्याय, उपदेश आदिसे कुछ मनमें ज्ञानकी बात समानेको होती है कि अन्य कार्योंका व्यासंग आ जानेमे वह ताव ठंडा पड़ जाता है। फिर कभी ताव बनता है तो फिर भी जल्दी ठंडा हो जाता है। फल यह होता है इस प्रकारकी पद्धतिमें जीवन गुजर जाता है और वह करीब करीब वहींका वहीं रह जाता है। जैसे—कोई लोहार लोहेको अति गर्म करके उससे कोई चीज बनानेके लिये, उसे फैलानेके लिये घनकी चोट। देनेको लगता है, दो चार चोट देनेके बाद वह गप्पोंमें लग जावे, अन्य कार्यमें लग जावे सो उसका ताव ठंडा पड़ जाता है। फिर गर्म करके ताव देकर फिर उद्यमी होता है तो कुछ समय बाद फिर गप्पोंमें लग जावे तो फिर ठंडा हो जाता है। इस पद्धतिसे दिन भर भी परिश्रम करले तब भी वह कार्य करीब करीब वहींका वहीं रह जाता है याने हो नहीं पाता है।

एक बार तो हिम्मत करके यह कोशिश करना चाहिये कि लगातार २–३ माह किसी सत्संगमें समय देकर ज्ञान लाभ करे तो उसे सही फायदा मिल सकता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२२ अक्टूबर १९५७

किसी पर द्रव्यका अन्य कोई पर द्रव्य किसी प्रकारका परिणमन नहीं कर सकता। जन्म, मरण, सुख और दुःख आयुकर्मके उदयसे आयु कर्मके क्षयसे, पुण्यकर्मके उदयसे और पापकर्मके उदयसे होते हैं। जन्म व सुख एवं दुःखमें तो प्रायः लोग जल्दी समझ जाते हैं कि दूसरेका जन्म दूसरा नहीं करता तथा सुख दुःख भी नहीं कर सकता। मरणके सम्बन्धमें समझ पाना कठिन हो रहा है। मरण भी दूसरे का दूसरा नहीं कर सकता यह बात समझ लेना इस कारण कठिन हो रहा है कि लोग ऐसा देखते हैं कि किसी ने किसीका गला तलवारसे उड़ा दिया तो लो कर तो दिया मरण किन्तु, ऐसे प्रसंगमें भी मरण दूसरेने नहीं कर दिया, वरन् उसके ही आयुके क्षयसे मरण हुआ है। गला अलग हो जाने पर मिनट आध मिनट जीवित रह सकता है, जब आयुका क्षय होता है तब मरण होता है। हां यह बात अवश्य है कि आयुक्षयका बाह्य निमित्त वह शास्त्र घात बन गया है।

२३ अक्टूबर १९५७

२४८३ वर्ष पहिले इस दिन सूर्योदयसे १ घड़ी पहिले भगवान महावीर स्वामी मनुष्य पर्याय त्यागकर सिद्ध हो गये। जिस समय साक्षात् केवली महावीर तीर्थंङ्करके दर्शन होते थे उस समयके दर्शकोंको क्या अनुपम हर्षका अनुभव होता होगा। आज हम उनही भगवान महावीर स्वामीके तीर्थमें बोध पाकर यथाशक्ति मुक्तिमार्गमें चल रहे हैं।

सम्यग्ज्ञानका कदम बड़े वेगसे निर्मलताकी ओर ले जानेका रहता है। सम्यग्ज्ञान पाया तो इसकी सब भांति रक्षाकी कोशिश करो।

हमारा सम्यग्ज्ञान सुरक्षित है या नहीं, इसकी पहिचान करना है तो उसके २ लक्षण हैं–(१) निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी एकतामें जुड़ने वाला उपयोग रहता है या जुड़नेको तैयार रहता है अथवा नहीं? (२) विषयकषायों से हटकर निर्मलताकी ओर आत्माकी वृत्ति चल रही है अथवा नहीं।

यदि उक्त पहिचानोंमें उल्लिखित विधि नहीं प्रतीत होती तो यत्न करो शुद्ध आत्मतत्त्वकी ओर ज्ञानोपयोग करो, निर्मलताकी वृत्ति उत्पन्न करो।

Report any errors at vikasnd@gmail.com
सच जानो प्यारे! जगतमें तेरे ही रत्नत्रयके सिवाय अन्य कोई पदार्थ

 http://www.jainkosh.org

व अन्य कोई भाव शरण नहीं हो सकता।

२४ अक्टूबर १९५७

आज ९ बजे पश्चात् हम सब राजपुरको चले शाम ४ बजे पहुंचे। बहुतसे मनुष्य निश्छल भावसे चाहते हैं आत्मकल्याण, किन्तु कुल परम्परागत अथवा नैमित्तिक धारणावोंसे अभिभूत होकर धारणानुसार हितका चित्रण होने लगता है। हित तो जिस विधिसे होता है उस ही विधिसे होगा। हित का उपाय अन्य नहीं है। स्वयंका सत्यस्वरूप समझना और उस ही सत्यस्वरूप की दृष्टि रखना। यह उपाय इस लिये अमोघ है कि हितके लिये तड़प रहे किसीको तड़फ विलीन करना है। तड़फ जिसमें है वही तड़फ विलीन हो सकती है। जैसे समुद्रकी लहरें होती हैं तो समुद्रकी लहरें समुद्रमें ही विलीन हो सकती हैं। अतः स्वयंका जानना अत्यावश्यक है।

स्वयं चेतन है तब तो सुख दुखका अनुभव है। सुख दुखका अनुभव अचेतन कर नहीं सकता।

स्वयंको अचेतन माना जावे तब तो कल्याणकी बात अत्यन्त परे हो गई।

ॐ तत्सत्, ॐ शुद्धं चिदस्मि, सच्चिदानन्दरूपोद्र है आदि किसके लिये कहे जाते हैं, वह सब मैं हूं।

इस निजतत्त्वकी खोज स्याद्वाद बिना नहीं हो सकती जैसे कि लौकिक तत्त्वोंका निर्णय स्याद्वाद बिना नहीं हो सकता।

२५ अक्टूबर १९५७

स्वयंका स्वयंमें परिणमन होता यह तो स्पष्ट अनुभवमें आ रहा है। मैं दुःखी हूं तब तो मात्र अपने विपरिणमनसे तब सुखी भी हूं तो अपने विपरिणमन से। हमें कुछ सुधार करनेके लिये अपनेमें ही कुछ करना है, जैसे कि बिगाड़ करनेके लिये अपनेमें ही सब कुछ करता रहा।

स्थान कुछ भी हो कहीं भी हो, अपना चित्त वश है और अपनी दृष्टि अपनी ही ओर है तो भला ही है। निज स्थानकी संभाल आवश्यक है।

अब तक जो हुआ सो हुआ, उसका सोच उत्थान न कर देगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपनी विशुद्ध करतूत जो अब बनेगी वही उत्थानका कारण हो सकती है।

सरलतासे धर्मका उपाय करना है तो वह यही है कि कुछ भी परद्रव्य अपने चित्तमें न बसाया जाय। आत्मा जानना बन्द नहीं कर सकता, यह तो माना किन्तु अपना ही जानना बना लेवे यह तो किया जा सकता चेतन है तभी तो वश चल सकता, अचेतन होता तो वशसे बाहरकी बात थी। एक दुष्ट घोड़ा है तो चलता तो रहता है, कुपथमें चल रहा है अभी उसे लगाम से वश कर लिया जाय मार्गसे चलने लगेगा। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

२६ अक्टूबर १९५७

संसारमें कहीं भी तो सुख नहीं है। यह सब मोह, राग और द्वेषका प्रताप है। दुःख तो कहीं बाहरसे आता नहीं। केवल किसी भी पर द्रव्यमें आत्मीयता, हितबुद्धि कर ले वही आकुलता होती है, क्योंकि पर पदार्थको सत्ता इस आत्माके आधीन थोड़े ही है और यह आत्मा पर पदार्थमें नाना कल्पनायें करता रहता है। यही एक दुःख है। इतना दुःख मिटा लें तो फिर कहीं भी कुछ दुर्वेदन नहीं है।

सहजानन्द सम्वेदनका तो जीव स्वभावतः पात्र है। स्वभावपरिणमन का अपात्र तो विषयकषायकी रूचिसे बना जड़ न। विषयकषायकी रूचि स्वभावदृष्टि बिना हुई।

कोई शङ्का करे कि क्यों स्वभावदृष्टि अब तक नहीं हुई तो उसका उत्तर सीधा तो यह है कि अब तो हो गई अब विषयकषायोंसे हटनेकी प्रगति बनाओ।

सावधान होकर ६ माह भी सन्मार्ग पर निर्विघ्न निरन्तर चलता रहा जाय तो फिर शक्ति इतनी दृढ़ हो जाती है कि फिर विचलित होना कठिन है।

असावधान होकर यदि एक बार भी मनमें दुर्भाव आ जाय तो उसकी सन्तति और वृद्धिको रोकना भी कठिन है।

अतः संसारमें बड़े सम्हल कर चलना है। अपना सत्पथ निर्विघ्न बने यही सबसे उत्तम उच्च व्यवसाय है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

२७ अक्तूबर १९५७

आज देहरादूनसे वर्षायोग समाप्त करके चले, लोगोंका उत्साह बड़ा ही धर्मानुरागदर्शक है, मांजरा वालोंने रस्तेमें करीब ४०० नरनारियोंको नाश्ता कराया। माजरा देहरादूनसे करीब २॥ मील है। सबको रोकते रोकते भी डाटकी सुरंग तक जो कि ७॥ मील है, करीब १५० नर नारी आये। सबका सामूहिक भोजन भी था।

आहारके पश्चात् सामायिक करके २ बजेसे डाट सुरंगसे चले ४ बजे मोहण्ड आये, यह ग्राम डाटसे ७ मील है। यहां भी करीब १५ सज्जन आये। सायंकालिक भोजन करके चले गयें।

देहरादूनसे मोहण्ड तक सुहावना जंगल मिला बीचमें कई स्थान ध्यानके योग्य मिले। चित्तका पर पदार्थकी ओर झुकना ही विपत्ति है। ऐसा कहना समझाना आसान है और वह निरर्थक भी है, अनर्थक्रियाकारी है। जो निकटभव्य सर्व संकोच छोड़कर मात्र निज आत्मासे नाता जोड़ता है और गुप्त रहकर निजकल्याण कर लेता है उसका तो काम सार्थक है और शेष निरर्थक है।

बाह्य कौनसा तत्त्व अपना साथी है। समस्त बाह्य पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं, रंच भी तो सम्बन्ध नहीं है।

२८ अक्टूबर १९५७

आज मोहण्डसे चलकर ७ मील पर विहारीगढ़ आये। यहां अजैनोंकी बस्ती है प्रातः ८॥ बजेसे प्रवचन हुआ।

जीवकी सर्व प्रथम गलती निजकी विभाव परिणतिमें व निबद्ध देहमें आत्मबुद्धि कर लेना है। इस गलतीके पोषण पर ही सब गलतियोंका निर्वाह होता है। यदि मौलिक अपराध दूर हो जाय तो शाखा प्रतिशाखा रूप अपराध कब तक ठहर सकते हैं, उनका भी अभाव हो जायगा।

शामको ७ मील पर चलकर छुटमालपुर आये। यहां अजितप्रसाद जैन मिनिस्टरकी कोठी पर ठहरना हुआ। यहां श्री विशालचन्द जी खजाञ्ची एवं स्पेशल मजिष्ट्रेट सहारनपुरका प्रबन्ध रहा। रात्रिमें ७॥ बजे प्रवचन हुआ। Version 1

सम्यग्दृष्टि जीवके परिग्रह नहीं माना गया है और न उपभोग माना

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया है। यद्यपि है, तथापि न के तुल्य है। इसका कारण यह है कि उपभोग ३ प्रकारके होते हैं (१) अतीत, (२) वर्तमान, (३) अनागत। सो अतीत तो गुजर ही चुके उसका ख्याल ही नहीं करता है, अतीतका मोह करना महा व्यामोह है। वर्तमान उपभोग तो तब परिग्रह कहाये जब वर्तमान उपभोगमें रागबुद्धिसे लगे। सम्यग्दृष्टि वर्तमान उपभोग भी करता है तो वियोगबुद्धि रखकर करता है। यह संकट टले, इसका पिण्ड छूटे आदि प्रकारक वियोग बुद्धि ही रहती। भविष्यकालीन उपभोग तो तब परिग्रह कहाये जब उसकी चाह हो सम्यग्दृष्टिके उसकी चाह ही नहीं होती।

सम्यग्दृष्टि आत्मा ही सच्चा वैभवशाली है।

२६ अक्टूबर १९५७

आज करीब ४। बजे रुड़की पहुंचना हुआ, यहां अजैन समाजका भी महान् उत्साह दिखनेमें आया। उन्होंने अपने भावके अनुसार चेष्टाकी उन्होंने अपने अपने मुहल्लोंमें सचित्त फूल मुझ पर कई जगह फैंके। जिसका जैसा भाव होता वह उसके अनुकूल यत्न करता, चाहे वह किसीको अनुकूल न बैठे। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि वह प्रति समय अपनी योग्यताके अनुकूल परिणमता रहे।

यहां जिज्ञासुवोंमें अजैनोंकी भी संख्या अधिक है प्रवचन सभामें आधे जैन बन्धु और आधे अजैन बन्धुवोंकी संख्या रहती है।

मनुष्य भव पाकर यदि दुःखोंसे छूटनेका उपाय न बन पाया तो क्या किया ? कुछ नहीं।

जैसे लोकमें कहावत है कि पेड़ गिननेसे काम कि आम खानेसे काम, इसी प्रकार यह भी तो विचारो कि आनन्द पानेसे काम है कि जड़ वस्तुवोंके गिननेसे काम है।

यदि आनन्द पानेसे ही काम है तो यह समस्या हल कर लो कि आनन्द क्या चीज है और वह कहांसे, कैसे प्रकट होता है।

ये समस्त बाह्य पदार्थ अचेतन हैं, आनन्द गुणसे शून्य हैं उनसे आनन्द तो आ ही नहीं सकता। मैं आत्मा सहज ही आनन्द स्वरूप हूं। और आनन्द भी मेरे आश्रयसे प्रकट होता है। आनन्दमें बाह्य वस्तु प्रयोजक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं, प्रत्युत आनन्दके प्रतिबन्धक हैं। जब मोह रहता है तो प्रतिबन्धक भी प्रयोजक जैसा माननेमें आ जाता है।

३० अक्टूबर १९५७

बाह्य वस्तु कोई कितनी ही मनोहर लगे वह सब मोह राग प्रताप है। बाह्य वस्तुमें यदि वह अचेतन है तो वह उसके रूपका परिणमन है अजीव है वह जानकर करता ही क्या है, जाननेकी शक्ति भी नहीं है। यदि वह चेतन है उसमें भी एकेन्द्रिय है तो वह अतिमूर्छित जैसी अवस्था है उसका रूप आकार आदि अचेतन जैसे है। यदि कोइ त्रस है उसमें मनुष्य भी हो तो क्या है मल मास खूनका पुञ्ज है, मल ही मल जिसमें भरा है। तब कौन वस्तु रागके योग्य है। सबसे राग छोड़ो, यदि कुछ सुहावना लगे उसमें पश्चात्ताप ही करो, क्योंकि वह सब मोहकी लीलामात्र है, भ्रम ही है।

किसी पर वस्तुके अवलम्बनसे आत्मन् तेरा भला नहीं होनेका। संसारको देखा नहीं, ये बैल खेतमें हलमें जुत रहे, कैसे पीटे जा रहे इन पीटने वालोंको मानो यह भी पता नहीं है कि इनमें जान है मानो कुछ ऐसा ही समझते होंगे कि यह भी मशीन है और मशीनके चलानेका यह ही तरीका है।

ये बैल बिचारे पिटते जा रहे हैं इनमें ऐसा बल है कि ऐसे ऐसे दो चार किसानोंको मार भगायें पर ऐसा नहीं कर सकते हैं।

ये देखो ५० के करीब भैंसें हैं इन्हें यह ९ वर्षका बालक हांके जारहा है जिस चाहे उसको ललकार सुना देता है लाठी मार देता है। इनमें एकमें भी ऐसा बल है कि ऐसे ऐसे १०० बालकोंको मार भगायें पर कर नहीं सकतीं ऐसा। भैया अगर नहीं चेते तो ऐसा ही तो होना पड़ेगा।

३१ अक्टूबर १९५७

रुड़की—यहां एक आर्य समाजी डाक्टर हैं रिटायर सिविल सर्जन। इनकी रुचि ज्ञान प्राप्तिकी अधिक है सच्चे जिज्ञासु हैं प्रति दिन प्रत्येक प्रवचनोंमें उपस्थित होते हैं। भक्ति भी अपूर्व है। ये निष्पक्ष होकर सुनते हैं, अतः वस्तु स्वरूप हृदयमें बैठता जाता है।

कल्यानार्थियोंको पहिले वस्तुस्वरूपका भली भांति निर्णय कर लेना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहिये। वस्तु एक उतनी होती है जिसका कभी भी टुकडा न हो सके, भेद न हो सके ऐसी वस्तु एक एक करि अनत तो जीव हैं अनन्त पुद्गल हैं, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यातकाल द्रव्य।

प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य करि सहित है। कोई पदार्थ ऐसा नहीं हो सकता है कि उसकी कोई दशा ही न हो। जो दशा एक समयकी है वही दशा दूसरे समयकी नहीं है, शुद्ध पदार्थमें समान समान दशायें प्रति समय चलती हैं। वहां व्यतिरेक नहीं मालूम होता है तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे व्यतिरेक है क्योंकि प्रति समयकी नवीन नवीन दशायें हैं यदि ऐसा न माना जाय तो समय व्यतीत होनेका ही अभाव हो जायगा।

आत्मा भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यकार युक्त है। उपाधिवश इसकी वर्तमान में समल दशा हो रही है किन्तु स्वभाव नहीं बिगड़ गया। अहा देखो कितनी विषमताओंका समागम इस मेलामें है। परिवति वहिरात्मत्वकी हो और स्वभाव अन्तःप्रकाशमान हो। मोह जीव देख भर नहीं पाता कारण परमात्मत्व तो सदा अन्तः प्रकाशमान है।

१ नवम्बर १९५७

ध्यान स्वच्छ रखनेका उपाय तो यह ही है कि डायरैक्ट शुद्ध आत्मतत्त्वका ध्यान करने लगो। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। आत्माका विशेष तो अनादिसे ही पहिचाना जा रहा है। वस भी सर्वस्वरूप[illegible] पहिचाना जा रहा है।

इन विशेषोंकी स्वीकारतासे अब तक ववाण्डर बना चला जा रहा है। विशेषको भूलकर केवल सामान्य दृष्टिसे सामान्यतत्त्वका अवलोकन करो निर्विकल्पता आवेगी।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता कि पदार्थ केवल सामान्यरूप तो है नहीं फिर केवल सामान्यका अवलोकन अप्रमाण ही रहेगा। उसका उत्तर यह है कि पदार्थको सामान्यविशेषात्मक जैसा है वैसा न मानकर केवल सामान्य रूप जैसा ही समझे तो उस सामान्यतत्त्वके विज्ञान बलसे निर्विकल्पताकी ओर उपयोग झुकता है। यह अवलोकन तब अप्रमाण होता जब कि केवल सामान्यरूप वस्तुकी प्रतीति रखता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

ज्ञानी जीवका सामान्यतत्त्वकी ओर उपयोगी सहज ही और क्यों प्रायः जाता है इस प्रश्नका समाधान केवल इतने शब्दोंसे हो जाता है कि जीवको ध्रुवताकी ओर रुचि बनती है। जब अध्रुवको ध्रुवरूप मानता था तब अध्रुवकी ओर रुचि रहती थी अब तत्त्वविज्ञानके कारण सत्यार्थ ध्रुवको पहिचाना तब ध्रुवकी ओर रुचि चलने लगी।

२ नवम्बर १९५७

सन्तोंका संग संसारनिवृत्तिके उत्साहमें निमित्त है, मोहियोंका सङ्ग परसंग्रह विषयसंरक्षणके उत्साहमें निमित्त है।

विषयकी ओर एक बार परिणति जाने पर फिर प्रायः उस ही ओर बुद्धिपतित हो जाती है। अच्छे याने कल्याणकी ओर बुद्धि एक बार क्या अनेक बार लगाने पर सफलता मिलती है।

निरन्तरका जनसहवास कल्याण मार्गका बाधक है। एकान्तसंवासमें बने रहनेकी कमजोरी जबतक है तब तक इतना ही ठीक है कि भाषण प्रवचन, भजन आदिके प्रोग्रामोंमें सम्मिलित हो लेना। इसके अतिरिक्त अन्य समय भी सहवास रहा तो परिणामोंकी निर्मलतामें बाधा ही बाधा है।

एकान्त संवास तत्त्वविज्ञानीका हो तो उसका एकान्त संवास निभता रहेगा, क्योंकि वह वहां भी ज्ञानके साथ है। तत्त्वविज्ञानीका एकान्तसंवास चैतन्य चमत्कारकी वृद्धिमें सहायक है।

अपने आपकी परम दयाका प्रसाद तो यही है कि उसे अपने आपमें अकेलेमें रहनेकी प्रबल उत्साह हो जावे।

दिखने वाले लोगोंमेंसे कोई भी अपना सहायक नहीं है क्योंकि जो कुछ अपने पर आ पड़ती है वह अपनी ही परिणति, उसमें दूसरा क्या करे।

बाह्य जगतको अपनेसे भिन्न जानकर उससे उपेक्षा करो तो अन्तर्गत भी छूट जायेगा। अन्तर्गतको निज स्वभावसे भिन्न मानो तो बाह्य जगत् का छोड़ना सुगम हो जायगा।

३ नवम्बर १९५७

परम शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे सत्यार्थनय कहा है अथवा परमशुद्ध-निश्चयनयकी दृष्टिसे जाना गया परमशुद्ध याने निरपेक्ष। Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वतः सिद्ध स्वभाव सत्यार्थ कहा है इसी सत्यका एकान्त करे तो वह झूठ क्यों है अथवा मिथ्यावाद या एकान्तवाद क्यों है। यह आध्यात्मिक जगतमें रखा जाने योग्य गम्भीर प्रश्न है।

इस प्रश्नका हल करनेसे पहिले हमें अपना भी खुद विचार करना चाहिये कि हम आत्मा हैं या मन। हम यदि आत्मा हैं तो यह सोचे कि इस युक्त आत्माको दुःखका, विकारका अनुभव है या आनन्दका, शुद्धपरिणमन का अनुभव है। यदि दुःखका, विकारका अनुभव है तो हम आत्मा वर्तमान में विकारी हो गये अब यह देखना है कि वह विकार केवल एक निजआत्मा के स्वभावके कारण ही प्रकट हुआ है या अन्य किसी उपाधिका संयोग पाकर? यदि केवल निजस्वभावके कारण ही प्रकट हुआ है विकार तो वैसा वैसा ही विकार निरन्तर होते ही रहना चाहिये उसमें हीनाधिकता बिलकुल नहीं होना चाहिये। किन्तु, देखी जाती है हीनाधिकता। अतः निजस्वभाव के ही कारण तो विकार हुआ नहीं। उपाधिका संयोग पाकर हुआ तो कुछ परिणामों ऐसी निर्मलता शक्ति है कि उसके प्रसादसे उपाधिसे मुक्ति मिल सकती है। और ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर वह विकास प्रकट होता है जो परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिसे देखे गये परमसत्यस्वरूपके अनुरूप होता है और फिर उस विकासमें न्यूनाधिकता नहीं होती है।

४ नवम्बर १९५७

परमब्रह्मका एकान्त माननेकी स्थितिमें दूसरा प्रश्न यह है कि क्या हम मन हैं। यदि हम मन हैं और मन ही दुःखी है तो उस मनको ही मुक्ति दिलानी है। जो सत् होता है वह कभी समूल नष्ट नहीं होता है। मनकी मुक्ति होने पर मनकी क्या दशा रहती है यह इस प्रसङ्गमें उपप्रश्न हो जाता है। और विकल्प हो सकते हैं कि क्या मन निर्दोष हो जाता है या मनका विनाश हो जाता है या मन ब्रह्ममें या परमात्मामें लीन हो जाता है। यदि मन निर्दोष हो जाता है तो मन ही परमात्मा बन गया ऐसी अवस्थामें मन आत्माका पर्यायवाची शब्द रहा।

यदि कहो मन अचेतन है, आत्मा चेतन है, आत्माके प्रकाशमें मन चेतन सा बनकर दुःखका अनुभव करता था अब मन निर्दोष हो गया याने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अचेतन हो गया सो अब दुःखका अनुभव नहीं रहता। तो इसमें २ बातें हंसी जैसी आती हैं कि चेतनका सम्बन्ध ही अपराध है। जिसका सम्बन्ध महान् अपराध है वह तो बड़ा दूषित ही होगा तो क्या यह ब्रह्म (आत्मा) ऐसा दूषित है। दूसरी बात यह आती है कि अचेत हो जाना ही वास्तविक धर्म है, मोक्षमार्ग है।

यदि कहो मनके विनाशका नाम मुक्ति है तो मन द्रव्य है या पर्याय याने किसीकी दशा? यदि मन द्रव्य है तो उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। यदि मन पर्याय है तो किसका पर्याय है? चेतन द्रव्यका या अचेतन द्रव्यका? यदि चेतन द्रव्यका मन पर्याय है तो यह अर्थ हुआ कि चेतन द्रव्यकी विकारी मनपर्याय अब शुद्ध चेतन रूप होकर नष्ट हो गई। यदि अचेतनका पर्याय है तो यह अर्थ होगा कि अचेतनकी मन पर्याय मिटकर किसी अन्यरूप हो गया। अचेतन होनेका नाम मुक्ति बन गया। मन लीनके पक्षमें भी प्रायः ऐसे ही हाल है।

५ नवम्बर १९५७

आत्मासे सर्वथा भिन्न मनकी कल्पनामें और उस मनके ही संसार मोक्षकी कल्पनामें यदि ऐसा अभिप्राय जाय कि जब मन आत्मामें लीन हो जाता है तब मोक्ष हो जाता है। सो तत्त्व तो यह है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में लीन हो ही नहीं सकता। कितना भी घनिष्ट दो द्रव्योंका संयोग हो जाय तो भी दोनोंके दोनों परिणमन चलते रहेंगे वहां लीनपनेका कुछ भी अर्थ नहीं है।

अब हम अपनी मूल समस्या पर आये कि परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टि से देखा गया परमपरिणामिकभावमय शुद्ध ब्रह्म शुद्ध ही है ऐसा एकान्त क्या हमारे कल्याण का बाधक है।

भाई! बात यह है कि मैं मन हूं और आत्मासे भिन्न हूं ऐसी प्रतीति होने पर गत आत्मामें लीन होना चाहे तो तीन कालमें भी लीन नहीं हो सकता है, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें कभी भी लीन नहीं हो सकता है। मनके लिये आत्मा परद्रव्य है, परद्रव्यके ध्यानसे निर्विकल्पता कभी नहीं आ सकती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो हम आत्मा हैं और प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हैं, अतएव एक मैं भी सामान्यविशेषात्मक हूं मैं सामान्यस्वरूपको देखता हूं तो वह शुद्धस्वभाव है याने उसमें न किसीका मेल है और न निजस्वभावके कारण विकार है। यदि ऐसे निजस्वभावको देखूं तो हमारी विकारी पर्याय नष्ट होकर अविकारी पर्याय प्रकट हो जाती है। अतः अनेकान्तात्मक आत्मवस्तुको पूर्ण रीतिसे जानकर फिर ध्रुव स्वभावमें दृष्टि स्थिर कर लेना कल्याणका उपाय है।

९ नवम्बर १९५७

श्री पं० धरणेन्द्रकुमार जी एक सौम्यस्वभावी विद्वान हैं। रुड़कीमें जैन पाठशालामें अध्यापनकार्य करते हुए करीब २२ वर्ष हो गये। एक स्थान पर धर्माध्यापन पर विद्वानका इतने दिन बना रहना ही इस बातका परिचायक है कि पं० जी सरल निश्छल विवादसे परे रहने वाले व्यक्ति हैं।

आज उपवास सानन्द हो रहा है। भगवती आराधनाका देहकी असारताका वर्णन करने वाला यह प्रकरण विशेष लाभ प्रकट करता हुआ सुननेमें आया। इसके ये दो बाह्य कारण भी हो सकते हैं—एक तो जंगलमें पढ़ना और दूसरे उपवासका होना।

यह देह बड़ा बीभत्स है, यह इतना बड़ा होकर भी चिकना सुहावना होकर रज वीर्यका पिण्ड ही है। यह गर्भमें १० दिन तो रज वीर्यकी उसी आकृतिसे रहता है फिर २० दिन यह काला पड़कर कुछ बढ़ने लगता है फिर दूसरे माह स्थिर होता है, तीसरे माह मास पिण्ड बनता है चौथे माह हाड रुधिरकी रचना होती है पांचवे माह ५ पोदे फूटते हैं दो हाथके लिये, दो पैरोंके लिए १ सिरके लिये। छठे माहमें अङ्ग उपाङ्ग बनते हैं। सातवे माहमें सही चाम व रोम आदि प्रकट हो जाते हैं ८ वें व ९ वे माहमें इन ही की वृद्धि होती है। किसीका ७ माहके बाद किसीका ८ माहके बाद किसीका ९ माहके बाद उदरसे बाहर निकलना होता है।

देहको प्रत्येक कण मलिन है। किन्तु मोही जीव ऐसे भी शरीरको पाकर देहासक्त रहते हैं। ज्ञानीकी दृष्टि देहसे भिन्न निज आत्मतत्त्व पर रहती है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

७ नवम्बर १९५७

आज अष्टान्हिका पर्वका अन्तिम दिन है, कुछ अजैनोंमें भी कार्तिक स्नान चला आ रहा था उसका भी आज अन्तिम दिन है। अष्टान्हिका पर्वमें ८ दिन चौबीसों घण्टे नन्दीश्वर द्वीपमें ५२ चैत्यालय चैत्योंकी पूजा देव देवेन्द्रों द्वारा होती है। उसीका रूप किसीने किसी रूपमें किसीने किसी रूपमें मनाया है। बड़े ही सुबह स्नानकर गान, भजन, कीर्तन, पूजन करना इन दिनों सर्वत्र प्रायः देखा जाता है।

व्यवहारधर्मका प्रयोजन निश्चयधर्मके अत्यन्त विरुद्ध कार्योंसे अलग हटाना है। यदि निश्चय धर्मकी ओर झुकाव नहीं होता है तो सर्व परिश्रम व्यर्थ है।

धर्म प्राप्तिके लिये वस्तुस्वरूपका ज्ञान प्रथम आवश्यक है। वस्तु विज्ञान बिना प्रशमभाव हो ही नहीं सकता। बाह्य वस्तुवोंमें उपयोग रखे, आत्मबुद्धि करे और क्षोभका अभाव चाहे वह बबूल बोकर आम चाहनेके सदृश है।

धर्मका मर्म जान लेने पर जो भाव धर्मविकासके कारण हैं उन भावों को करते जाओ। धर्ममार्गमें चलते हुए भी अनेकों लोग अपनी कषायोंके अनुसार अपवाद करेंगे, किन्तु सोचो तो सही, उस अपवादसे बुरा होगा क्या? उस अपवादसे बुरा नहीं होगा। अपवाद सुनकर पर्यायबुद्धि करके स्वभावसे च्युत होकर ग्लानभाव करे उससे बुरा होगा।

आज श्री फतेलाल जी संघीने मुमुक्षुसत्सङ्गमें ज्ञानप्रभावनाकोषका उद्घाटन किया, उसमें १०१) भी दिये, अन्य भाईयोंने भी दिये।

८ नवम्बर १९५७

नरदेह तो वैराग्यके लिये मिला था किन्तु मोही उसे भी रागपुष्टिका साधन बना लेता। नरदेह वैराग्यके लिये मिला इसका सरल प्रमाण तो यही है कि तभी यह महा अशुचि, मल मूत्र मांस रुधिर अस्थिका पुञ्ज है और यह मृतक होने पर किसी काममें नहीं आता, इसका जलाना या गाड़ना ही लोकोंको अभय बना पाता। नवद्वारसे निरन्तर मल झरता है, अनेकों रोगों का यह कारण है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नारकी और देवोंका शरीर तो मास अस्थिसे रहित है सो दुःख सुख चाहे उन्हें कैसा हो परन्तु वैराग्यका कारण वह शरीर नहीं बन पाता।

यहां शङ्का केवल तिर्यञ्चके लिये कर सकते हैं कि तिर्यञ्चोंका भी तो शरीर मास अस्थिकरि निवृ त्त है यदि वैराग्यके लिये अशुचि शरीर बना तो उस शरीरमें तो यह बात नहीं घटती उत्तर यह है कि इस बातको जांचना ही है तो देखो लोकमें तिर्यञ्चोंके मल मूत्र भी बिलकुल अस्पृश्य हों सो बात नहीं है। इसी प्रकार उनके अस्थि चाम आदिमें भी मनुष्योंके अस्थि चाम जैसी ग्लानिके योग्य लोकोंको नहीं बनती है। उनके अस्थि चाम भी अन्तमें कामके रहते हैं लोक उन्हे व्यवहारमें लाते हैं। इत्यादि बातोंसे वैराग्यके योग्य अति अशुचिता नरदेहमें मिलती है। सो नरदेहको वैराग्यका साधन बनाया जावे तब तो ईमानदारी है अन्यथा बेईमानीका फल तो दुःख ही है।

९ नवम्बर १९५७

आज रुड़कीसे जानेका समाचार सुनकर यहांके समाजकी शोकमग्न मुद्रा देखकर मैं अवाक् सा रह गया। तो क्या सब कुछ घर बार, देश छोड़ने के बाद भी आजकल त्यागियोंको यह सामना भी करना पड़ेगा।

यहांके जैन व अजैन भाइयोंके धर्मानुरागको देखकर चित्त गद्गदता से भर जाता है। ऐसा विशिष्ट धर्मानुराग मैंने कहीं भी न देखा। अजैन बन्धुवोंकी इतनी निकटता होना रुड़कीमें ही मिला। जैन सिद्धान्त कितना निष्पक्ष सिद्धान्त है इसे वस्तुस्वरूपकी पद्धतिसे न रखकर हमारा धर्म, जैन धर्म, जैनियोंका धर्म आदि रूपसे रखने वाले स्वयं सत्यता व यथार्थ आनन्द से वञ्चित हो सकते हैं और दूसरोंके लाभके भी घातक हो सकते हैं।

वस्तु धर्म, आत्मधर्मकी ही मेरे उपासना है। इसका पालनकर कोई भी निर्मल आत्मा, परमात्मा हो गया है वह विषयकषायोंके कुत्सित परिणामोंसे बचनेके लिये मेरा उपास्य है और इस रीतिसे सावधानीका बल पाते ही वस्तु धर्म, आत्मधर्म मेरा परमोपास्य है।

हे ध्रुव स्वभाव! सदा दृष्टिपथगामी रहो। हे अशरण शरण! सदा तेरे शरणस्थ रहूं।

हे अविकार चैतन्यस्वभाव! तेरी उपासनामें विकारको अवकाश ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं मिल सकता। अतश्च तेरी उपासना अविकारताके विकासका ही कारण है?

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

आज रुड़कीसे चलकर ६ मील पर मंगलौर आये।

१० नवम्बर १९५७

मंगलौरमें अजैनोंके भी काफी उत्साह दीखा कल रात्रिको प्रवचन था उसमें $\frac{1}{3}$ संख्या जैन बन्धुवोंकी थी व $\frac{2}{3}$ संख्या अजैन बन्धुवोंकी थी।

आज सुबह जैन मन्दिरमें प्रवचन चला।

गृहस्थ धर्मकेलिये कमसे कम इतना कर्तव्य तो होना ही चाहिये प्रत्येक घरके सभी सदस्य बूढे जवान बच्चे 'महिलायें' सब प्रातः सूर्योदयसे १ घण्टा पहिले अवश्य उठे और एक निश्चित कमरेमें एकत्रित हों। वहां छोटे बडों को प्रणाम व जयजिनेन्द्र करें और बड़े छोटोंको जयजिनेन्द्र कहें। पश्चात् आत्मकीर्तन पाठ हो, पश्चात् ६ बार णमोकार मंत्र पढ़ें। इसके अनन्तर जो मुख्य हो या शिक्षा देने योग्य हो वह १५–२० मिनट किसी पुस्तकके आधार पर या मौलिक शिक्षा देवे। पश्चात् सब अपने अपने कार्योंमें व्याप्त न हो जावें। वहां भी सबसे पहिले यह काम है कि व्यायाम स्नानसे निबटकर भगवत्पूजा, वंदना, स्वाध्याय करें।

यदि सूर्योदयमे १ घण्टा पहिले सब उठकर आधा घण्टा उक्त काम घर पर ही किया जावे तो उसमें इतने लाभ हैं—

(१) छोटे बड़े सबका प्रेम, सौहार्दपूर्ण व्यवहार बनना।

(२) धार्मिकताके लिये उत्साह, प्रेरणा व शिक्षा मिलना।

(३) समस्त परिवारका संतोष व सहानुभूतिपूर्वक रहना।

(४) व्यसनादि कृत्योंसे सबका बचे रहना।

(५) आध्यात्मिकता व सद्विचारोंका पूरे दिन विकास रहना।

११ नवम्बर १९५७

आज प्रातः पुरकाजी आये, यहां यद्यपि ३ ही जैनगृह हैं परन्तु उस ग्राम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के मुख्य लोग हैं। यहांकी व आसपासकी जनताका भाव देखकर और उनके आग्रहसे शामके लिये भी रुक गये।

मनुष्य कहीं हो किसी जगह हो, यदि आत्मभावनाकी बात कर लेता है तो वह वहां भी लाभमें है। इष्ट स्थानमें भी हो और आत्मभावनासे च्युत हो रहा तो यद्यपि वहां सहस्रों मुद्राओंका भी लाभ हो तो वह लाभ नहीं प्रत्युत आत्माकी क्षति ही है।

किधर भी रहो आत्मभावना न भूलो। मोक्षमार्ग सदा साथ है। ध्येय सदा साथ है तो ध्येय पूर्ति सर्वत्र हो सकते हैं। इसहीमें आनन्द है और आनन्द भी सहज आनन्द है।

कैसा भी साधन हो कैसा भी समय हो कैसा भी संग हो, यदि भ्रमका समूल नाश हो गया तो उसे कहीं भी भय नहीं है। किन्तु कभी भ्रम ऐसा उपशान्त हो जाता कि यही अनुभव होता है कि भ्रमका समूल नाश हो गया परन्तु कारण पाकर उपशान्त भ्रम उदित हो जाता है। अतः पतनके निमित्त भूत साधनोंसे हमें सदैव बचना चाहिये।

१२ नवम्बर १९५७

आज प्रातः पुरकाजीसे ७० मील पर छपार आये। दुपहर सामायिकके बाद चलकर ३॥ मील पर सिसोना आये।

जीवन यों ही निकला जा रहा है। मनुष्य जीवनसे जीकर करना क्या है? यदि भोजन और लौकिक मौज ही करना ज्ञात हो तो जिस चाहे जीवन से जीते रहते।

मनुष्य जीवनका पहिला लाभ तो यह लेना चाहिये कि बुद्धिको तत्त्व-ज्ञानमें लगा दें। दूसरा लाभ यह ले कि मनका अपने विचारोंमें लगाये, दूसरोंकी भलाईके विचारमें मनको लगाये, किसीके अनिष्ट चिन्तनसे तो मनको अत्यन्त दूर रखें। तीसरा लाभ यह लें कि वचनका ठीक सदुपयोग करें याने हित मित प्रिय वचन बोलें। चौथा लाभ यह लें कि तनका सदुपयोग करो अर्थात् परसेवामें अपने सब कामोंमें शरीरको लगायें, इस शरीरसे अधिक से अधिक काम करायें। पाँचवां लाभ यह लें कि धनका सदुपयोग करें, जो धन पाया है उसे अनेकोंके लाभके लिये समझकर दुःखियोंकी सेवामें लगायें,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्व दुःखोंकी शान्तिके कारणभूत ज्ञानकी प्रभावनाके लिये साहित्यप्रकाशन साहित्यवितरण विद्वत्सेवा मन्दिर व्यवस्था भाषणप्रबन्ध आदिमें धनका व्यय करें।

मनुष्यको धन तन वचन मन प्राप्त हुआ है यह तो मिट ही जावेगा इसका सदुपयोग करके अपनी उन्नति कर लो।

बुद्धि भी यहां सुव्यवस्थित मिली। यदि इसका सदुपयोग न किया तो यह भी स्थिति न रहेगी।

१३ नवम्बर १६५७

आज प्रातः सिसोनासे ५॥ मील पर मुजफ्फरनगर आये। सभी भाइयों का उत्साह परिचित त्यागियोंके अनुराग जैसा था। किसीके स्वागतमें होने योग्य सभी प्रकारका साज करके भी आडम्बर न था।

मनुष्य भवका महत्त्व इन्द्र भवके महत्वसे भी अधिक है। जिस उपयोगमें किसी भी प्रकारके विषयको वासना हो वहां अनाकुलता और पवित्रता कैसे हो सकती है।

विषयवासनाका विजयी मनुष्य ही क्यों हो सकता है उसमें भी कर्मभूमिका मनुष्य ही क्यों हो सकता है? इसका यह कारण है कि जहां इष्ट वियोग, देहरोग, अकाल मृत्यु संभव है तथा मन श्रेष्ठ है वहां वैराग्यकी सिद्धि हो सकती है।

भोगभूमिके मनुष्योंमें उक्त बातें संभव नहीं तथा देवोंमें उक्त बातें संभव नहीं हैं अतः वैराग्यका जमाना नहीं बन सकता।

आज श्री ला० दीपचन्द जी जैन देहरादून वाले आये। ये बहुत ही सज्जन पुरूष हैं। धार्मिकता भी पूरी तौरसे भरी हुई है श्रेष्ठता तो इसी बातमें है कि लौकिक सुखसाधनोंकी समग्रता होते हुए भी उनसे उदासनता बनी रहना।

विकल्पोंकी भरमारको तो सदा सचेष्ट रहना और कदाचित् धर्म करने की इच्छा जगे तो धर्मकार्यको अब कुछ दिन बाद करूंगा ऐसी टाल करते रहना लाभकी बात नहीं है, क्योंकि ऐसी टाल टालमें ही कदाचित् जीवन समाप्त हो जाता है और धर्मकार्यकी बात कल्पनामें ही रह जाती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिनके धर्मकी इच्छा ही नहीं है उनकी महिमा तो विलक्षण ही है।

१४ नवम्बर १९५७

प्रशंसाका चक्र सब चक्रोंसे कठिन चक्र है, इसका विजय करना अति कठिन है। विपदाका मूल यह चक्र है। आत्माका घात करने वाला यह चक्र है। प्रशंसाके प्रवाहमें अपने प्रभावको नहीं बहा देना ही उदारता है।

प्रशंसामें आकर धन व्यय कर देना, परसेवा कर देना उदारता नहीं है, किन्तु प्रशंसासे चित्तको क्षुब्ध न करना तथा सत्य स्वदया एवं परदयाका वर्तन रखना उदारता है।

कृपा तो निजमें विराजमान ईश्वरकी ही तो उससे उद्धार ही उद्धार होता चला जाये। ईश्वरका प्रसाद ही ईश्वरकी कृपा है। प्रसन्नताको प्रसाद कहते हैं। निर्मलताको प्रसन्नता कहते हैं। कोई भी मल न होनेको निर्मलता कहते हैं। चैतन्यतत्त्वमें कोई मान नहीं है मात्र उपाधिवश मलका अविर्भाव है। सो सर्व मल रहित चैतन्य तत्त्वका दिख जाना ही पहिला प्रसाद है।

ज्ञाता द्रष्टा रहो, तुम न किसीका सुधार कर सकते और न बिगाड़ कर सकते। तुम्हें यदि दूसरेको सुधार पर लाना है और विगाड़से बचाना है तो उसका उपाय मात्र यह है कि पहिल तुम ही सुधर जावो, गम्भीर, धीर व ज्ञाता द्रष्टा हो जावो, फिर तुम्हारी सहज चेष्टा अथवा दर्शनको निमित्तमात्र पाकर ही जिनका होनहार अच्छा है वे स्वयं सुधर जायेंगे व बिगाड़से बच जायेंगे।

इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, धन कम हो जाना, लोगोंका प्रतिकूल होना आदि विपत्तियां तेरे सुहाग हैं। ये सुहाग जिन्हें नहीं मिलते ऐसे देव भोगभूमि या आदि जीव अनन्त आनन्द पानेके पात्र नहीं होते।

१५ नवम्बर १९५७

भावेन्द्रिय लब्धि और उपयोगरूप होती है। उसमें लब्धिरूप भवेन्द्रिय के कारण तो द्रव्येन्द्रियकी रचना होती है। फिर द्रवेन्द्रियके कारण उपयोगरूप भवेन्द्रिय होती है। लब्धि ज्ञानावरणके क्षयोपशमको कहते हैं।

इस समय हमारे लब्धि और उपयोग दोनों प्रकारसे भावेन्द्रिय हो रही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रिय शब्दका जो व्युत्पत्त्यर्थ है उससे साक्षात् भावेन्द्रियका ही ग्रहण होता है। क्योंकि इन्द्रियका अर्थ है इन्द्रस्य लिङ्गम् इन्द्रियम्। इन्द्र याने आत्मा, उसका जो चिन्ह है उसे इन्द्रिय कहते हैं। यहां झट पहिचान जाने जा सकने वाले चिन्हसे प्रयोजन है। आत्माका चिन्ह ज्ञानका विकास है? ज्ञानके विकासोंमें स्पर्शनज्ञान, रसज्ञान, गन्धज्ञान, रूपज्ञान, शब्दज्ञान, व अनेक संकल्प विकल्पोंका ज्ञान सुगम समझमें आने योग्य हो रहा है। ये सब भावेन्द्रियके उपयोग है। इस प्रकार इन्द्रिय शब्दसे भावेन्द्रियका ग्रहण होता है। इस भावेन्द्रियकी लब्धि शक्तिके निमित्तसे द्रवेन्द्रियकी रचना होती है इस कारण तथा शरीरेन्द्रियके निमित्तसे भावेन्द्रियका उपयोग होता है इस कारण द्रव्येन्द्रियको भी इन्द्रिय कह दिया है।

आज कल प्रायः सर्व साधारणका इन्द्रिय शब्दसे द्रव्येन्द्रिय पर ही लक्ष्य जाता है। ये सब इन्द्रियां विकार हैं, आत्माका स्वरूप तो अतीन्द्रिय है। ॐ तत् सत्।

१६ नवम्बर १९५७

हिम्मत ऐसी होना चाहिये कि जगत कैसा प्रतिकूल परिणमे किन्तु अपनेमें कषाय न जगे।

आराममें कहीं रहते हुए चाहे मन माने कि यहां मैं बहुत शान्तिसे हूं, धर्मसाधन भी मेरा ठीक है। किन्तु, वहां भी कर्मबन्धन कितना हो रहा है यह जानकारी तो प्रतिकूल परिस्थिति होने पर होने वाली परिणतिसे समझा जा सकता है। अतः बाह्य समागमोंसे गुजर जाना भी एक अपनी उन्नतिका सहयोग है।

सज्जन पुरुष न बिगड़ते हैं, न रिसाते हैं। बिगड़ने वाले और रिसाने वाले हृदयके मलिन होते हैं, उनका समागम फलप्रद नहीं होता। अतः मलिन पुरुषोंका संग तो छोड़ना चाहिये किन्तु यदि कारणवश छोड़नेमें विलम्ब भी करनेकी आवश्यकता देखी जाती हो तो वहां भी धैर्य ही रखना उत्तम है।

बुद्धिमान लोक क्षोभकी प्रशंसा नहीं करते। जैसे जुवारी जुवारियोंकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रशंसा करते हैं वैसे लुब्ध लोक लोभकी प्रशंसा करते हैं। लोभमें आनन्द नहीं है। आनन्द आत्म गुणानुरागमें है।

१७ नवम्बर १९५७

सुख सदा आत्मासे ही प्रकट होता है। चाहे मुक्त जीव हो चाहे संसारी जीव हो उसको आनन्द उससे ही प्रकट होता है।

स्वयं सुख रूपसे परिणमते हुए जीवको विषयसाधन क्या करे? विषयसाधन सुखके लिये व्यर्थ है। मोहियोंने विषयोंको सुखका साधन माना है। यह मोहियोंकी कल्पना है।

जैसे नाबालिगकी करोड़ रुपयेकी जायदाद कोर्ट करके ५००) मासिक उसके खर्चके सरकार देती है तो जब तक वह अबोध है तब तक वह सरकार के गुण गाया करे तो गाया करे कि सरकार बड़ी कृपालु है मुझे बैठे बैठे ५००) मासिक दे रही है, परन्तु ज्योंही उसे असलियतका पता लग जाता है कि सरकारने करोड़ रुपयेकी मेरी जायदाद छीन ली है उसके बदले यह ५००) मुझे देती है, इस बोधके होते ही वह ५००) का राग छोड़ देता है और इन ५००) के लेनेको अपनी जायदादकी प्राप्तिका बाधक समझता है। इसी कारण ५००) का नकार करके सरकारसे अपनी सब जायदाद वसूल कर लेता है। वैसे कर्माविष्ट मिथ्यादृष्टि, नाबालिग आत्माकी अनुपम अनन्त ज्ञान आनन्दमय जायदाद कर्मने कोर्ट करली है, उसके एवजमें विषयोंये प्रसंग जुटाकर कर्म इन्द्रियसुखमें ही नाबालिग आत्माको बहका रहा है। किन्तु जब आत्मा बालिग हो जाता है याने सम्यग्दृष्टि हो जाता है तब पुण्य सरकारके कारण प्राप्त सामग्रीका राग छोड़ देता है और इन प्राप्त विषयोंके उपयोग को अपनी अनन्तविभूतिकी प्राप्तिका बाधक मानता है। इसी कारण विषयों का नकार करके अपनी अनन्तज्ञान दर्शन सुख शक्तिमय विभूतिको वसूल कर लेता है।

१८ नवम्बर १९५७

आत्माका आत्मा ही गुरु है, यही एक अपने आपको जन्मको ले जाता है और यही एक अपनेको निर्वाणको ले जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस आत्मामें स्वयं ऐसी कला है और पुद्गलमें भी स्वयं ऐसी शक्ति

 http://www.jainkosh.org

है कि जिसके कारण निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बन रहा है और दोनों मलीन हो रहे हैं।

लोग हठ करते हैं, करें, जब तक उनके पुण्यका उदय है, उन्हें विनश्वर बल मिला है, करलें मन मानी। परन्तु, जब यह काय वियुक्त होगा तब हठ नहीं चलेगी कि मैं अब घोड़ा नहीं बनना चाहता हूं या नर्क नहीं जाना चाहता हूं आदि।

रंच भी हठ न करो जो विवेकका न्याय हो सो करो।

हे परमपारिणामिक भाव! तेरी भक्तिमें यह नियम करूं कि छोटीसे छोटीसी बातका भी मैं हठ न रखूंगा।

दूसरेकी हठ रख रखकर अपनेको निरभिमानी रखनेका अभ्यास करो। यदि विवेकमें वह हठ ठीक न उतरे तो न मानो।

किसी भी स्थितिमें स्वयंका अपमान महसूस न करो। अपमान तो तुम्हारा प्रतिपल हो रहा है वह है परोपयोग सम्बन्धी, उसे दूर करो यदि दूर करते बन सके। ऐसा मत करो कि गधासे न जीते कुम्हारीके कान मरोर दिये।

१६ नवम्बर १९५७

आज ३। बजेसे नइ मण्डी मुजफ्फरनगर चलनेका प्रोग्राम है।

विहार सर्वत्र चिन्ता रहित हो तो वह विहार है अन्यथा व्यवसाय याने व्यायाम है। व्यायाममें क्या लाभ है, लाभ तो आराममें है और वह भी सच्चे आराममें है।

जैसे सरकारी कुर्सी पर बैठे हुए की स्थितिमें जो वायदे किये गये जो देश विदेशका सम्पर्क किया, सरकारी कुर्सी छूटनेके बाद उसका उत्तरदायित्व नहीं रहता, उसका फल भोगनेको बाध्य नहीं रहता वह। वैसे ही अज्ञान अवस्थायें बांधे हुए कर्मोंके फल भोगनेका उत्तरदायित्व ज्ञान अवस्था होने पर नहीं रहता है।

अज्ञानमें बांधे हुए कर्म अज्ञानमें ही फल देनेमें समर्थ हैं। ज्ञानी जीव को अज्ञानबद्ध कर्म फल देनेमें असमर्थ हैं।

समस्त कर्म फलोंको औपाधिक देखकर उनकी उपेक्षा करने और इसी कारण मन वचन कायकी क्रियाके रुकनेसे चैतन्यस्वभावके अनुभवसे जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आनन्द प्राप्त होता है वह अनुपम है। ऐसे ही आनन्दमें वर्तते हुए मेरे सर्व समय बीतो। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

२० नवम्बर १९५७

७ दिसम्बर तकके लिये प्रोग्राम मुमुक्षु सत्सङ्गके मुमुक्षुवोंका प्रोग्राम

४	४–३५	आत्मकीर्तन शास्त्र सभा
४–३५	५–४०	स्वतन्त्र स्वाध्याय
५–४०	६–३०	सामायिक
६–३०	७–५	पर्यटन, शौचनिवृत्ति
७–५	७–४०	स्नान, व्यायाम
७–४०	८–१५	देवदर्शन पूजा वंदना
८–१५	८–५०	प्रवचन
८–५०	९–५	विश्राम
९–५	९–४०	शास्त्र सभा
९–४०	१०–१५	आरम्भ सेवा
१०–१५	१०–५०	भोजनशालामें प्रथम प्रतिभोज
१०–५०	११–२५	भोजनशालामें द्वितीय प्रतिभोज
११–२५	११–३५	विश्राम
११–३५	१२–२५	सामायिक
१२–२५	१	लेखन
१	१–३५	पाठशाला
१–३५	२–१०	पाठशाला
२–१०	२–४५	पाठशाला
२–४५	३	विश्राम
३	३–३५	शास्त्रसभा
३–३५	४–१०	चर्चा समाधान
४–१०	४–४५	जलपानादि
४–४५	५–२०	पर्यटनादि
५–२०	६–१०	सामायिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

६–१०	६–४५	स्वतन्त्र स्वाध्याय
६–४५	७–२०	शास्त्रसभा
७–२०	७–३५	चर्चा
७–३५	८–१०	सभा भजनादि
८–१०	८–४५	प्रवचन
८–४५	६	भजनादि

पश्चात् विश्राम शयन

मौनका समय

प्रातः ५ से ६–२० तक

दुपहर ११–३५ से १२–४५ तक

सायं ५–२० से ६–४० तक

यह प्रोग्राम मुमुक्षुसत्सङ्गमें रहने वाले मुमुक्षुवोंका है ।

२१ नवम्बर १६५७

स्वाद पदार्थोंमें नहीं है, यह जीवकी कल्पनामात्र है । हां रस पदार्थमें है किन्तु उसका स्वाद आ जाये यह बात पदार्थकी नहीं है । तभी तो पित्त ज्वर वालेको मीठा स्वादिष्ट नहीं लगता, विरक्त महात्माको कोई भी भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता ।

अब तुलनाकी बात देखिये—ताजी भुनी हुई मूङ्गफलीका स्वाद कभी काजुवोंसे भी अच्छा लगता है किन्तु यह मालूम होते ही कि काजू तो ५) सेर हैं मूंगफली ।।) सेर हैं, तुरन्त स्वादु पुरुष कल्पना करने लगता है कि काजू मूंगफलीसे अधिक स्वादिष्ट हैं ।

इलाहाबादी अमरूद सेवसे भी स्वादिष्ट हो किन्तु भावके अन्तर जानने वालेको सेव ही उत्कृष्ट मालूम होता है ।

मिठाई खाते रहने पर अन्तमें दाल रोटी खानेको चित्त चाहता है वहां दाल रोटी स्वादिष्ट लगती है ।

बात तो यह होना चाहिये कि जिसकी जहां उपयोगिता हो वह वहां स्वादिष्ट लगना चाहिये ।

Version 1

आत्मीय शाश्वत निराकुल सहज आनन्दके अनुभव कर लेने पर विषयों

http://sahjanandvarnishastra.org/

के आश्रयसे कल्पना किया जाने वाला सुख विरस लगने लगता है।

कुछ भी हो स्वाधीन बात आनन्दप्रद होती ही है।

२२ नवम्बर १९५७

आत्मा ज्ञानमय है व सुखमय है सो ज्ञान व सुखका आत्मामें तादात्म्य है फिर भी गुणोंके स्वरूप भिन्न भिन्न हैं अतः ज्ञानमें सुखका तादात्म्य नहीं है।

चेतन द्रव्यके साथ चेतनके सब गुणोंका तादात्म्य है अतः सब गुण चेतनात्मक हैं फिर भी ज्ञान, दर्शनके अतिरिक्त अन्य गुण न स्वयको प्रतिभासते हैं और न परको प्रतिभासते हैं अतः अचेतन हैं।

यदि एक गुण दूसरे गुणरूप हो जाय तो द्रव्य एक गुणरूप ही रह जायगा।

अभेदविवक्षासे आत्मा ज्ञानमात्र है, समन्वय इस प्रकार है—ज्ञानका जीवादिश्रद्धानस्वभावसे होना सम्यग्दर्शन है, ज्ञानका ज्ञानस्वभावसे होना सम्यग्ज्ञान है, ज्ञानका रागादित्यागके स्वभावसे होना सम्यक् चारित्र है।

स्वानुभूति है तो सम्यग्दर्शन अवश्य है, किन्तु जब जब सम्यग्दर्शन है तब तब स्वानुभूति हो ही हो ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन तो सदा रह सकता है, किन्तु स्वानुभव उपयोगरूप है सो स्व पर उपयोग हो तब स्वानुभव हो।

आत्माका शब्दार्थ है कि जो निरन्तर जाने इसमें भी सम्यक् रूपसे यह अन्डरस्टुड करलें तब इस अपेक्षामें आत्मा अन्तरात्माको ही कहा जाता है अथवा सामान्यरूपसे यह अन्डरस्टुड करलें तो आत्मा शुद्ध आत्मद्रव्यको कहते हैं। फिर पर्यायदृष्टिसे जो मलिन है वह जीव है और जो निर्मल है वह परमात्मा है।

२३ नवम्बर १९५७

नोकषायके साथ अनन्तानुबन्धी आदि जैसा Force मिलता है वैसे प्रबल नोकषाय हो जाते हैं।

अनन्तानुबन्धी आदिकी अपेक्षा न मिले तो नोकषायमें स्वयंमें वह बल नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

मिथ्यादृष्टि जीवके सदा राग रहता है वह वैराग्यका पात्र नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीवके कदाचित राग भी हो तो उस रागसे भिन्न ध्रुव निजस्व-भावकी रुचि होनेके कारण रागमें राग न होनेसे वैराग्यका पात्र है।

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य व माध्यस्थ्य भाव ये चारों परिणाम अनुकम्पामें भी गर्भित हो जाते हैं। किन्हीं भावके यत्नमें परके अनुकम्पाकी मुख्यता है तो किन्हीं भावके यत्नमें निजके अनुकम्पाकी मुख्यता है।

धर्मी जीवोंका सत्सङ्ग संसारसे पार करा देनेमें विशेष कारण पड़ता है। सत्संग जयवंत होहु।

बाह्य समागम मिलें तब भी क्या, न मिलें तब भी क्या! बाह्य संगको निमित्त पाकर काम, क्रोध, मान माया लोभ जिनके जागृत हो जाता है उन्हें इन विभावोंकी निवृत्तिके लिये सत्संगकी आवश्यकता होती है।

मैं द्रव्य हूं, अपनी द्रव्यत्वशक्तिके कारण परिणमता रहता हूं, जब मैं मलिन पर्यायका चोला पहिन लेता हूं तब वहां परको निमित्त पाकर विभाव रूप परिणमन लेता हूं। यह परपदार्थकी कला नहीं, मेरी कला है। जब पुरुषार्थ बलसे मैं अपनेमें सावधान रहनेका चोला पहिन लेता हूं तब स्वभाव रूप परिणमता हूं। यह भी मेरी कला है।

२४ नवम्बर १९५७

आज १ बजेसे चलकर ६॥ मील पर मंसूरपुर ४॥ बजे पहूंचे।

ज्ञानीजीव केवल आत्माका शुद्ध विकास चाहता है अतः उसकी बाहर कहीं आदरणीयरूपसे दृष्टि होती है तो आत्माके शुद्ध विकासरूप अवस्थाओं पर। इसी बुनियाद पर पञ्च नमस्कार मन्त्र बना है। णमोकार मन्त्र में पांच आत्मविकासोंको नमस्कार किया है। इन पांच परमेष्ठियोंमें किसीका भी नाम नहीं आया है, न तो किसी तीर्थङ्करका नाम है और न रामचन्द्र आदि किन्हीं अन्य परमात्माका नाम है। यद्यपि तीर्थंकर एवं रामचन्द्र हनुमान आदि महापुरुषोंकी आत्मा निर्वाणको प्राप्त होकर भगवान बने हैं, तथापि इनका किन्हींका भी नाम नहीं है इस णमोकार मन्त्रमें। यह निष्पक्षता या अवैयक्तिकताका प्रबल प्रमाण है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिन गृहस्थोंको वैराग्य हुआ है वे सर्व परिग्रह आरम्भ त्यागकर आत्म साधनामें दत्तचित्त हुए वे तो साधु हैं।

इन साधुवोंमें जो बहुश्रुत याने बहुज्ञानी हैं व साधुवों को अध्ययन भी कराते हैं वे उपाध्याय हैं।

इन साधुवोंमें जो एक प्रधान है जो कि शिक्षा दीक्षा आदि देकर उन से आत्माका पोषण संस्कार के कारण है वे आचार्य हैं।

उक्त तीनों परमेष्ठियोंमें से जो भी निर्विकल्प परमसमाधिके बलसे ज्ञानादि गुणघातक कर्मोंके विलय हो जानेसे पूर्ण ज्ञाता द्रष्टा, आनन्दमय एवं शक्तिमान हो लेते हैं वे अरहंत हैं।

इन्हीं अरहंतोंकी आत्मा जब शेष अघातिया कर्म व उनके कार्य भूत शरीरादिसे सर्वथा छुटकारा हो जाता है तब इन्हें सिद्ध कहते हैं। ये आत्माके विकास हैं।

२५ नवम्बर १९५७

बहुतसे लोग कहते हैं कि बहुतसे झगड़े तो भगवानने करा दिये जिन देशोंमें लोग भगवान नहीं मानते वहां ये झगड़े नहीं होते हैं। इसका अर्थ यह समझना कि भगवानके विषयमें जो नाना कल्पनायें चलीं उन कल्पनावों ने झगड़े फैला दिये। वैसे तो भगवानको न मानना नास्तिकता है। नास्तिकतासे आत्मसिद्धि नहीं होती।

भगवानके बारेमें विविध कल्पनायें इसलिये चलीं कि लोगोंने भगवान ज्ञान, आनन्दाआदि गुणों पर ध्यान न देकर वे जिस शरीरसे गुजर कर भगवान हुए उस शरीर सम्बन्धी लीलाओं पर ध्यान रखने लगे।

भगवन! आप श्याम हो, त्रिशलानन्दन हो, अमुकवंशके हो आदि वचन भगवानकी स्तुति नहीं है यह सब व्यवहार वचन है। भगवानकी स्तुति तो वास्तवमें ब्रह्म विकासके इन ४ स्थानोंकी असलियत बताकर की जा सकती है—(१) जितेन्द्रिय, (२) जितमोह, (३) क्षीणमोह, व (४) सर्वज्ञ।

(१) हे नाथ आपने इन्द्रियोंको जीत लिया था। इन्द्रियां कैसे जीती जाती हैं इसे जाननेसे पहिले यह जान लेना चाहिये कि इन्द्रियोंके उद्दण्ड होनेके थियेटरमें पार्ट लेने वाले क्या क्या हैं – ये ३ हैं–द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

व विषयभूत पदार्थ। जिन लोगोंको जीतना है तो समर्थ व बुद्धिमान पुरुष एक सर्वोत्कृष्ट उपाय यह करते हैं कि उन लोगोंसे उपेक्षा व असहयोग कर देते हैं। प्रथम ही प्रथम असहयोग करनेके लिये किसी विशिष्टके सहयोगकी आवश्यकता होती है उसका सहयोग लेना चाहिये। इसी पद्धतिसे नाथ इन्द्रियोंके जीतनेकें लिये आपने द्रवेन्द्रिय, भावेन्द्रिय व विषयभूत पदार्थोंसे उपेक्षा व असहयोग आन्दोलन किया था। इस असहयोग आन्दोलनकी सफलताके लिये जिसका सहयोग लिया जाय वह द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय व विषयोंके खिलाफ होना चाहिए। नाथ अपने अचेतन द्रव्येन्द्रियोंके विरुद्ध चित्स्वभाव का सहयोग याने अवलम्बन लिया, आपने खण्ड ज्ञानरूप भाव्येन्द्रियके विरुद्ध अखण्ड स्वभावका अवलम्बन लिया, आपने संगभूत विषयोंके विरुद्ध असंग स्वभावका अवलम्बन लिया। इस प्रकार असंग, अखण्ड चित्स्वभावके सहयोगसे इन्द्रियोंसे असहयोग करके इन्द्रियोंको जीतकर जितेन्द्रिय हुए, पश्चात् जितमोह हुए फिर क्षीणमोह व फिर सर्वज्ञ हुए यह भगवानकी स्तुति है।

२६ नवम्बर १९५७

आज मंसूरपुरसे १। बजे चले खतौली (६ मील पर) ३॥ बजे आ गये। समाधि, भक्ति और निष्काम कर्मयोग इन तीनोंका समावेश ज्ञानी सत्पुरुषमें होता है और समय समय पर इन तीनोंमें से कभी कोई मुख्य और कभी कोई मुख्य हो जाता है। पश्चात् उन्नति होते होते निष्काम कर्मयोग का तो विशुद्ध भक्तिमें विलय हो जाता है और पश्चात् उस भक्तिका भी समाधिमें विलय हो जाता है।

किन्तु जब तक बुद्धिपूर्वक राग रहता है तब तक मनुष्य यदि पाये हुए तन, मन, वचन व धनसे योग्य सेवाकर नहीं कर सकता है इतना लोभी एवं आलसी हो जाता है वह तत्त्वज्ञानका पात्र भी नहीं है।

धन विनश्वर है, आत्मासे अत्यन्त भिन्न है फिर भी धनका इतना लोभ है कि धन बल होने पर दुःखी पड़ौसीको भूखा रहने दे अथवा धार्मिक कार्यकी आवश्यकता होने पर भी उसमें धनका सहयोग न दे इत्यादि प्रकारसे किसीमें खर्च न कर सके तो वह आत्मज्ञानका पात्र नहीं है।

वचन विनश्वर है आत्मासे अत्यंत भिन्न है फिर भी वचनका इतना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हठी एवं दरिद्र बने कि गलत बात होने पर भी वचनकी हठ रखे व प्रिय, हित वचन न बोल सके तो वह भी आत्मज्ञानका पात्र नहीं।

तन विनश्वर है आत्मासे भिन्न है फिर चेतनका इतना लोभ हो कि अपने या पर या दोनोंका कोई सेवा कार्य हो और उसे न कर सके, शरीरमें आपा बुद्धिकर उसे आराममें रखे तो वह आत्मज्ञानका पात्र नहीं है।

मन विनश्वर है आत्मासे भिन्न है फिर भी मनका ऐसा व्यामोह हो सबका भला न विचार सके व अपना ही स्वार्थ व सुख विचारे तो वह भी आत्मज्ञानका पात्र नहीं है।

२७ नवम्बर १९५७

गृहस्थमें हमें क्यों रहना है इस सम्बन्धका भी यथार्थ अभिप्राय बनावो।

"यह संसार सर्व असार है यहां कुछ भी अपना नहीं है और न हित रूप है। यह सर्व परिग्रह जाल छोड़कर शरणभूत निज ब्रह्मका ध्यान करना ही सत्य हित है इसके लिये इतने वैराग्यकी आवश्यकता है कि क्षुधा आदि बाधावोंके सहनका अवसर आ जावे तो आकुलता व असंयम न हो। किन्तु मैं इतना विरक्त नहीं हो पाया और अभी प्राय छोड़ देना भी उत्तम नहीं है इसका फल है असंयम व अज्ञान वृद्धि, सो इसमें कोई हित नहीं है। अतः मुझे गृहस्थीमें रहना पड़ेगा ताकि जीवन निर्वाह भी हो और स्थूलहिंसा, झूठ चोरी, कुशील व परिग्रहके पापसे बचकर समाधि, भक्ति और निष्काम कर्मयोगके आचरणसे मुक्ति मार्गका पथिक रहूं" इस भावनाकेकारण घरमें रहने वाला गृहस्थ ज्ञानी है।

मेरा घर है, मेरे बच्चे हैं, इनसे ही बड़प्पन है, स्त्रीसे ही सुख है, घर में आराम है, यही मेरा सर्वस्व है इन संकल्पोंके कारण घरमें रहने वाला गृहस्थ अज्ञानी है।

घर दोनों रहते हैं, समागम दोनोंका एकसा है किन्तु ज्ञानी गृहस्थ और अज्ञानी गृहस्थमें महान् अन्तर है।

खतौलीमें बन्दर बहुत हैं। ये अपनी आजीविकाके ४ उपाय करते हैं– (१) राजनैतिक, (२) ब्लैक मार्केट, (३) डकैती, (४) एजेन्सी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

(१) किसी असमर्थके पास कोई खाद्य पदार्थ हो तो उसे ऐसा डराते हैं, हमलेका पूरा भाव दिखाते हैं कि वह चीज छोड़कर भाग जाये, फिर वे बन्दर खाद्य पदार्थका भोग करते हैं, यह तो राजनैतिक उपाय है।

(२) छिपकर आकर कोई थोड़ासा खाद्य पदार्थ ले जाते हैं, यह ब्लेक मार्केट है।

(३) जबर्दस्ती चीज छुड़ा ले जाते हैं यह डकैतीका उपाय है।

(४) कोई भी चीज उठाकर ले जाय उसके एवजमें यथेष्ठ खाद्य पदार्थ मिल जाय तब वह चीज देते है। यह एजेन्सी है।

२८ नवम्बर १९५७

अनेक क्रियायें भो कर ली जावें तब भी मोक्षमार्ग नहीं बनता। मोक्ष मार्ग तो केवल ज्ञानभावमें है। तपस्यावोंसे निर्जरा नहीं होती है। यदि तपस्याका ऐसा अर्थ बनाया जावे जिससे ज्ञानवृत्ति हो वाच्य हो तो वह तपस्या भी ज्ञानवृत्तिका अनर्थान्तर है। वैसे तो तपस्याका जो प्रसिद्ध अर्थ है उस दृष्टिसे तो यही न्याययुक्त निश्चय है कि तपस्यासे कर्म निर्जरा नहीं है, तपस्या तो अशुभोपयोगके विलयमें प्रयोजनवान है। तपस्याने तो द्वारपाल या अङ्गरक्षकका काम किया, इस स्थितिमें ज्ञान अपने साम्राज्यका विकास और विलास कर लेता है।

हम लोग सतत दुःखका अनुभव करते रहते हैं। दुःख सदैव रहता है जब तक कर्मका उदय है। अबुद्धिपूर्वक दुःख तो निरन्तर रहता है। हर्षके समय भी दुःख रहता है। हर्ष भी वास्तवमें दुःख है और विषाद भी दुःख है।

जो सुख दुःख दोनोंको समान मानते हैं, जो सुख दुःखके कारणभूत पुण्य पाप दोनोंको समान मानते हैं, जो पुण्य पापके कारणभूत शुभोपयोग अशुभोपयोग दोनोंको समान मानते हैं वे महात्मा समाधिके पात्र हैं।

समाधि ही सहज आनन्द है, समाधि ही मोक्षमार्ग है समाधि ही मोक्ष का प्रयोजक है, समाधि ही आनन्दका कारण है। मोक्ष भी परमसमाधि स्वरूप है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

२९ नवम्बर १९५७

इन्द्रिय विषयोंके आधीन बनना असाधुता है और इन्द्रिय विषयोंके आधीन न बनकर स्वाधीन रहना साधुता है।

इन्द्रिय विषयके भोगकी बुद्धि बेवकूफी है, क्योंकि उस समय स्वस्थता नहीं रहती।

कषायोंकी परिवृद्धिका कारण इन्द्रिय विषयेच्छा है और इन्द्रियविषयों की चाहका कारण कषाय है।

विषय और कषाय ये दोनों तो भौटे हैं, असमानजातीय पर्याय रथको विभाव बनमें लिये लिये फिरते हैं। इस रथके पहिये चतुर्गतिरूपी चार हैं। विभावनकी भटकनासे बचना है तो इस रथका आश्रय छोड़ो और सम्यग्ज्ञानके रथमें सवार होओ जिस ज्ञान रथके नय, प्रमाण, लक्षण, निक्षेप ये चार पहिये हैं और जिसको ले जाने वाले निश्चयनय व व्यवहारनय ये दो बैल हैं। इनका गमन समरसपूर्ण निजराज पथमें होता है।

समताकी गली सकरी है इस गलीके एक ओर तो रागका अथाह जल भरा है और दूसरी ओर द्वेषके गहरे गड्ढे बने हुए हैं। यदि सावधानीसे समता पर न चल सके तो विपदाका भोग नियमसे भोगना ही होगा, इसमें संदेहकी कोई बात नहीं।

मनुष्य जीवनसे जीकर करना क्या है ? आहार, नींद, भय, मैथुन तो पशुवोंके भी होता है; यही ध्येय है तो पशुपर्याय भी उसके लिये क्या बुरी। सच तो यह मनुष्य जीवनका प्रयोजक तो धर्मधारण है ? यदि यह न किया तो मनुष्य जीवन तो पशु जीवनसे भी गया बीता है।

३० नवम्बर १९५७

आज खतौलीसे ९ बजे चलकर ३॥ बजे दादरी आये। दादरी ग्राम खतौलीसे ४। मील पर है।

बिहार भी आत्माके हितका साधक है। मनुष्यको सब जीवोंके प्रति यह भावना रखना चाहिये कि "सब सुखी हों"। सबके सुखकी चाहमें अद्भुत आनन्द है, सबके सुखकी चाहमें चैतन्य सामान्यकी झलक होनेका अवसर पाया जा सकता है, सबके सुखकी चाहमें औरोंके सुख भी अविघ्न रहते हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सबके सुखकी चाहमें लोकों द्वारा भी वह आदेय रहता है।

धर्मके लिये यदि विशेष उपयोग बने तो यह तो जरूर ही किया जाना चाहिये कि सबके सुखी होनेकी भावना रखे।

साम्यभावके लिये जो चार भावनायें पूज्य श्री अमितगति आचार्यने बताई हैं उनमें प्रथम भावना मैत्री बताई है। मैत्रीका अर्थ है मित्रता। मित्रताका दूसरा अर्थ है दुःख न चाहना। किसी भी जीवको दुःख उत्पन्न न हो ऐसी अभिलाषा होनेका नाम मैत्री है।

मित्रताकी भावनामें समता बनती है। समता ही जीवका कल्याण करने वाली है। समताके अर्थ जो कुछ त्याग करना पड़े, कर देना चाहिये।

सुख समतासे ही प्राप्त होता है। किसीका दुःख विचारनेसे स्वयंको लाभ तो है नहीं बल्कि निज योग्यता मलिन होती है जिससे वर्तमानमें भी क्लेश सहना पड़ता है भविष्यमें भी क्लेश ही क्लेश होंगे।

सर्व सुखी हो यह भावना भाई जानी चाहिये और किसीके दुःखकी चेष्टा नहीं करना चाहिये।

१ दिसम्बर १९५७

कल शाम दादरीमें अजैनोंका समुदाय आया, श्री फतेहलाल जी संघी ने कवित्तों परसे उपदेश दिया और श्री पं० मुख्त्यारसिंह जी ने "सब सुखी हों" इस भावनाकी दृढ़ताके लिये उपदेश दिया।

यह दादरी ग्राम एक सभ्य ग्राम है। सभ्यताका उदय अन्यायके त्याग से होता है। जहां अन्याय है वहां सभ्यता नहीं। जहां अन्यायका त्याग है वहां असभ्यताका प्रवेश नहीं।

जो अपनेको प्रतिकूल लगे वह दूसरे पर न आजमाये, यही अन्यायका त्याग है। खुदसे कोइ झगड़ा करे वह अपनेको नहीं सुहाता तो अपना कर्तव्य है कि किसीसे कभी झगडा न करें। खुदकी कोई चुगली करे तो कितना क्लेश मानता है तो खुदका कर्तव्य है कि कभी भी किसीकी चुगली न करे। अपना कोई अपमान भरी बात कहकर अपमान करे तो कितना कष्ट अनुभूत होता है। होता है ना, तो अपना भी कर्तव्य है कि किसीसे भी अपमान कारक बात न कहें। अपने आगे कोई बड़ा बड़ा बनता फिरे तो उसे देखकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपनेको सुहावना नहीं लगता तो अपना भी कर्तव्य है कि दूसरोंके आगे बड़े बड़े न बनते फिरें।

अन्यायसे अनुवासित हृदय आत्मबलका पात्र नहीं। भले पूर्वकृत पुण्योदयके कारण प्राप्त हुए देहबल, धनबल, बुद्धिबलसे लोगोंको सताले किन्तु हृदयबल भी प्राप्त नहीं कर सकता वह आत्मबलकी तो कथा ही क्या।

संसार दुःखी है केवल विरुद्ध भावोंके कारण। विरुद्धता है वस्तु स्वरूपके विरुद्ध कल्पनावोंके कारण। अतः जिन्हें दुःखसे छूटना हो उन्हें वस्तु स्वरूपके विरुद्ध विचारोंका त्याग करना चाहिये।

२ दिसम्बर १९५७

आज मेरठसे जगदीश प्रसादका पुत्र भूपेन्द्रकुमार सत्सङ्गके मुमुक्षुवोंके समान आदि ले जानेके अर्थ खुदकी मोटर लेकर आया साथमें प्रेमचन्द जो मिल वालोंका पुत्र आया। इन दोनों किशोर कुमारको देखकर यह अन्तर्जल्प हुआ कि ये जैन धर्मके नये प्रवर्तक आये। ये दोनों बालक सभ्य और सदाचारी हैं। धर्मके प्रति नैसर्गिक स्नेह है।

आत्माके ध्रुवस्वभावकी ओर जितना ध्यान हो उतना तो क्षण सफल है, क्योंकि इस उपयोगमें धर्मकी अनुवासना है। आत्माके इस एकत्वकी ओर जो उपयोग लग जावे वह उपयोग धन्य है। जिस क्षेत्रमें यह काम बने वह क्षेत्र उपचारसे धन्य है, जिस कालमें यह काम बने वह काल भी उपचारसे धन्य है। इस निर्विकल्प समाधिसे पूर्व होने वाले शुभोपयोगोंमें जिनका सत्संग जिनका उपदेश निमित्त बना वे भी धन्य हैं।

इस जगतमें अन्य सब भाव असार हैं केवल निज चैतन्यमात्र प्रभुत्वका आश्रय करने वाला भाव सार है। धर्मके लिये अन्य कुछ परिश्रम नहीं करना है, मात्र करना भी कहो तो या यों कहो कि निज आत्मामें रमण करना है, आराम करना है या यह कहो कि कुछ नहीं करना है।

हे आत्मन्! अपनी शक्ति निहारो और शक्तिके अनुसार बढ़े चलो।

आजकल लोग शक्तितस्त्यागका यह अर्थ जल्दी कर लेते हैं कि शक्तिके माफिक काम करो याने शक्तिके भीतर काम करो, याने शक्तिसे ज्यादह त्याग करनेकी बेवकूफी न करो, परन्तु साथ यह भी एक गजब है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

अपनी शक्ति लटोरे घसीटे जितनी ही मानते हैं। यह अर्थ न करके यह अर्थ करना उचित है कि शक्ति पाई है तो शक्ति माफिक काम करो, शक्ति न छुपावो, शक्ति है तो उसके अनुसार जल्दी बढ़े चलो।

३ दिसम्बर १९५७

आज ३ बजे मेरठ आये, बीचमें एक शिवालयमें ठहरे वहां ३ घण्टे रहे यहां सदर व प्रेमपुरी शान्तिनगर वालोंका विशेष उत्साह दिखा।

मनुष्यका चरित्र चारित्र ही एक अपूर्व बल है। चारित्रकी भ्रष्टतामें वह बल क्षीण हो जाता है।

पाँच पापोंका त्याग होना ही चरित्र, चारित्र है। अपने द्वारा किसी पर कोई अन्याय न हो जाय यह तो हिंसाका त्याग है। किसीकी चुगली, निन्दा व अहितकारी बात न कहना झूठका त्याग है। किसीकी वस्तुका बिना उसकी अन्तरङ्ग स्वीकारताके न लेना चोरीका त्याग है। काम विकार भाव न लाकर वीर्य रक्षा करना कुशीलका त्याग है। परिग्रहकी तृष्णा व परिग्रहमें हित बुद्धि न करना परिग्रहका त्याग है।

यह जीव अपने योग व परिणामके कारण औदारिक, वैक्रियक, आहारक तैजस, भाषा, मन व कार्माण वर्गणा इन ७ प्रकारके वर्गणावोंको ग्रहण करता है। अनेक अपेक्षावोंसे इनके क्रम लिखते हैं—

उत्तरोत्तर अवगाहना इस क्रममें असंख्यात गुणी हैं—कार्माण, मन, भाषा, तैजस, आहारक, वैक्रियक, औदारिक।

प्रदेश संख्या उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी व अनन्तगुणी इस क्रममें हैं—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, भाषा मन कार्माण।

४ दिसम्बर १९५७

इस आत्माके साथ परपदार्थोंमें से जितना निकट बन्धन कर्मोंका है उतना बन्धन शरीरके साथ नहीं है। यह बात मरणके बादकी दशासे तो स्पष्ट जान ही ली जाती है, फिर भी जब तक शरीरमें है तब तक ऐसा मालूम हो सकता है कि कर्मकी भांति ही तो शरीरका बन्धन है, परन्तु निम्नलिखित प्रकारसे देखो तब सही बात मालूम हो जायगी कि शरीरमें आत्माके रहते हुए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
भी आत्माके साथ शरीरका इतना निकट बन्धन नहीं है जितना कि कर्मके साथ है।

शरीर सहित अवस्था में आत्माके प्रदेशोंका परिस्पन्द चलता रहता है आत्मा आत्मामें आत्मप्रदेशोंसे चक्कर लगाता रहता है उस समय आत्म प्रदेशोंके साथ कर्म तो उसी प्रकार चक्कर लगाते रहते हैं, हलन चलन करते रहते हैं, किन्तु शरीर वैसा चक्कर नहीं काटता।

यदि कुछ मोटे रूप में उदाहरण रखा जावे तो यह रखा जा सकता है, जैसे कि घड़े में गन्दा जल रखा है जल जल में ही कुछ चक्कर काटे, हलन चलन करे तो उसके अनुसार गन्दगीके सूक्ष्म कण तो चक्कर काटते हैं परन्तु घड़ा चक्कर नहीं काटता है। फरक इसमें केवल इतना ही आता है कि घड़े के अवयव रूप मिट्टी में जलका एक क्षेत्रावगाह नहीं है व घड़ेके अवयवोंके बाहर जल है किन्तु आत्मा प्रदेशोंका अवगाह शरीरके अवयवों में है। इस उदाहरणसे भी अच्छा उदाहरण वैज्ञानिक प्रयोगके किसी पदार्थ में मिल सकता है।

५ दिसम्बर १९५७

औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, आहारक शरीरकी वर्गणायें तो पाँच प्रकारके रूप, आठ प्रकारके स्पर्श, दो प्रकारके गन्ध व पांच प्रकारके रसवाली हैं, परन्तु तेजस शरीर, कार्माण शरीर, भाषावर्गणा व मनोवर्गणायें पांच प्रकार के रूप दो प्रकारके गन्ध, पांच प्रकारके रस व चार प्रकारके स्पर्श वाली हैं। इन चार प्रकारकी वर्गणाओं में जितना कि बन्धनबद्ध स्कन्ध है उसमें यदि स्निग्ध परमाणु हैं तो स्निग्ध ही सब हैं, यदि शीत परमाणु हैं तो शीत ही शीत सब हैं, यदि मृदुपरमाणु हैं तो मृदु ही मृदु सब हैं, यदि लघु परमाणु हैं तो लघु ही लघु सब हैं। इसी प्रकार रूक्ष, उष्ण, कठोर व गुरु में भी लगाना चाहिये।

६ दिसम्बर १९५७

संयम और व्रत में संयमका स्वरूप उत्कृष्ट है क्योंकि संयम तो उसे कहते हैं जो महाव्रत और अणुव्रत समितिके साथ हों तथ व्रत मात्र उसे कहते हैं जो महाव्रत और अणुव्रत समितिके साथ न हों। संयम तो व्रत आ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही जाता है किन्तु व्रत में संयम आवे या न आवे दोनों बातें हो सकती हैं।

अन्तरङ्गका मर्म जितना गहन है उतना ही सरल है।

जीवत्व, भव्यत्व व भव्यत्व ये पारिमाणिक भाव कहे हैं वस्तुतः तो दशाओंको यथा सम्भव धारण करनेसे जीवत्व है तथा असिद्धिभाव अनादि अनन्त रहे वह अभव्यत्व है और असिद्धभाव अनादि सान्त रहे वह भव्यत्व है। असिद्धिभाव औदयिक है क्योंकि वह अघातिया कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है इसी सम्बन्धके कारण भव्यत्व व अभव्यत्व भाव विपाकज है। इन तीनोंको पारिणामिक भाव कहना उपचारसे है।

इसी कारण सिद्ध प्रभुमें न जीवत्व है, न भव्यत्व है, न अभव्यत्व है। हां चैतन्यभावका नाम जीवत्व रखो तो सिद्ध प्रभुमें जीवत्व कह लो।

यही एक मर्मकी बात है तभी तो अनेक जगह यह प्रसिद्धि है कि परमात्मा और जीव पृथक् पृथक् हैं।

परमात्मा चेतन तो है, किन्तु जीव नहीं है।

७ दिसम्बर १९५७

जैसे कर्मरूप होने योग्य कार्माण वर्गणायें ही कर्मरूप बनती हैं, अन्य वर्गणायें नहीं, वैसे उन कार्माण वर्गणाओंमें भी यह भेद है कि जो ज्ञानावरण होने योग्य कार्माण वर्गणायें हैं वे ही ज्ञानावरण रूप होती हैं, जो वेदनीय कर्मरूप होने योग्य कार्माण वर्गणायें हैं वे वेदनीय कर्मरूप होती हैं जो आयुकर्मरूप होने योग्य कार्माणवर्गणायें हैं वे आयुकर्मरूप होती हैं, जो नामकर्मरूप होने योग्य कार्माण वर्गणायें हैं वे नामकर्मरूप होती हैं, जो गोत्र कर्मरूप होने योग्य कार्माण वर्गणायें हैं वे गोत्र कर्मरूप होती हैं, जो अन्तराय कर्मरूप होने योग्य कार्माण वर्गणायें हैं वे अन्तराय कर्मरूप होती हैं।

आत्माके कषायभावको निमित्त पाकर उस उस प्रकारके परिमाण वाली विभिन्न कार्माण वर्गणायें बंधती हैं इसीको इस रूपमें कह दिया जाता है कि बंधनेके समयमें कर्मोंका बटवारा हो जाता है कि ज्ञानावरणकी कितनी वर्गणायें हो गईं और मोहनीयकी कितनी वर्गणायें हुई व वेदनीयकी कितनी वर्गणायें हुई इत्यादि।

पुद्गलोंकी भी जातीयता व परिणमन पद्धति विचित्र है। जीवकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणतियां अनोखी होती हैं तो पुद्गलकी भी परिणतियां उससे कम अनोखी नहीं हैं। चेतन होनेके कारण कोई पक्ष करे वह बात उनकी अलग है।

८ दिसम्बर १९५७

निगोद सब जीवोंका आदि स्थान है। यह पर्याय सर्व पर्यायोंमें निम्नतम है। इन जीवोंकी आयु अन्तमुहूर्त है जो साधारणतया एक सेकिन्ड के प्रायः इक्कीसवें भाग प्रमाण है। यहां भी जघन्य और उत्कृष्ट संभव है। कोई निगोद एक शरीरमें उत्कृष्ट आयु लेकर पैदा हुए उसके कुछ ही थोड़ी देर बाद अन्य निगोद जीव उसी शरीरमें पैदा हुए तो ऐसे आगे पीछे भी पैदा होने वाले उन निगोदोंका मरण एक साथ होगा पुनः उसी देह बन्धनमें रहते हुए एक साथ जनमेंगे व मरेंगे इस बीच भी अन्य जीव भी उसी शरीर में समय बे समय पैदा हों तो प्रथम मरण साथ होगा व आगे जन्म मरण साथ होने लगेगा।

ऐसे विभिन्न समयों में पैदा होने वाले उन जीवों की पर्याप्ति भी एक साथ निष्पन्न होगी। पहिले समयोंमें पैदा हुए निगोद जीवोंने जो आहार ग्रहण किया था और जो शरीरशक्ति निष्पन्नकी थी उस शरीरमें बादमें उत्पन्न हुए अन्य निगोद जीवोंको वह सब तैयार मामलेका अंग पहिले समय से ही मिलने लगता। जैसेकि घरमें एक जेठा आदमी कमाये तो उसके भोग का अधिकार उस कुटुम्ब के सब छोटे बड़ों को मिल ही जाता।

सन्त कन्त धर्मवन्त ही अपना महन्त पन्त पाते हैं।

कुछ दिन ही तो ऐसे बीतो कि परका विकल्प छोड़कर मात्र आत्म सन्मुख रहो कल्याण अवश्य होगा।

किसका कौन शरण है? उसका वही शरण है।

९ दिसम्बर १९५७

महामत्स्यसे सम्बन्धित समस्त विस्रसोपचय अथवा पुद्गल पिण्ड मात्र इतना ही नहीं है जितनाकि महामत्स्यके भीतर भीतर है, किन्तु महामत्स्यके ऊपर जितनी मिट्टी इकट्टी हो जाती है। और उस मिट्टीमें वृक्ष व कीट आदि उत्पन्न हो जाते हैं वह सब महामत्स्यसे सम्बन्धित विस्रसोपचय है। इन ढेर व वृक्षों आदिसे भी महामत्स्य के शरीर को पोशण तत्त्व मिलते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं अथवा जैसे मनुष्य शरीरमें उत्पन्न कीट आदि सब अभेदरूपसे मनुष्य शरीर कहलाते हैं वैसे महामत्स्यके ऊपर नीचे स्पष्ट सभी पुद्गल पिण्ड महामत्स्य शरीर कहलाता हैं।

महामयत्स्यशरीरके ऊपर मिट्टी कहांसे उत्पन्न हो जाती है इसके उत्तरमें दो बातें हैं—एक तो ऊपर आ पड़ी गन्दगी जम जाती है दूसरे कुछ ऐसे वनस्पति भी जलमें होते हैं जिनके सूखने पर वे मिट्टी रूप परिणम जाते हैं। और फिर वहां वृक्ष कीट आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं। आखिर एक हजार योजन लम्बा व ५०० योजन चौड़ा शरीर भी तो है, कोई ठट्ठा थोड़े ही है!

राग द्वेषके फलमें इस जीव को कैसे कैसे शरीरोंसे भैंट होती है। जीव स्वयं सुखी है, कोई कमी नहीं है। सुखका तो घात उद्दण्डतावश स्वयं कर लेता है। वाह्य पदार्थों में उपयोगसे पहुंच पहुंचकर आसक्त बना रहता है।

एक बार तो हिम्मत कर। सर्व बाह्य पदार्थका ममत्व छोड़।

१० दिसम्बर १९५७

अपने से बड़ोंके बड़प्पनमें ध्यान लाना उन्हें अपना मार्गदर्शक मानना, उन्हें अपनेसे बड़ा विवेकी व ज्ञानी समझना यह स्वयंके हितके लिये है। मार्दव व आर्जवके प्रकट हुए विना आत्मा सन्मार्गका पथिक नहीं बन सकता।

तत्त्वार्थसूत्रमें पुद्गल परमाणुवोंके वन्धकी पद्धतिमें निम्नलिखित सूत्र हैं उनका सीधा सादा ही अर्थ उपरुक्त है:—यही वर्गणाखण्डके सूत्रोंसे प्रसिद्ध हैं:—

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः = स्निग्ध, रूक्ष गुणंके कारण ही अणुवोंमें बन्ध है।

नजघन्य गुणानानाम्=किन्तु जघन्य अविभाग प्रतिच्छेद याने १ अविभाग प्रतिच्छेदका स्निग्ध रूक्ष कुछ भी हो तो बन्ध नहीं होता है।

गुणसाम्ये सदृशानां=स्निग्ध स्निग्धोंका या रूक्ष रूक्षोंका यदि अविभाग प्रतिच्छेद समान हो तो बन्ध नहीं होता। इसमें यह बात अन्दरस्टुड है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि स्निग्ध व रूक्ष यदि समान अविभागप्रतिच्छेदके हो तो भी बन्ध हो जाता है।

द्व्यधिकादिगुणानां तु=परन्तु दो अधिक गुण वालोंका सर्वत्र बन्ध हो जाता है चाहे सदृश स्पर्श वाले हों या विसदृश स्पर्श वाले हों यानि चाहे स्निग्ध रूक्ष हों या रूक्ष स्निग्ध हों, स्निग्ध स्निग्ध हों या रूक्ष रूक्ष हों, दो अधिक गुण वाले हों उसका परस्पर बन्ध हो जाता है।

११ दिसम्बर १९५७

धर्म कार्य करते हुए भी भावों में शिथिलता क्यों आती या क्यों बढ़ती ? इसका कारण यह है कि जिन्दगी भरके लिये या चिरकालके लिये एक लेविलका धर्म कार्यका लक्ष्य करके धर्म कार्य किया जाता है। प्रतिदिन उतना ही धर्म कार्य काण्ड करके अपनेको कृतार्थ मान लेना बन जाता है, इसमें भावोंकी शिथिलता आना प्राकृतिक बात है। क्योंकि, ब्रह्मका बृहम स्वभाव है। यदि उत्तरोत्तर प्रगतिका प्रोग्राम मन में ही रहे, लक्ष्यरूप भी रहे तब भी शिथिलताका निरोध हो सकता है।

यह बात केवल धर्म क्रियाकी ही नहीं है, अन्य बातोंकी भी यही बात है। ज्ञान कार्य में उत्तरोत्तर ज्ञान बढ़ानेकी भावना रहती है तो ज्ञानकी प्रगति होती है।

भगवानके सामने रोज रोज उसी एक विनतीको पढ़ते रहने वालोंका मन या भाव बढ़ते हुए नहीं रह पाते।

जब तक विकल्प नहीं मिटें, पूर्ण विकास प्रकट नहीं हो तब तक उत्तरोत्तर प्रगतिका परिणाम रहे तब तो निर्बाध भाववृद्धि रहती है अन्यथा अर्थात् एक लेविलके क्रियाकाण्ड में संतुष्ट रहने वाला अपने भावोंकी शिथिलता पाता ही है।

विषय कषायोंसे बचनेके लिये णमोकार मन्त्रका जाप तो विषयकषायों का वार रोकनेके लिये कवच है और निज आत्मतत्त्वके सम्बन्ध में अपनी भाषा में अपनी बात कह लेना, सोच लेना विषय कषाय पर प्रहार है।

१२ दिसम्बर १९५७

अपने आपकी दृष्टि, निराकुलता ही वास्तविक आनन्दका कारण है। इसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

अतिरिक्त जितने भी व्यवसाय हैं उनसे हटो और सर्व प्रयत्नसे आत्मानुभव में लगो।

समय बीत जाने पर गलती समझ में आती है। खैर वह भी ज्ञान है, किन्तु तत्काल गलती समझ में आवे वह अति प्रशस्त ज्ञान है। गलती हो ही नहीं, मात्र आत्मानुभवन मात्र ज्ञान है वह अतीव प्रशस्त ज्ञान है।

बाह्य पदार्थों में कुछ करनेका नहीं पड़ा। कोई उनमें कुछ कर भी नहीं सकता। आत्मा प्रभु है। यदि प्रभुताके बजाय कुछ भिखारी पन कर जाय यह और वहां बाह्य वस्तुका अनुकूल परिणमन मिल जाय तो इसमें क्या शाबासी है। देखना, वह लौकिक सुख कितना बरबादीके एवज में मिला।

किसी बाह्यका समागम न मिला या अधिक न हुआ इसको हानि भी मत समझो, क्योंकि तुम अकेले ही सदासे हो अकेले ही रहोगे। हानिका कारण तो परोन्मुखत्व है जिसके कारण कर्म बन्ध स्वयं होते और भविष्य में विकल्प, दुःखोंके अनेक वातावरण।

कुछ भी जड़ पदार्थ मिल गया उससे तुम्हारी कुछ भी वृद्धि नहीं होती यह निश्चयतः समझ। परके समागमके उधेड़ बुन, विकल्पोंको तो बिलकुल ही हटावो। इससे कलंक ही फिर चढ़ेगा, लाभ रत्तीभर भी नहीं है।

१३ दिसम्बर १९५७

आत्माका उद्धारक आत्माकी समझ ही है। अहो मैं स्वतः कैसा हूं और यह वर्तमान कैसा हो रहा है, यह सब परसंगकी बुद्धिका फल है।

मैं निर्विकल्प चैतन्यमात्र हूं, यदि परिणमन भी चलना चाहिये स्वतः तो वह परिणमन चलता है जो कि स्वभावमें अभेद रहकर निर्विकल्प होता है। योग, कल्याणका मर्म यह है। ध्यानका रहस्य यहां ही है। योगी जनों की कृतार्थता यहां ही है।

इस निज तत्त्वमें उपयोग रहे इससे बढ़कर अन्य कुछ है ही नहीं।

निजको निज, परको पर जान। यदि यह हो गया तो मोह छूटेगा। मोह छूटे तो विकल्प भी हट जायेंगे। विकल्प हटें तो शुद्धात्मसंवेदनसे उत्पन्न वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभूयमान परम समरसपूर्ण सहज परम आनन्दका लाभ होगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हे निज तत्त्व ! तू ही मेरा देव है, तू ही मेरा शास्त्र है, तू ही मेरा गुरु है। सत्य शरण तेरी उपासना ही है। इसके अतिरिक्त सर्व श्रम अश्रेय हैं।

आत्माकी भलाई आत्मस्वभावकी आराधनामें है। ऐसा ज्ञान करो जिससे आत्मस्वभावके उपयोगकी अभीक्ष्णता रहे। यही तेरा सत्य पुरुषार्थ है।

बहुत ज्ञान भी पाये और वह बाहरी अर्थोंमें घूमे तो वह भी जड़ धन की तरह है, उसका संचय प्रयोजन बाह्य है।

१४ दिसम्बर १९५७

आयुके क्षयको मरण कहते हैं आयु आयुके निषेकोंको कहते हैं। आयु के निषेक प्रतिक्षण खिर रहे हैं तहीं आवीच्वेमरण है। प्रतिसमय हमारा मरण हो रहा है। हमें मरण समयमें समाधि रखना चाहिये यानेे समाधिमरण करना चाहिये। समाधि सम, एक, नित्य स्वभावकी दृष्टिसे प्रकट होती है। अतः अभीक्ष्ण दृष्टि हमारी आत्मस्वभाव पर होना चाहिये।

हे स्वाधीन देव ! अति स्वाधीन पवित्र आनन्दमय ऐसे तेरेके तिरस्कार से जीव अकथनीय क्लेशोंको भोग रहा है।

परकी दृष्टिमें कदापि शान्ति हो नहीं सकती है क्योंकि वह पर अपने द्रव्यत्व शक्तिके कारण परिणमेगा तेरी बात ही नहीं पूछ सकता। मोही परके बारेमें अपनी कल्पनायें बढ़ाकर दुःखी होगा। पराये परिणमनका अधिकारी बननेमें दुःख होना न्याय है। इस दुःखका खेद भी नहीं मानना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि जैसा किया वैसा पाया।

खुदसे खुदका कोई १०-१५ रु० का नुकसान होता है तो उसमें वह बड़ बड़ाता तो नहीं और न अधिक आकुलता करता है क्योंकि वह जानता तो है कि किस पर बड़ बड़ाऊं मुझसे ही तो मेरी हानि हुई है। यदि दूसरा कोई पुरुष १०-५० रु० की हानि कर दे तो उसका ख्याल करके उस पर बड़ बड़ाता भी है और अधिक आकुलता व श्रम करता है।

खुद ही में विकल्प किया और खुद ही में आकुलता मचा ली अब किस पर बड़ बड़ाता। मिथ्यादृष्टि जीव अपनी हानि परसे मानते हैं सो उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परका ख्याल करके बड़बड़ाते रहते हैं और अधिक आकुलता मचाते हैं, हाय तोबा करते हैं।

१५ दिसम्बर १९५७

मन में किसी भी प्रकारकी इन्द्रिय विषयकी बात रखना अति हानि कारक है। मनमें विषयकी बात न रहना चाहिये, चाहे विषय विषयीके स्पन्निपात होने पर विषयों में प्रवृत्ति निराली भी डरले किन्तु मनमें विषयका अभिप्राय नहीं बना रहना चाहिये।

यह भी बड़े हिम्मतकी बात है। किन्तु पदके विरुद्ध विषयवृत्ति में संक्लेश की अधिकता मूल होनेसे विषयवृत्ति भी अति हानिकारक है।

निश्चयनयका जो विषय है वह गलत नहीं, व्यवहारनयका जो विषय है वह गलत नहीं, किन्तु जब यह समस्या सामने आती है कि इनमेंसे किस विषयका अवलम्बन लिया जावे कि निर्विकल्प परमसमाधि हो जिससे सत्य स्वाधीन आनन्दका अनुभव हो। इसके उत्तर में खुद ही विचार कर लो भाई! बताओ, समझ लिया ना। क्या व्यवहारनयके विषयका आश्रय लेनेसे निर्विकल्पता आजावेगी। अच्छा, तो अब हेतु बताओ।

निश्चयनके विषयका आश्रय लेनेसे निर्विकल्पता क्यों आती? इसलिये कि निश्चयनयका विषय निर्विकल्प स्वतः सिद्ध सत् है उसके उपयोगके बाद ही पर्याय में निर्विकल्प समाधिका अवसर आता है। यही कारण कि दोनों नयोंका विषय सत्य होने पर भी हितकर अहित करकी दृष्टिसे निश्चयनयको सत्य कहा है और व्यवहारनयको असत्य कहा है।

१६ दिसम्बर १९५७

सर्वश्रेष्ठ परिणति तो निर्द्वन्द्वता है। परके हितके भाव भी प्रशस्त परिणमन नहीं हैं। सर्व आकुलता छोड़ो। अपने हितकी धुनिमें लीन रहो तो कुछ व्यक्ति अपने आप हित भी कर लेंगे।

यदि तुमने औरोंकी चिन्ताकी, तो न तुम ही ठीक रहे न और भी ठीक रहे। तुम तो यों ठीक न रहे कि चिन्ताग्रस्त प्राणी क्या ठीक करला सकता है। और ठीक यों न रहे कि औरोंके लिये तुम आदर्श न हो सके।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्व विकल्प जालमात्र है। इनमें किसीको लाभ नहीं पहुंच सकता। लाभ तो आत्मानुभवमात्र है।

ॐ तत् सत्। तम सो मा ज्योतिर्गमय।

किन्हीं भी अन्य ध्यानोंसे तुम्हारी आत्मामें रह क्या जायगा आत्मा तो असङ्ग है। ॐ नमोऽनेकान्ताय, असङ्गाय।

अनेकान्तमय पदार्थ है अर्थात् एक दृष्टिसे देखते हैं तो पदार्थमें अनेक अन्त याने धर्म पदार्थमें प्राप्त होते हैं और एक दृष्टिसे देखते हैं तो पदार्थ में एक भी धर्म याने गुण प्राप्त नहीं होता किन्तु अखण्ड पदार्थ प्राप्त होता है।

पहिले तो भाव अभावसे ही चलकर देखलो क्या पदार्थ भावरूप ही है या पदार्थ अभावरूप ही है। भावरूप ही है तो पदार्थ सर्वात्मक हो जायगा क्योंकि किसी पदार्थमें किसी पदार्थका अभाव है ही नहीं। यदि कहो पदार्थ अभावरूप ही है तो बतावो ऐसा ज्ञान भी क्या भावरूप है या अभावरूप यदि अभावरूप है तो अभावैकान्त कहां रहा? यदि भावरूप है तो अभावैकान्तकी सिद्धि नहीं हो सकती अतः पदार्थ कथंचित् भावरूप है और कथंचित् अभावरूप है।

१७ दिसम्बर १९५७

हितकी बात तो वीतरागताका विकास है सो जैसे वीतरागता प्रकट हो यह वृत्ति धर्म है।

वीतरागता क्या राग हटानेके पुरुषार्थसे प्रकट होगी या ज्ञान स्वभावमय निजके ध्यानसे प्रकट होगी? इसके उत्तर में दोनोंको उपाय कहा जा सकता है।

कभी कभी यदि इस सत्यके आग्रहसे बैठ लिया जावे कि बाह्य पदार्थ सब अहित हैं भिन्न हैं अतः मुझे किसी बाह्य पदार्थको उपभोग में नहीं आने देना है इस तरहसे उनके विकल्प या राग हटानेके यत्न में लग जावे तो शुद्ध आत्मतत्त्वका स्पर्श हो जाता है और वहां वीतरागता भी प्रकट होती है।

कभी कभी यदि परमशुद्धनिश्चयनकी दृष्टि करके शुद्ध ज्ञायक स्वभावके परिचय में लग जावे तो बाह्य पदार्थोंका विकल्प राग हट जाता है उस समय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

वहां वीतरागता प्रकट होती है।

उक्त दोनों उपायोंमेंसे कोई एकान्त नहीं करना। समय समय पर जो उपाय बने उस उपायसे वीतरागता प्रकट करना।

वीतराग भावकी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है, वीतरागताभावका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। वीतराग भावका परिणमन सम्यक्चारित्र है।

रत्नत्रय ही एक धर्म है जो संसारके दुःखोंसे छुटा कर उत्तम सुख में पहुंचा देता है।

१८ दिसम्बर १९५७

आत्माका हित आत्मदृष्टिमें है। सत्य तो यह है कि कुछ भी न चाहो, किसीसे कुछ भी न बोलो, कुछ भी न सोचो। और यदि चाहो भी तो कैसे समाधि, बोधि, आत्मदृष्टि हो इस ही अद्वैतकी बातको सोचो, यदि बोलो भी तो इस आत्महितकी बात ही बोलो और वह भी नियमत और मित समय में बोलो, यदि सोचो भी तो केवल इस ही निजतत्त्वकी बात सोचो।

क्यों जी, यदि ऐसा भी न कर सकें तो ? अच्छा जी, तो जहां मरना हो वहां मरो।

अनाद्यनन्त इस कालमें अमूल्य अवसर पाया, उसका यदि सत्य उपयोग न कर सके तो बस इस ही का नाम तो संसार है और यही इसी तरहसे हो तो चला आ रहा है।

संसार भ्रमणके धक्के खाना हो तो गलत बात करते रहो, गलत बात सोचते रहो। कौन मना कर सकता है तुम्हें गलत कामसे और कौन ला सकता है तुम्हें सन्मार्गमें।

तुम्हें ही मनमें आ गई हो तो मान लेना, न आई हो तो न मानना। संसारमें डूबना हो डूबते रहना, संसारसे मुक्त होना हो मुक्त हो जाना।

करलो झट शुद्ध तत्त्वदृष्टि। नहीं तो विषयकषायके डाकू तैयार ही खड़े हैं तुझे लूटनेके लिये।

जगतके जीवोंको मोह करते हुए इस कारण लाज नहीं आती कि यहां तो प्रायः सभी मोहमें पड़े हुए हैं।

साधु पुरुषको निर्ग्रन्थ होनेमें इसलिये लाज नहीं आती कि उसके Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपयोगमें तो आत्मा निर्ग्रन्थ है, अनन्ता सिद्ध निर्ग्रन्थ हुए थे यह उसके ध्यानमें है ।

१६ दिसम्बर १६५७

परकीदृष्टिसे शुद्धता प्रकट नहीं होती और अशुद्धकी दृष्टिसे भी शुद्धता प्रकट नहीं है तथा इस समय हमारी अवस्था अशुद्ध है, फिर हम शुद्ध कैसे हो सकेंगे । यह एक विकट प्रश्न है ।

उत्तर यह है कि न हम परकी दृष्टिसे शुद्ध होंगे; न हम अशुद्धकी दृष्टिसे शुद्ध होंगे, और न अपनी अशुद्ध पर्यायकी दृष्टिसे शुद्ध होंगे, किन्तु अशुद्ध होते हुए भी हममें विराजमान, नित्य अन्तः प्रकाशमान शुद्ध आत्मद्रव्यकी दृष्टिसे शुद्ध होंगे । यह शुद्धता पर्यायकी नहीं है जिसकी दृष्टिके लिये कहा जा रहा है । यह शुद्धता द्रव्यकी है ।

आत्मा सामान्य विशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है । इसमें जब विशेष की प्रधानतासे देखा जाता है तब पर्याय दृष्ट होती है सो इस प्रकरणमें निर्मल पर्याय भी अशुद्ध है तब विभाव पर्यायका तो कहना ही क्या है । जब सर्व पर्यायोंकी दृष्टि याने विशेषोंकी दृष्टि छोड़कर सामान्यस्वभावकी प्रधानसे देखा जावे तब निर्विकल्प अखण्ड तत्त्व दृष्ट होता है यही दृष्ट तत्त्व शुद्ध आत्मा द्रव्य है ।

शुद्ध, सहज सिद्ध, सदाशिव, सनातन, स्वतःसिद्ध चैतन्य महा प्रभो ! जयवंत होहु ।

पर्यायशुद्ध, कर्मक्षयसिद्ध, मुक्तशिव, साद्यनन्त, उपादानसिद्ध, कार्यपरमात्मन् परमेष्ठि प्रभो ज्ञानपथगामी होहु ।

२० दिसम्बर १६५७

सुख, कल्याण, शान्ति, अनाकुलता तेरे उपयोगके आधीन है । परकी ओर उपयोग करके परमें एकत्वका आचरण किया, लो दुःखी हो गये । सर्व परको भिन्न अहित जानकर उसमें बुद्धि न देकर निज चैतन्यस्वभावमें उपयोग किया कि लो शान्ति हो गई ।

जो करना हो करलो । सर्व कुछ यथार्थ जानकर भी आप पर जो आपत्ति आती है तो वहां क्या करो, उसके ज्ञायक भी रहो । खोटे भाव भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हों तो भी इस समझसे तो न चूको कि ये भी प्रकृतिके उदयके निमित्तसे हुए हैं मेरे स्वभावसे नहीं हुए हैं मैं ध्रुव चैतन्यस्वरूप हूं। विभावोंके ज्ञाता रहे आवो।

परद्रव्य मेरे कुछ नहीं होते। मैं चेतन हूं, ये अचेतन हैं। मुफ्त ही अचेतनकी इच्छा करके क्लेश ही होना होता है। सिद्ध समान प्रभुता पाकर भी क्या भिखारीपन लादा है मोहने।

पर पदार्थोंका चित्तसे बिलकुल सम्बन्ध नहीं त्यागा तो सन्यासीपन नहीं है और न लाभ है बाह्य त्यागका कष्ट तथा फोकटमें सहना रहा।

मुखसे बोल जाते हैं अनादिसे जीवने मिथ्या भ्रमवश अनेक संकट सहे, बाह्य पदार्थका विकल्प ही किया आदि। और ऐसा ही कह कह कर विकल्प बनाये ही रहे तो इसमें हुआ क्या? वही की वही बात। सुवाबत्तीसी पढ़ लेंगे और खुद वही सुआ रहेंगे।

२१ दिसम्बर १९५७

निदानमें तो धर्म, तप करते हुए इच्छा करना कहा, मानों धर्म व तप के फलमें कुछ समागम चाहा। इच्छामें वेदनाके कारण चाह करना होती है।

मोक्षमार्गमें वीरताके साथ बढ़ो। जैसें लोकमार्गमें बढ़नेकी एक विशेषता यह होती है कि पीछे मुड़कर वीर नहीं देखते वैसे मोक्षमार्गमें बढ़ने की एक विशेषता यह होती है कि त्यागे हुए परपदार्थकी ओर पीछे मुड़कर मोक्षमार्गी नहीं देखते।

बढ़े चलो, बढ़े चलो साहस व सावधानीके साथ। पर पदार्थोंका समागम तो पूरी तरहसे छोड़ दो। रंच भी सम्बन्ध न रखो।

मैं अपने बारेमें सोचता हूं कि मैं सर्व विकल्पोंके साधनका सर्वथा त्याग करूं। यह बात मैं उस दिन कर लूंगा जिस दिन मैं स्वयं कुछ निबन्ध लिखना छोड़ दूंगा केवल डायरीको छोड़कर। किन्तु, और कुछ छोड़ चुकने पर भी दो विकल्प चलते रहेंगे इसका सोच है एक तो इंग्लिश में समयसार–एक्सपोजीसन (Samay Sar-exposition) दूसरा समयसारभाष्य। इनके लिखनेमें तो कुछ आपत्ति है नहीं परन्तु इनके साधनभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ कापी पुस्तक वगैरह रखना पड़ती। संभव है श्रुत देवता मन्दिर बनने पर यह भी काम होता रहे व निवृत्तिका भी काम होता रहे।

आत्मन्! उमङ्गकर आत्मानुभवके प्रयत्नके लिये। प्रेय, श्रेय! प्रोग्राम बना वर्तमान संग्रह (पुस्तकादि सामान) से निवृत होकर इनका सामान रखनेके लिये जो स्वयं ले जाया सके। अब तो ऐसे प्रोग्रामसे चल। संगका कोई विकल्प न कर।

२२ दिसम्बर १९५७

बाह्य सब हैं क्योंकि सब अन्य सबसे अलग हैं। द्रव्य ६ जातिके हैं उनमें आत्मा भी एक जातिका पदार्थ है। फिर आत्मा आत्मामें भेद क्या है। यदि आत्मद्रव्योंमें अन्तर हो तो जाति एक रह नहीं सकती।

सर्व आत्मावोंमें चैतन्यभाव समान है। अहो! उस चैतन्य स्वभावकी दृष्टि अमृत ही है क्योंकि उसके पानसे सर्व भ्रम व आकुलतायें समाप्त हो जाती हैं।

चैतन्यास्वभावको दृष्टिके लिये निम्नांकित बातोंका बाह्य साधन अवश्य होना चाहिये—

(१) किसी भी संस्थासे सम्बन्ध नहीं होना।

(२) लोकमें धर्मप्रचार हो ऐसा प्रोग्राम स्वयं न बनाना।

(३) आंखोंको बन्द रखना आहार, विहार, स्वाध्याय आदि आवश्यक कार्योंके होने पर ही खोलना।

तत्त्वज्ञान तो परमावश्यक है ही। तत्त्वज्ञानी होकर भी जो लोग चैतन्य-स्वभाव दृष्टिको अशक्त रहते हैं उनके लिये उक्त तीन बातें हैं।

ध्यान बढ़ानेके पांच कारण हैं—(१) वैराग्य, (२) तत्त्वज्ञान, (३) निष्परिग्रहता, (४) समभाव, (५) सहिष्णुता। इन पांच कारणोंको बना कर ध्यान भी बढ़ाया जाय।

निज सहज स्वभावके लाभके लिये जो कुछ भी करना सामने आ पड़े वह सब करना चाहिये।

सत्यकी ही अन्तमें विजय होती है। धोखा देने वाला खुद धोखेमें है। प्रकृतिका न्याय असत्य नहीं होता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

२३ दिसम्बर १९५७

सबसे बड़ा पाप है पर्यायबुद्धि । लोग यह तो कहते हैं कि ये जैन होकर रात्रिभोजन करते हैं, ये जैन होकर अनछना जल पीते हैं इत्यादि, परन्तु ऐसे विरल हैं अथवा नहीं हैं जो यह कहें कि ये या आप जैन होकर देहमें आत्म-बुद्धि करते हैं । विषयोमें आशक्त होते हैं ! ! !

जैसे कि लोग प्रायः आलू आदि कन्दों पर तो कहते हैं कि आप जैन होकर आलू शकलकद खाते हैं, यह कोई नहीं कहता कि आप जैन होकर बाजारकी दही, जलेबी, चांट खाते हैं । हिंसाकी दृष्टिसे कन्दसे अधिक हिंसा चाट आदिमें है । किन्तु, रूढि ऐसी चल गई कि कन्दको आलोचना तो करते हैं और त्रसहिंसाकी वस्तुकी बात कान पर ही नहीं रेंगती ।

वैसे ही धर्मके नाम पर दर्शन, मन्दिर आदि तो कर लेते हैं व यदि कोई दर्शन न करे तो कह लेते हैं कि आप जैन होकर दर्शन नहीं करते हैं किन्तु देहसे भिन्न मैं आत्मा हूं, देह जड़ है मैं चेतन हूं, मेरे देहमें आत्म-बुद्धि न जावे, धनमें व विषयोंमें आशक्ति न हो ऐसा भाव मनमें नहीं लाते ।

मित्रताका भी ऐसा ही हाल है—लोग मित्रताके नाते विषयकषायके साधनोंकी खबर दबर तो लेते हैं किन्तु आपका उपयोग कितना स्वाधीन हुआ है, स्वाधीन सुखके कितने समीप पहुंचे हैं आदि बात कोई नहीं पूछते हैं । नहीं पूछते हैं ! हां, तो वे ठीक भी करते हैं, क्योंकि पूछने वाले भी यदि स्वाधीन उपयोग वाले हो गये होते व स्वाधीन सुखके समीप पहुंचे हुए होते तो उनके यह बात पूछनेका प्रयत्न ही क्यों हो ।

२४ दिसम्बर १९५७

हे शुद्धात्मदेव ! धन्य हो, तुम ही उपास्य हो, तेरी छायामें रहकर मेरी बड़ी रक्षा है । विषयकषायके भाव ही बड़े चोर और डाकू हैं जो कि मेरे ज्ञान आनन्दके वैभवको लूट रहे हैं ऐसे डाकुओंसे बचानेमें पूर्ण समर्थ आप का ध्यान है ।

हे परमपिता ! तू तो पिता ही है, रक्षक ही है, मैं कपूत हूं, क्या करूं अनादिसे तो सभी कुपूत रहे कई पहिले सुपूत हो चुके आपके, मैं अब तक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुपूत रहा। औरोंकी अपेक्षा इतना ही तो फरक है कि कुपूतीका काल कुछ लम्बा हो गया। हो गया नाथ! इसकी क्षमा करहु याने अब आपके ज्ञानमें सुपूतपना ही झलको। क्योंकि मेरे अन्तरकी बात यह है कि मैं भीतरसे यही चाहता हूं कि परमपिता जी ही मेरे उरमें बसो और उनकी आज्ञा पर ही मेरा उपयोग चलो।

ऐसे अन्तः सुपूतमें क्या आपका ध्यान स्थान न पावेगा?

हे परमशरण! हे परमेष्ठिन्! हे परमात्मन्! सच बात यही है कि विषयकषाय भावके सन्तापसे सन्तप्त प्राणीको आपकी उपासनाके अतिरिक्त अन्य कुछ उद्धारका मार्ग नहीं है।

आपकी उपासना प्रथम दरबार है इसके प्रमादसे ही वह योग्यता आवेगी जिससे अन्तरङ्ग दरबारमें दाखिल होकर मैं कृतार्थ होऊंगा।

२५ दिसम्बर १९५७

शुद्धात्मस्वरूपका ध्यान ही परमस्वाध्याय है। यह मर्म दो प्रकारसे जाना जाता है—(१) जैसे जिस पाकशास्त्रमें लड्डू आदि खाद्य पदार्थोंके बनानेकी सर्व प्रक्रिया लिखी है उस पाकशास्त्रकी एक पुरुष स्वाध्याय करता है याने उसे पढ़ता है और एक दूसरा पुरुष उस प्रक्रिया से लड्डू बना देता है तब पूरा स्वाध्याय याने पढ़ना लड्डू बनाने वालेका कहेंगे। वैसे ही जिन शास्त्रोंमें आत्मस्वरूप, आत्मकल्याणके उपायकी बातें लिखी हैं उन शास्त्रोंका एक पुरुष स्वाध्याय करता है याने उन्हें पढ़ता है और एक कोई दूसरा पुरुष आत्मस्वरूपकी दृष्टि और उसके चिन्तन वा निर्विकल्प समाधिका आनन्द लेता है तब उत्तम व पूर्ण स्वाध्याय तो आत्मध्यानीका कहेंगे।

अथवा जैसे किसी बड़े आफीसरने उसके मातहत रहने वाले क्लर्कको अपने दफ्तरके ड्यूटी पर आनेका हुक्म लिखकर भेजा। यदि वह क्लर्क उस आज्ञा पत्रको २५ बार भी पढ़ले और आज्ञाका काम करे नहीं तो वह पढ़ना ही क्या उसे तो नौकरीसे बर्खास्त किया जायगा। हां यदि एक बार ही पढ़कर अपनी ड्यूटी करे तो वह पढ़ना है। वैसे ही हमारे कृपालु भगवन्त आचार्य संतोंने हमें हुक्म भेजा है कि आत्मस्वरूपका ज्ञान, दर्शन व ध्यान करो। यदि हम इस आज्ञाको रोज नाम पढ़ते रहें किन्तु इस

Report any errors at vikashd@gmail.com

बातको माने बिलकुल नहीं, तो वह क्या स्वाध्याय है। इस तरह तो मनुष्य पर्यायसे बरखास्त हो जावेंगे। हां, यदि आत्मदर्शन करें तो वह उत्तम व पूर्ण स्वाध्याय कहावेगा।

(२) स्व याने आत्माका अध्याय याने भजन करना स्वाध्याय है वह आत्मध्यानमें पूर्ण हो जाता है।

२६ दिसम्बर १९५७

हे नाथ, हे शरण ! मुझ उपयोगको अपने ध्यानकी छायामें बिठा लो प्रभो। ये विभाव, ये विपदायें, ये पहाड़ मुझ पर मत टूटो। मैं आगेके भव में भी इन्द्रियसुख नहीं चाहता हूं। यह अति पराधीन है, आकुलतामय है, लेश भी हित रूप नहीं है।

भविष्यमें देवाङ्गनायें भी मिलें तो आनन्दमें तो उनके उपयोगसे बाधा ही रहेगी। कल्पित सुखमें रम जाना महा अज्ञान है। इसका फल संसारमें भ्रमण ही है।

संसार महाबन है। इसमें भूले हुए प्राणीका इसका पार पा लेना अति कठिन है।

संसार चक्र, विषय चक्र है। इसका गोरखधंधा सुलझानेके यत्नमें भी उलझता रहता है। सुलझानेके प्रयत्नमें सभी लोक हैं। जो इसकी उपेक्षा करे वह सुलझ जाता है।

नाथ ! नाथ ! नाथ ! प्रसन्न होहु। तीन लोकके वैभवका सुख भी हेय है, आकुलताका कारण है। कुछ भी तो नहीं चाहिये मुझे नाथ।

स्वाधीन बात इतनी कठिन हो रही है मुझे। प्रभो ! अबका दाव मेरा निष्फल न जावे। संसार समुद्रमें डूबे हुए को आज बड़ा सहारा मिला है उस सहारेका सदुपयोग हो ! विषयकषायके परिणामका सर्वथा अभाव हो।

२७ दिसम्बर १९५७

जैसे कोई आंखका अन्धा, अङ्गका खजेला पुरुष सुखके उद्देश्यसे किसी नगरमें प्रवेश करना चाहता है तो वह नगरके चारों तरफ फिरे हुए कोट पर हाथ रखता हुआ चलता रहता है किन्तु जब ही दरवाजा आता है तब कोट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परसे हाथ छोड़ अङ्गकी खाज खुजाने लगता है और चलना जारी ही रखता है। फल यह होता है कि चारों ओर घूमता रहता है, सुखके अर्थ यत्न करके भी दुःख ही पाता है।

वैसे ही अज्ञानका अन्धा, विषयका खजेला जीव शान्तिके उद्देश्यसे आत्मनगरमें प्रवेश करना चाहता है तो वह आत्मनगरके बाहर चारों ओर पड़े हुए अनात्मतत्त्वमें उपयोग लगाता हुआ परिणमता रहता है, किन्तु जब मनुष्यभव, उत्तमकुल, श्रेष्ठ वातावरण आदिका सुयोग आता है तब अपने भावसे हटकर विषयकी खाज विशेष खुजाने लगता है और परिणाम व परिणामफल कर्मबन्ध जारी रखता है। फल यह होता है कि कुयोनियोंमें वह भ्रमण करता रहता है। सुखके अर्थ यत्न करके भी दुःख ही पाता है।

❋ इति श्रीयत् सहजानन्द कृत डायरी सन् १९५७ समाप्तम् ❋

❋:—:❋

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मकीर्तन

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम,
ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।। टेक ।।

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान,
जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान,
वे विराग यहां राग-वितान ।।

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान,
अमितशक्ति सुख ज्ञान-निधान ।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान,
बना भिखारी निपट अजान ।।

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन,
मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज पर को पर जान,
फिर दुख का नहिं लेश निदान ।।

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम,
विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्याग पहुंचूं निज धाम,
आकुलता का फिर क्या काम ।।

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम,
मैं जग का करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम,
"सहजानन्द" रहूं अभिराम ।।

कृष्णाकान्त शर्मा के प्रबन्ध से एज्यूकेशनल प्रेस, मेरठ में मुद्रित ।
Version 1